उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी

MAJY - 103

पंचांग एवं मुहूर्त्त

मानविकी विद्याशाखा

ज्योतिष विभाग

२

|| मङ्गलाचरण ||

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणि नमोऽस्तुते।।
गुरूभ्यश्च ग्रहेभ्यश्च मया बद्धोऽयमञ्जलिः।
प्रसन्नमनसस्तेन सत्यां कुर्वन्तु भारतीम्।।
स जयति सिन्दुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम्।
वासरमणिरिव तमसां राशिन्नाशयति विघ्नानाम्।।
विनायकं प्रणम्यादौ देवीं वाग्देवतां गुरुम् ।
संवत्सरफलं वक्ष्ये लोकानां हितकाम्यया ।।

संवत्सर फल-

चैत्रशुक्ल प्रतिपदा तिथि से विरोधकृत नामक संवत्सर का सकल्पादि मे प्रयोग वर्ष पर्यन्त करना चाहिए। भलेही गुरू मान से परिधावी नामक संवत्सर का प्रवेश मध्य मे ही होगा।

इस वर्ष के राजा शनि, मन्त्री मंगल, पालक सूर्य, मेघेश शुक्र, तोयेश शनि, शश्येश गुरू, लोकेश सोम, संवर्त्तकद्रोण।

-: सान् २०१९-२० ई. का मुहूर्त्तादि :-

मुण्डनः- नव. २०१९-२८।जन. २०२०-२७,३१।फर-५,७,२८। मर्च-२,५,६,११,१२।अप्रैल - २७,२९,३०। मई -२५,२७।जून-१,३,१०,२४।

उपनयनः-जन.- २७,२९,३०।फर.-४,५,२६,२८। मार्चः-४,५,६। अपैल-२७,२८। मई-३।

विवाहः- नव. २०१९- २०,२२,२४,२७,२८,२९। दिस.- १,२,६,८,११,१२। जन. २०२०- १७,१९,२०,२२,२४,२६,२९,३०,३१। फरवरीः-३,५,९,१०,१६,१९,२०,२१,२६,२७,२८।मार्चः-१,२,८,११,१२। अप्रैलः-१५,१६,१७,२०, २३,२६,२७। मईः-३,४,६,७,८,१०,१७,१८,२०,२२। जूनः ७,८,१०,११,१७।

गृहारम्भः- नव. -६,७,९,१४,१५।दिस. -७,११,१२।मार्च २०२० -२,५,६,११,१२। मई-४,७,८,९। जून -८,१०।

गृहप्रवेशः- नव. ६,७,९,११।दिस. -२,६,७। मार्च २०२० - २,५,६। अप्रैल-२९,३०। मई-४।

||द्वदश ज्योतिर्लिङ्गानि ||

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालम् ॐकारममलेश्वरम् || १ ||
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशंकरम् ।
सेतुबंधे तु रामेशं नागेशं दारूकावने || २ ||
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यंबकं गौतमीतटे ।
हिमालये तु केदारम् घुश्मेशं च शिवालये || ३ ||
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति || ४ ||

धन्य ई मिथिला धाम, जतय ऐला राम भगवान ।
धन्य अयाची - मंडन - विद्यापति - वाचस्पति भान ||
धन्य विदेश्वर - कपिलेश्वर, चन्देश्वर अभिराम ।
धन्य मछैता विषहरि, भव्यभवानीपुर गाम ||
धन्य मिथि आ मिथिला, ओ धन्य विदेहक रजधाम ।
धन्य धराऽसीताराम 'रमण' करै छथि नमन प्रणाम || धन्य-धन्य....

पाठ्यक्रम समिति एवं अध्ययन मण्डल (सत्र 2017-18)

पाठ्यक्रम सम्पादन एवं संयोजन

डॉ. नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	खण्ड	इकाई संख्या
डॉ. शिवाकान्त मिश्र असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग श्रीजगद्गुरू रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर	1	1, 2, 3, 4, 5
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी असिस्टेन्ट प्रोफेसर एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।	2	1,2,3,4,5
डॉ. श्याम देव मिश्र असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, भोपाल परिसर, भोपाल (मध्यप्रदेश)	3	1,2,3
डॉ. नन्दन कुमार तिवारी ज्योतिष विभाग एवं समन्वयक, ज्योतिष विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल	3/4	4,5,6 / 1,2,3,4,5,6

प्रकाशन वर्ष - 2019

प्रकाशक - उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी।

मुद्रक: -

ISBN No. -

MAJY-103

पंचांग एवं मुहूर्त्त

अनुक्रम

एम.ए.ज्योतिष

प्रथम वर्ष

तृतीय प्रश्न पत्र

पंचांग एवं मुहूर्त

MAJY-103

खण्ड - 1
पंचांग परिचय

इकाई - 1 पंचांग का स्वरूप एवं संक्षिप्त इतिहास

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 पंचांग परिचय

1.3.1 पंचांग का स्वरूप

1.3.2 पंचांग सम्बन्धित काल

1.4 पंचांग का संक्षिप्त इतिहास

1.5 सारांश

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

1.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के प्रथम खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – पंचांग का स्वरूप एवं संक्षिप्त इतिहास। इससे पूर्व में आपने सिद्धान्त ज्योतिष एवं काल के बारे में जान लिया है। अब आप इस इकाई में पंचांग के स्वरूप एवं उसका संक्षिप्त इतिहास का अध्ययन करने जा रहे हैं।

पंचांग ज्योतिषशास्त्र का सारतत्व है, जिसमें ज्योतिष के समस्त अवयव निहित है। कदाचित् इसीलिए यह भी कहा जाता है कि जिस व्यक्ति को पंचांग का ज्ञान हो जाता है, वह ज्योतिषी बन जाता है। पंचांग के प्रधानतया पाँच अंग है – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण।

आइए इस इकाई में पंचांग के स्वरूप एवं उसके इतिहास को समझने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि पंचांग किसे कहते है।
- समझ लेंगे कि भारतवर्ष में पंचांगनिर्माण की परम्परा कब से विकसित है।
- पंचांग के स्वरूपों के बारे में जान जायेंगे।
- पंचांग के इतिहास का बोध कर लेंगे।
- आपको पंचांग के विभिन्न अवयवों का ज्ञान हो जायेगा।

1.3 पंचाग परिचय

भारतीय ज्योतिषशास्त्र का मूलाधार आकाशीय ग्रहनक्षत्रों का गणित तथा वेध है। गणित के आधार पर सूर्य चन्द्रादि की स्थितियों का सही निर्णय कर गोलीयवेध से दृग्गणितैक्यजन्य समन्वय के द्वारा ग्रहों की वास्तविक दृष्टयुपलब्ध स्थिति ही, उनकी व्यवहारिक उपयोगिता का मूल आधार है। पर्व, धर्मकार्य, यात्रा, विवाह, उत्सव जातक तथा भविष्यफल की जानकारी हेतु ग्रहगणित की शुद्धता की परख पंचांगनिर्माण के द्वारा ही सिद्ध होता है।

पंचानां अंगानां समाहार: इति पंचांगम्। पंचांग में पाँच अंग प्रधान होते है – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण। इन पाँच अंगों के समाहार को पंचांग कहते है। यथा –

तिथिवारं च नक्षत्रं योग: करणमेव च।
इति पंचांगमाख्यातं व्रतपर्वनिदर्शकम्।।

ये सभी व्यक्तकाल के प्रधान तत्व है। इनके ही आधार पर प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक, व्यावहारिक एवं शास्त्रीयकार्य सम्पन्न होते हैं। 'पंचांग' ज्योतिषशास्त्र का मेरूदण्ड माना जाता है। शककाल, वर्षारम्भ, संवत्सर, पूर्णिमान्त- अमान्त मान इत्यादि कुछ बातें पंचांग की ही अंगभूत है। विदित है कि ज्योतिषगणित में ग्रहस्थिति लाने के लिए कोई न कोई आरम्भकाल मानना आवश्यक होता है।

1.3.1 पंचांग का स्वरूप

भारतवर्ष में पंचांग निर्माण की प्रथा वैदिककाल से चली आ रही है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि पंचांग का प्रादुर्भव हमारे देश में तभी से प्रचलित हुआ होगा जब हमें ज्योतिषशास्त्र का किंचित ज्ञान होने लगा था, पर यह निश्चित है कि वह पुराना पंचांग आज के समान नहीं था। पंच अंग के स्थान पर कदाचित् उस समय चतुरंग, त्र्यंग, द्वयंग अथवा एकांग भी प्रचलित थे और लिपि का ज्ञान होने के पहले तो कदाचित् श्रवण कर मुखार्थ ही उनका ज्ञान कर लेते रहे होंगे। परन्तु इतना अवश्य है कि ज्योतिषस्थिति दर्शक कोई पदार्थ अति प्राचीनकाल से ही प्रचलित रहा है।

वेदों में भी लिखा है कि अमुक दिन, नक्षत्र और ऋतु में अमुकामुक कर्म करने चाहिए, अत: स्पष्ट है कि ज्योतिर्दर्पण अत्यन्त प्राचीन है। उसका प्रथम अंग सावन दिन है। सम्प्रति सावन दिन के स्थान पर वार का प्रयोग किया जाता है। सावन दिन के बाद नक्षत्रों का ज्ञान हुआ और नक्षत्र दूसरा अंग बना। उसके बाद तिथि का ज्ञान हुआ। वेदांगज्योतिषकाल अर्थात् शकपूर्प १४००वें वर्ष में तिथि और नक्षत्र अथवा सावन दिन और नक्षत्र दो ही अंग थे। तिथि का मान लगभग ६० घटी होता है अर्थात् उसे अहोरात्र दर्शक जानना चाहिए। तदनुसार केवल दिन अथवा केवल रात्रि के दर्शक तिथ्यर्ध अर्थात् करण नामक अंग का प्रचार तिथि के थोड़े ही दिनों बाद हुआ होगा और उसके बाद वार प्रचलित हुए होंगे। अथर्वज्योतिष में करण और वार दोनों का उल्लेख मिलता हैं।

आकाश में सूर्य और चन्द्रमा के एकत्र होने पर अर्थात् उनका योग समान होने पर अमावस्या समाप्त होती है। इसके बाद गति अधिक होने के कारण चन्द्रमा सूर्य से आगे जाने लगता है। दोनों में १२ अंश का अन्तर पड़ने में जितना समय लगता है उसे 'तिथि' कहते है। इस प्रकार दोनों के पुन: एकत्र होने तक अर्थात् एक चान्द्रमास में ३६० ÷ १२ = ३० तिथियाँ होती हैं। सूर्य और चन्द्रमा में ६अंश पड़ने में जो समय लगता है उसे करण कहते हैं। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक के काल को वार कहते हैं। नक्षत्रमण्डल के आठ- आठ सौ कलाओं के २७ समान भाग माने गये हैं प्रत्येक भाग को और उसे भोगने में चन्द्रमा को जितना समय लगता है, उसे 'नक्षत्र' कहते हैं। सूर्य-चन्द्र के भोगों के योग द्वारा योग लाया जाता है। सूर्य और चन्द्रमा की गति का योग ८०० कला में जितना समय लगता है उसे 'योग' कहते हैं।

अथर्वज्योतिष में करण और वार दोनों विद्यमान है, हमारे देश में शकारम्भ के पूर्व नक्षत्रप्रधान गणना रहने पर भी मेषादि संज्ञाओ का प्रचार वैदिक काल में हुआ होगा। यह भी देखा जाता है, कि अथर्वज्योतिष और याज्ञवल्यस्मृति में राशियों का ज्ञान होने के शताब्दी पूर्व वारों का का ज्ञान हुआ होगा। एक अन्य ग्रन्थ में भी इसका प्रमाण मिलता है। ऋकगृह्य परिशिष्ट में तिथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र एवं तिथियों की नन्दादि संज्ञाओं दिन क्षय और वार का वर्णन है परन्तु मेषादि राशियों का स्पष्ट वर्णन नहीं है। अत: ये तीनों ग्रन्थ मेषादि राशियों के प्रचार होने के पूर्व के हो सकते है। परन्तु इन तीनों का निर्माण एक ही समय नहीं होगें यह निश्चित है। इससे ज्ञात होता है कि वारों का ज्ञान मेषादि संज्ञाओं से कई शताब्दी पूर्व हुआ है। वारों और मेषादि संज्ञाओं की उत्पत्ति सर्वप्रथम आधुनिक समालोचकों के अनुसार चाहे जहाँ हुई हो पर उनका सर्वत्र प्रचार होने से उनका मूल एक होना चाहिए। क्योंकि उनमें गणितादि का कोई प्रपंच नहीं है। उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में दोनों एक साथ प्रचलित हुए होंगे। आधुनिक संकल्पना के अनुसार वारों का प्रचार मेषादि राशियों से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व अर्थात् शक पूर्व १०००० के आस पास हुआ होगा। वे शक पूर्व ३००० अर्वाचीन तो वे कथमपि नहीं ही है।

करण नामक काल विभाग तिथि द्वारा अपने आप ध्यान में आने योग्य है। तिथि के कुछ दिनों बाद और वार के पूर्व उसका प्रचार प्रसार हुआ होगा। वेदांगकालीन जिन ग्रन्थों का विवेचन भारतीय ज्योतिष में किया गया है, उनमें से अथर्वज्योतिष याज्ञवल्क्यस्मृति और ऋग्गृह्य परिशिष्ट, इन तीनों ग्रन्थों में वार शब्द आये है। इन तीनों में से याज्ञवल्क्यस्मृति में करण नहीं है। शेष दो में करण का वर्णन मिलता है। इससे शंका होती है कि वार के पहले करण का प्रचार नहीं रहा होगा। यदि यह ठीक है तो दोनों का प्रचार एक ही समय हुआ होगा अथवा करण वारों के कुछ दिनों के बाद शीघ्र ही प्रचलित हुए होंगे। इससे ज्ञात होता है कि ये भी शक पूर्व ३००० से अर्वाचीन नहीं है। शनिवार, रविवार, सोमवार इत्यादि वार क्रम का विवेचन भारतीय ज्योतिष के सिद्धान्त ग्रन्थों में उल्लिखित हैं। सम्प्रति भूमण्डल में जहाँ-जहाँ वार प्रचलित है, सर्वत्र सात ही है और उनका क्रम भी सर्वत्र एक है। अत: वारों की उत्पत्ति किसी एक ही स्थान में हुई। अहोरात्र शब्द से होरा की उत्पत्ति तथा सूर्यसिद्धान्त में वार क्रम की उत्पत्ति का विधान प्राप्त है। अत: विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ वेद ही सूर्यादि क्रम से वारोत्पत्ति का प्रथम मूल है। वहीं से सह दुनियाँ भर में फैला। यद्यपि हमारे देश में अब तक अनेकों ताम्रपट्ट और शिलालेख मिल है उनमें वारों का उल्लेख का प्राचीनतम उदाहरण शक ४०६ का विद्यमान है। मध्यप्रान्त के 'एरन' नामक स्थान के एक खम्भे पर बुद्धगुप्त राजा का गुप्त वर्ष १६५ अर्थात् शक ४०६ आषाढ़ शुक्ल द्वादशी गुरूवार का एक शिलालेख है। इस समय इससे

प्राचीन ज्योतिष का ऐसा पौरूष ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, जिसके लेख से यह विदित होता हो कि वह शक ४०६ से प्राचीन है।

श्रीमानदीक्षित के वारोत्पत्ति क्रम का वैदेशिक बोध का खण्डन श्रीमान वेदविद्यालंकार पं0 दीनानाथ शास्त्री चुलैट तथा वि0वि0 मधुसूदन के प्रमाण से हो जाता है। वेदों में सभीग्रह तथा नक्षत्र एवं केतुओं के साथ राशि विज्ञान प्रमाणिकता के साथ प्राप्त होने से वारक्रम के भारतीय मूल होने में सन्देह की कोई गुंजाईश नहीं है।

भारतीय पंचांग का निर्माण तीन पक्षों पर आधारित हैं – सौरपक्ष, आर्यपक्ष एवं ब्राह्मपक्ष। सूर्यसिद्धान्त से सम्बन्धित सौरपंचांग का निर्माण होता था। आर्यभट्टीयम् पर आधारित आर्यपक्षीय पंचांग तथा ब्राह्मस्फुटसिद्धान्त पर आधारित ब्राह्मपक्षीय पंचांग आदि का निर्माण होता था। कालान्तर (१४०० शक) में मकरन्दीय पंचांग का निर्माण मकरन्दसारिणी के आधार पर हुआ, किन्तु सारिणी सूर्यसिद्धान्त को आधार मानकर निर्मित की गई थी, अत: यह भी सौर पंचांगीय परम्परा के अन्तर्गत ही आता है। भारतवर्ष में प्राचीन पद्धतियों में सूर्यसिद्धान्त, ग्रहलाघव, मकरन्द तथा नवीन पद्धतियों में केतकीग्रहगणित, सर्वानन्दकरण तथा नाटिकल अल्मनाक द्वारा पंचांगों का निर्माण सम्प्रति अधिक रूप से देखा जा रहा है। मुख्यत: भारतवर्ष में दो प्रकार के पंचांग निर्मित होते हैं – 1. सायण 2. निरयण। अयनांश सहित सायन एवं अयनांश रहित निरयण पंचांग होता है।

1.3.2 पंचांग सम्बन्धित काल

हमारे पंचांग के आरम्भ में संवत्सर फल विचार में युधिष्ठिर, विक्रम, शालिवाहन इत्यादि कलियुग के ६ शककर्ताओं के नाम लिखे रहते हैं। उनमें से युधिष्ठिरादि तीन बीत चुके हैं और तीन आगे होंगे। शक शब्द वस्तुत: एक जाति का बोधक है। भटोत्पल इत्यादिकों ने लिखा है कि विक्रमादित्य द्वारा शकों के पराजित होने के समय से शक नाम से कालगणना आरम्भ हुई, पर यह कथन सयुक्तिक नहीं प्रतीत होता। शक जाति के ही राजाओं ने अपने नाम पर कालगणना का आरम्भ किया होगा। शक शब्द प्रथम एक जाति का द्योतक था, परन्तु आज वह युधिष्ठिर शक, विक्रम शक इत्यादि शब्दों में काल अर्थ का अर्थात् इंगलिश के इरा और अरबी के सन् अर्थ का वाचक हो गया है। प्राचीन ताम्रपत्रादि लेखों में सन् अर्थ में संस्कृत के काल शब्द का प्रयोग मिलता है, जैसे – शकनृपकाल, विक्रमकाल,गुप्तकाल (गुप्त राजाओं के नाम पर आरम्भ किया हुआ काल)। भारतवर्ष में विक्रमकाल, शककाल इत्यादि अनेक काल प्रचलित थे और हैं। आइए यहाँ कुछ प्रमुख व्यावहारिक कालों को जानते है –

कलिकाल – ज्योतिषग्रन्थों और पंचांगों में कालगणना में कलियुग का भी उपयोग करते हैं। इस

काल के चैत्रादि और मेषादि दो वर्ष प्रचलित हैं। पंचांगों में कभी इसका गत वर्ष, कभी वर्तमान वर्ष और कभी–कभी दोनों लिखते हैं। ताम्रपत्रादि लेखों में इसका अधिक प्रयोग नहीं मिलता। व्यवहार में भी इस समय इसका प्रचार कही नहीं है, परन्तु मद्रास प्रान्त में कुछ ऐसे पंचांग मिलते हैं जिनमें केवल कलिवर्ष लिखा रहता है। शक में ३१७९ जोड़ने से गत कलिवर्ष आता है।

विक्रम काल – सम्प्रति यह गुजरात में और बंगाल को छोड़कर सम्पूर्ण उत्तर भारत में प्रचलित है। उन प्रान्तों के लोग अन्यत्र भी जहाँ हैं, इसी का प्रयोग करते हैं। नर्मदा के उत्तर इसके वर्ष का आरम्भ चैत्र से होता है और मास पूर्णिमान्त हैं, परन्तु गुजरात में वर्ष कार्तिकादि है और मास अमान्त हैं। सन् ४५० ई0 से ८५० पर्यन्त इस काल को मालवकाल कहते थे। विक्रम शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम विक्रम संवत् ८१८ के एक लेख में मिलता है, पर उससे भी यह स्पष्ट नहीं ज्ञात होता कि वह विक्रम राजा के ही उद्देश्य से किया गया है। वैसा स्पष्ट उल्लेख विक्रम संवत् १०५० के एक काव्य में सर्वप्रथम मिलता है। सम्प्रति विक्रमकाल को विक्रमसंवत् अथवा केवल संवत् भी कहते हैं। संवत् शब्द वस्तुत: संवत्सर का अपभ्रंश है। शंकसंवत् सिंहसंवत् वलभीसंवत् इत्यादि प्रयोग अनेक स्थानों में मिलते हैं। मद्रास प्रान्त के कुछ पंचांगों में शकवर्ष के साथ –साथ विक्रम का भी वर्तमान वर्ष लिखा रहता है। इधर जिस वर्ष को शक १८१८ कहते हैं, उसे वहाँ शक १८१९ और विक्रम संवत् १९५४ कहते हैं। शक में १३४ -१३५ जोड़ने से कार्तिकादि और १३५ जोड़ने से चैत्रादि विक्रम वर्ष आता है।

ख्रिस्ती सन् (ईसवी सन्) – हमारे देश में इस सन् का प्रचार अंग्रेजों का राज्य होने के बाद हुआ है। इसका वर्ष सायन सौर है। इसका आरम्भ जनवरी की पहली तारीख से होता है। सम्प्रति जनवरी का आरम्भ अमान्त पौष या माघ में होता है। यह पद्धति सन् १७५२ ई0 से चली है। इसके पूर्व जनवरी का आरम्भ ११ दिन पहले होता था। शक में ७८ या ७९ जोड़ने से ख्रि्स्ती वर्ष आता है।

शक काल – ज्योतिषशास्त्र के करणग्रन्थों में यही काल लिया गया है। ज्योतिषियों का आश्रय प्राप्त होने के कारण ही यह आज तक टिका है, अन्यथा गुप्तकाल, शिवाजी कि राज्याभिषेक शक इत्यादिकों की भाँति यह भी बहुत पहले ही लुप्त हो गया होता। सम्प्रति टिनेवल्ली और मलावार के कुछ भाग को छोड़कर सम्पूर्ण दक्षिण भारत में व्यवहार में मुख्यत: इसी काल का प्रचार है। भारत के अन्य भागों में भी यह स्थानिक काल के साथ-साथ प्रचलित है। इसका वर्ष चान्द्र और सौर है। चान्द्र वर्ष चैत्रादि और सौर वर्ष मेषादि है। नर्मदा के उत्तर भाग में इसके मास पूर्णिमान्त और दक्षिण में अमान्त है।

हिजरी सन् - इसकी उत्पत्ति अरब में हुई है। हमारे देश में इसका प्रचार मुस्लिम राज्यकाल से हुआ है। हिझर का अर्थ है – भागना। मुसलमानों के पैगम्बर मुहम्मद साहब १५ जुलाई सन् ६२२ ई0 तदनुसार शक ५४४ श्रावण शुक्ल १ गुरूवार की रात्रि (मुसलमानों की शुक्रवार की रात) को मक्का से भागकर मदीना गये थे। उनके भागने का समय ही इस सन् का आरम्भकाल है और इसीलिए इसे हिजरी सन् कहते हैं। इसके मोर्हरम इत्यादि मास चान्द्र हैं। अधिकमास लेने की पद्धति न होने के कारण यह वर्ष केवल चान्द्र अर्थात् ३५४ या ३५५ दिनों का होता है और इस कारण प्रति ३२ या ३३ सौर वर्षों में इस सन् के वर्ष का अंक किसी भी सौरकाल के वर्ष के अंक की अपेक्षा १ बढ़ जाता है। मास का आरम्भ शुक्लपक्ष की प्रतिपदा या द्वितीया के चन्द्रदर्शन के बाद होता है। मास के दिनों को प्रथम दिन, द्वितीय दिन न कहकर प्रथमचन्द्र, द्वितीयचन्द्र इत्यादि कहते हैं। मास में इस प्रकार के चन्द्र २९ या ३० होते हैं। वार और तारीख का आरम्भ सूर्यास्त से होता है। इस कारण हमारे गुरूवार की रात्रि मुसलमानी पद्धति के अनुसार शुक्रवार की रात्रि होती है, पर दिन के नाम में अन्तर नहीं पड़ता।

बंगाली सन् – यह सन् बंगाल में प्रचलित है। इसका वर्ष सौर है। इसका आरम्भ मेषसंक्रान्ति से होता है। महीनों के नाम चैत्र, वैशाख इत्यादि चान्द्र ही हैं। जिस महीने का आरम्भ मेषसंक्रान्ति से होता है उसे वैशाख कहते हैं। तमिल प्रान्त में उसी को चैत्र कहते हैं। बंगाली सन् में ५१५ जोड़ने से शकवर्ष और ५९३ -९४ जोड़ने से ईसवी सन् आता है।

फसली सन्- फसल तैयार होने के काल के अनुसार इसे अकबर बादशाह ने चलाया है। पहले हिजरी सन् का ही वर्षांक इसमें लगाया गया, परन्तु हिजरी सन् केवल चान्द्र ३५४ दिन का और फसली सन् सौर होने के कारण बाद में दोनों के वर्षांकों में अन्तर पड़ने लगा। हिजरीसन् ९३६, ईसवीसन् १५५६ में अकबर गद्दी पर बैठा। उत्तर भारत में फसली सन् उसी समय आरम्भ हुआ और दक्षिण में शाहजहाँ ने उसे ईसवी सन् १६३६अर्थात् हिजरी सन् १०४६ में आरम्भ किया। प्रथम उसमें हिजरीसन् का ही वर्षांक अर्थात् १०४६ लगाया गया। उस समय उत्तर के फसली सन् का वर्षांक १०४४ था। इसलिए दक्षिण का अंक उत्तर की अपेक्षा दो अधिक हो गया। हिजरी वर्ष के केवल चान्द्र होने के कारण ऐसा हुआ। उत्तर और दक्षिण का वर्षारम्भ भिन्न होने के कारण दोनों में कुछ और महीनों का भी अन्तर पड़ गया। इस वर्ष का उपयोग केवल सरकारी कामों में होता है। धार्मिक कृत्यों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रतीत होता है कि इसी कारण इसका आरम्भकाल अनियमित हो गया।

इसी तरह इनके अतिरिक्त चेदिकाल अथवा कलचुरिकाल, गुप्तकाल, वलभीकाल,

बिलायती सन्, अमली सन् , सूरसन या शाहूरसन्, हर्षकाल, मगी सन्, कोल्लमकाल अथवा परशुरामकाल, नेवारकाल, चालुक्यकाल, सिंहसंवत्, लक्ष्मणसेनकाल, तथा इलाही सन् भी होते हैं।

चान्द्रसौर मान - हमारे यहाँ कई मान प्रचलित हैं। धर्मशास्त्रोक्त अधिकांश कृत्यों का सम्बन्ध तिथि से अर्थात् चान्द्रमान से है, कुछ कर्म संक्रान्ति से अर्थात् सौरमान से सम्बन्ध रखते हैं और प्रभवादि संवत्सरों की उत्पत्ति बार्हस्पत्य मान से हुई है तथापि कुछ प्रान्तों में सौर मान का और कुछ में चान्द्रमान का विशेष प्रचार है। बंगाल में सौरवर्ष प्रचलित है। मद्रास में छपे ज्वालापति सिद्धान्तीकृत शक १८०९ के पंचांग में लिखा है कि इस देश में लोकव्यवहारार्थ चान्द्रमान ग्राह्य है और शेषाचल के दक्षिण सौरमान ग्राह्य है। सौर का सम्बन्ध सूर्य से तथा चान्द्र का सम्बन्ध चन्द्रमा से होता है। सूर्य के द्वारा एक अंश का भोग एक सौर दिन तथा चन्द्रमा द्वारा तिथि का भोग चान्द्र दिन कहलाता है।

इसी प्रकार कालों के पश्चात् पंचांग से सम्बन्धित प्रमुख विषय वर्षारम्भ, नक्षत्रारम्भ, मासारम्भ आदि को भी आइए क्रमश: जानने का प्रयास करते हैं -

वर्षारम्भ – यजुर्वेदसंहिताकाल में और तदनुसार उसके बाद सभी वैदिक कालों में वसन्त ऋतु तथा मधुमास के आरम्भ में वर्ष का आरम्भ माना जाता था। वैदिक काल के अन्त में मधुमास का नाम चैत्र पड़ा। संवत्सरसत्र के अनुवाक तथा कुछ अन्य वाक्यों से ज्ञात होता है कि चित्रापूर्णमास (चैत्रशुक्ल १५ अथवा कृष्ण १), (फाल्गुनीपूर्णमास फाल्गुन शुक्ल १५ अथवा कृष्ण १), और कदाचित् अमान्त माघ कृष्ण ८ को संवत्सर का मुख कहा है। यह फाल्गुन अमान्त है या पूर्णिमान्त यह ज्ञान का विषय है। संभवत: किसी समय पूर्णिमान्त पौषारम्भ में भी वर्षारम्भ होता था, परन्तु उस समय पौष नहीं था। वेदांगज्योतिष में अमान्त माघ के आरम्भ में वर्षारम्भ माना है। महाभारत में मार्गशीर्ष के वर्षारम्भ होने के उल्लेख हैं तथापि सूत्रादिकों से ज्ञात होता है कि वेदांगकाल में चैत्रादि वर्ष का प्राध्यान्य था। ज्योतिष शास्त्र के ग्रन्थकार अपनी सुविधा के अनुसार सौरवर्षारम्भ से अथवा चान्द्रसौर वर्षारम्भ से गणित करते हैं। गणेश दैवज्ञ ने ग्रहलाघव में चान्द्रसौर वर्षारम्भ से गणित किया है, परन्तु उन्हीं ने तिथिचिन्तामणि में मेषसंक्रान्ति को वर्षारम्भ माना है। सौरवर्ष का आरम्भ अधिकतर मध्यम मेषसंक्रान्ति और कोई – कोई स्पष्ट मेषसंक्रान्ति से करते हैं। चान्द्रसौर वर्ष का आरम्भ चैत्रशुक्ल प्रतिपदा के आरम्भ से ही किया जाता है, यह कोई नियम नहीं है। प्राय: उस दिन सूर्योदय से और कभी-कभी मध्यरात्रि, मध्याह्न अथवा सूर्यास्त से भी वर्षारम्भ मानते हैं।

धर्मशास्त्र में चैत्र के आरम्भ से वर्षारम्भ माना है। व्यावहारिक दृष्ट्या धर्म और व्यवहार का निकट सम्बन्ध होने के कारण दोनों प्रकार के वर्षारम्भ का भी निकट सम्बन्ध है। भारत के अधिक

भाग में वर्षारम्भ चैत्र से होता है। जिन प्रान्तों में शक काल और चान्द्रमान का व्यवहार होता है उनमें चैत्रशुक्ल प्रतिपदा को वर्षारम्भ होता है। नर्मदा के उत्तर बंगाल को छोड़कर शेष प्रान्तों में विक्रमसंवत् चान्द्रमान और पूर्णिमान्त मास का प्रचार है तो भी वर्षारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से ही होता है। बंगाल में शककाल और सौरमान प्रचलित हैं। वहाँ वर्षारम्भ सौर वैशाख से अर्थात् स्पष्ट मेषसंक्रान्ति से होता है परन्तु चान्द्र चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का महत्व वहाँ भी होगा। तमिल प्रान्त में सौर मान प्रचलित है। वहाँ वर्षारम्भ स्पष्ट मेषसंक्रान्ति से मानते हैं पर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा का माहात्म्य वहाँ भी होगा।

वसन्त में मधु मास के आरम्भ अर्थात् चैत्रारम्भ में वर्षारम्भ होने का वर्णन श्रुति (वेद) , वेदांग, स्मृति, पुराण, ज्योतिषगणितग्रन्थ तथा धर्मशास्त्र के प्राचीन और अर्वाचीन निबन्धग्रन्थ सभी में है। गुप्तसंवत् १५६ से २०९ तक के अर्थात् शकवर्ष ३९७ से ४५० तक के गुप्त राजाओं के जो ताम्रपत्रादि लेख मिले हैं,उनमें लिखित ज्योतिष सम्बन्धी सभी बातों की संगति चैत्रारम्भ में वर्षारम्भ मानने से मिलती हैं। इन गुप्तों की सत्ता एक समय उत्तर भारत के अधिकतर भाग में व्याप्त थी। बेरूनी ने भी चैत्रारम्भ में वर्षारम्भ लिखा है। सारांश यह है कि यह वर्षारम्भ सार्वकालिक, सार्वत्रिक और सर्वमान्य है। इसके रहते हुए भी कहीं-कहीं अन्य वर्षारम्भ थे और हैं। चैत्र कृष्ण प्रतिपदा वसन्त में ही पड़ती है। प्रतीत होता है, इसी कारण पूर्णिमान्त पद्धति के अनुसार वैदिक काल के कुछ भागों में कहीं-कहीं उसे भी वर्षारम्भ मानते थे। बंगाल में सौर वैशाख के आरम्भ में अर्थात् मेषारम्भ में वर्षारम्भ मानते हैं।

नक्षत्रचक्रारम्भ – वेदों में नक्षत्रारम्भ कृत्तिका से है। अनुमान होता है कि कृत्तिका के पूर्व मृगशीर्ष से नक्षत्रगणना करते रहे होंगे, पर इसका प्रत्यक्ष उल्लेख कहीं नहीं मिलता। ज्योतिष सिद्धान्तग्रन्थों में अश्विनी को आदि-नक्षत्र माना है। वैदिक काल या वेदांगकाल में यह पद्धति नहीं थी। वेदांगज्योतिष में धनिष्ठा से गणना की है। महाभारत से ज्ञात होता है कि एक समय श्रवण प्रथम नक्षत्र था, अर्थात् ये दोनों वेदांगकाल में प्रथम नक्षत्र आदि माने जाते थे। उस समय कृत्तिका भी प्रथम नक्षत्र था ही। मृगशीर्ष, कृत्तिका धनिष्ठा तथा श्रवण का सम्बन्ध उत्तरायणारम्भ से है।

नक्षत्रचक्र के आरम्भ में क्रमश: एक-एक नक्षत्र पीछे मानने की परम्परा चली आ रही हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता।

अभ्यास प्रश्न – 1 बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. पंचांग में कितने अंग प्रधान रूप से होते हैं?

   क. 4 ख. 5 ग.7 घ. 9

2. भारतवर्ष में पंचांग बनाने की परम्परा कब से आरम्भ हुई थी?

   क. वैदिककाल से   ख. सिद्धान्त काल से   ग. मध्यकाल से   घ. आधुनिक

3. निम्नलिखित में ज्योतिषशास्त्र का मेरूदण्ड माना जाता है –

   क. वेद   ख. पंचांग   ग. काल   घ. ऋतु

4. धर्मशास्त्र में किस मास से वर्षारम्भ माना गया है?

   क. चैत्र   ख. वैशाख   ग. मार्गशीर्ष   घ. कार्तिक

5. वेदों में नक्षत्रारम्भ किस नक्षत्र से माना गया है?

   क. धनिष्ठा   ख. कृत्तिका   ग. अश्विनी   घ. रोहिणी

6. सूर्य एवं चन्द्रमा के द्वादशात्मक गत्यन्तर को कहते हैं?

   क. तिथि   ख.वार   ग. नक्षत्र   घ. करण

मासारम्भ –

तिथि का आरम्भ और सूर्य संक्रमण (उसका एक राशि से दूसरी में गमन) दिन में किसी भी समय हो सकता है और वस्तुत: चान्द्र और सौर मासों का आरम्भ क्रमश: इन्हीं समयों से होता है, परन्तु सूर्योदय से मासारम्भ मानने से व्यवहार में सुविधा होती है इसलिए जिस दिन सूर्योदय में प्रतिपदा रहती है, उसी दिन चान्द्रमास का आरम्भ मान लेते हैं। प्रतिपदा दो दिन सूर्योदय काल में रहने पर मासारम्भ प्रथम दिन माना जाता है। सौरमासारम्भ के निम्नलिखित कई नियम प्रचलित हैं।

1. (क) बंगाल में सूर्योदय और मध्यरात्रि के बीच में संक्रान्ति होने पर पर्वकाल उसी दिन मानते हैं

और मासारम्भ दूसरे दिन करते हैं। मध्यरात्रि के बाद और सूर्योदय के पूर्व संक्रान्ति हुई तो पर्वकाल दूसरे दिन और मासारम्भ तीसरे दिन मानते हैं।

1. (ख) उड़ीसा प्रान्त में अमली और विलायती सनों के मासों का आरम्भ संक्रान्ति के दिन ही होता है, संक्रान्ति चाहे जिस समय हो। मद्रास में भी दो नियम है।
2. क. तमिल प्रान्त में सूर्यास्त के पूर्व संक्रान्ति होने पर उसी दिन और सूर्यास्त के बाद होने पर दूसरे दिन मासारम्भ मानते हैं। 2. (ख) मालवार प्रान्त में अपराह्न का आरम्भ होने के पूर्व संक्रान्ति होने पर उसी दिन और बाद में होने पर दूसरे दिन मासारम्भ मानते हैं। श्रीमान दीक्षित जी ने यह नियम उन प्रान्तों के पंचांगों तथा कुछ अन्य बातों के आधार पर लिखे हैं, पर इनके अपवाद भी हो सकते हैं।

संवत्सर –

'वृहस्पते मध्यम राशि भोगात् संवत्सरा सांहितिका वदन्ति' भास्कराचार्य की इस उक्ति के अनुसार वृहस्पति के मध्यम भोग मान से संवत्सर का ज्ञान होता है। संवत्सर शब्द वस्तुत: वर्ष अर्थ का वाचक है, परन्तु एक पद्धति यह है कि ६० वर्षों के प्रभाव इत्यादि क्रमश: ६० संज्ञायें रख दिये गये हैं, उन संज्ञाओं व नामों को भी संवत्सर कहा जाता है। इन संवत्सरों की उत्पत्ति वृहस्पति की गति से होने के कारण इन्हें बार्हस्पत्य संवत्सर कहते हैं। वृहस्पति को नक्षत्रमण्डल की एक प्रदक्षिणा करने में लगभग १२ वर्ष लगते हैं, यह बात ज्ञात हो जाने पर बार्हस्पत्य संवत्सर की उत्पत्ति हुई होगी। जैसे सूर्य को नक्षत्रमण्डल की एक प्रदक्षिणा करने में जितना समय लगता है उसे वर्ष और उसके १२ वें भाग को मास कहते हैं, उसी प्रकार पहले गुरु की एक प्रदक्षिणा सम्बन्धी काल को गुरु वर्ष और उसके लगभग १२ वें भाग को गुरुमास कहते रहे होंगे। चान्द्र मासों के चैत्रादि १२ नाम नक्षत्रों के नाम पर पड़े हैं। सूर्यसान्निध्य के कारण गुरु वर्ष में कुछ दिन अस्त रहता है। जिस नक्षत्र में उसका उदय होता है उसी के नाम पर चान्द्र मास की भॉति गुरुमासों के भी नाम रखे गये। ये गुरु के मास वस्तुत: सौर वर्षों के ही नाम हैं। इसीलिए इन्हें चैत्रसंवत्सर, वैशाखसंवत्सर इत्यादि कहने लगे।

द्वादश संवत्सरचक्र –

वर्षसंख्या गणना करने का एक उत्तम साधन है द्वादश संवत्सर चक्र। ये दो प्रकार के हैं। एक तो वह है जिसमें संवत्सर का नाम गुरु के उदयानुसार रखा जाता है। इसे उदय पद्धति कहते हैं। गुरु का एक उदय होने के लगभग ४०० दिनों के पश्चात् दूसरा उदय होता है और एक गुरुभगण में अर्थात् १२ वर्षों में ११ गुरुदय होते हैं और एक संवत्सर का लोप हो जाता है। इस पद्धति में किंचित् असुविधा है। इसीलिए ज्योतिर्विदों ने गुरु की मध्यम गति का वास्तविक ज्ञान हो जाने पर नक्षत्रमण्डल का १२ वाँ भाग अर्थात् एक राशि चलने में गुरु को जितना समय लगता है उसे गुरु का मास अर्थात् संवत्सर मानने का निश्चय किया। इस प्रकार १२ वर्ष में संवत्सर का लोप नहीं होता। इसे मध्यम राशिपद्धति कहेंगे। गुरु को एक राशि चलने में मध्यम मान से कितना समय लगता है, यह जानना उतना सरल नहीं है जितना गुरु का उदय देखना और समझना। इससे सिद्ध होता है कि उदयपद्धति का आविष्कार पहले हुआ होगा। महाभारत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह पद्धति शकपूर्व ५०० के पूर्व प्रचलित थी।

जिस प्रकार वेदांगज्योतिष में ५ वर्षो का एक युग माना है, उसी प्रकार ५ गुरुवर्षों का एक युग माना गया है। उसमें लगभग ६० सौरवर्ष होते हैं। उसके संवत्सरों के प्रभव इत्यादि नाम रख दिये गये। इस

प्रकार षष्टिसंवत्सरचक्र उत्पन्न हुआ। स्पष्ट है कि इसकी उत्पत्ति द्वादश संवत्सरचक्र के बाद हुई होगी। वर्षसंख्या गणना का यह उससे भी उत्तम साधन है। प्रथम इसके भी संवत्सरों की गणना गुरु के उदय से की जाती थी, परन्तु बाद में यह पद्धति छोड़ दी गयी और गुरु के मध्यम राशिभोगकाल के अनुसार गणना की जाने लगी। गुरु को मध्यमगति से एक राशि भोगने में सूर्यसिद्धान्तानुसार ३६१ दिन १ घटी ३६ पल और अन्य सिद्धान्तों के अनुसार इससे कुछ पल न्यून या अधिक समय लगता है। एक बार्हस्पत्य संवत्सर का यह मान सौरवर्ष से थोड़ा कम है। इस कारण ८५ सौरवर्षों में ८६ बार्हस्पत्य संवत् होते हैं अर्थात् एक बार्हस्पत्य संवत् का लोप हो जाता है और इसका आरम्भकाल निश्चित नहीं रहता। इस संवत्सर की एक और पद्धति है। उसमें संवत्सर का लोप नहीं किया जाता, उसका मान सौरवर्ष तुल्य ही मान लिया जाता है। इसी कारण उसे सौरसंवत्सर कहते हैं। चान्द्र वर्ष के साथ आरम्भ होने के कारण उसे चान्द्र संवत्सर भी कहते हैं। सम्प्रति नर्मदा के उत्तर बार्हस्पत्य और दक्षिण में चान्द्रसौर संवत्सर प्रचलित हैं।

1.4 पंचांग का इतिहास –

पंचांग निर्माण की परम्परा वैदिककाल से ही चली आ रही है। इस कारण इसका इतिहास भी वैदिककाल के आसन्न ही आरम्भ होता है। यह स्पष्टतया कहीं प्रमाण नहीं मिलता कि किस निश्चित तिथि से पंचांग का आरम्भ हुआ होगा। यहाँ विभिन्न कालखण्ड के आधार पर पंचांग का इतिहास की चर्चा करते हैं।

स्वायम्भुव काल (२९१०२ ई0पू0) से सम्भवत: ४ वर्ष के युग तथा समान युग खण्डों का आरम्भ हुआ। इसे आर्य मत कहा जाता था। जिसे सुरक्षित रखने के लिए ३६० कलि में आर्यभट्ट ने 'आर्यभट्टीयम्' लिखा। आर्यभट्ट द्वितीय के महासिद्धान्त (२/१/२) के अनुसार महाभारत काल में २ मत प्रचलित थे- आर्यमत तथा पराशर मत। आर्यभट्ट ने आरम्भ तथा अन्त में अपने मत को स्वायम्भुव मत कहा है।

कश्यप (१७५०० ई0पू0) में असुरों का प्रभुत्व था। उस काल में अभिजित नक्षत्र में सूर्य प्रवेश के समय वर्षाऋतु से वर्ष का आरम्भ होता था। अथर्व (८/५/१९-२०) तथा वायुपुराण अध्याय २ के अनुसार सूर्य उत्तर तथा दक्षिण गति में २४,२०,१२ अंश के अक्षांश वृत्तों को १-१ मास में पार करता हैं। यही इथियापियन बाइबिल में इनोक की पुस्तक, अध्याय ४ में है। 'इनोक' को कुरान में 'इदरीस' कहा गया हैं, जो वेद के अत्रि ऋषि थे – ज्योतिष के आचार्य जिनकी सूर्यग्रहण गणना का ऋग्वेद (५/४०/५-९) में उल्लेख है।

कार्तिकेय ने प्राय: १६००० ई0पू0 में धनिष्ठा नक्षत्र में सूर्य के प्रवेश से वर्षाऋतु से वर्ष का आरम्भ

किया। उनकी असुरों पर विजय का रथयात्रा पर्व माघ शुक्ल सप्तमी को होता था। यह अभी भी कोणार्क में इसी समय होता है जहाँ कार्तिकेय नेविजय स्तम्भ बनाया था। बाद के पंचांग में यह आषाढ़ शुक्ल द्वितीया से होता है, जो वर्षा का आरम्भ है।

वैवस्वत मनु ने १३,९०२ ई0पू0 में इतिहास तथा ज्योतिष में असमान युग खण्डों की व्यवस्था की। इनका वर्ष विषुव सम्पात से आरम्भ हुआ। मासों का नामकरण पूर्णिमा के समय चन्द्र नक्षत्र के अनुसार है जो ब्रह्मा के काल की परम्परा है।

सत्ययुग के अन्त से १३१ वर्ष अल्प पूर्व ९२३३ ई0पू0 में मयासुर ने वैवस्वत मनु के पंचांग में संशोधन किया। इसके लिए सम्भवत: रोमक पत्तन (मोरक्को का रबात या निकटवर्ती कोनार्की) में सभा हुई थी। इसका कारण बताया गया हैं कि बहुत काल बीत जाने के कारण विवस्वान (सूर्य) की गणना में भूल हो रही थी, अत: उसका संशोधन किया गया। भूल का कारण है कि प्राय: १०००० ई0पू0 के जलप्रलय के कारण पृथ्वी का अक्ष भ्रमण धीमा हो गया था। अत: दिन आधारित गणना में भूल होगी। अन्य कारण हैं कि ४६७० वर्ष बाद ऋतु चक्र प्राय: २ मास पीछे चला जायेगा।

मयासुर के २५०० वर्ष बाद परशुराम का कलम्ब सम्वत् आरम्भ हुआ। युधिष्ठिर काल में ४ प्रकार के वर्ष थे। कलि आरम्भ से वेद-पुराणों का सम्पादन हुआ जिसके अनुसार समाज के मानदण्ड बदलें, अत: इसे 'संवत्' कहते है।

इसके ३००० वर्ष बाद ऋतु चक्र १.५ मास पीछे खिसक गया, अत: विक्रमादित्य ने शुक्ल के बदले कृष्णपक्ष से मास का आरम्भ किया।

विक्रमादित्य से २००० वर्ष बाद ऋतुचक्र पुन: १ मास पीछे हो गया है, अत: इसमें संशोधन की आवश्यकता है।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि पंचांग का इतिहास किस प्रकार से था, तथा कहाँ-कहाँ क्या समस्यायें थी।

सम्प्रति भारतवर्ष में पंचांग निर्माण दो पद्धति पर आधारित है – प्रथम सायन एवं द्वितीय निरयण। सायन का अर्थ अयनांश सहित है। निरयण का अर्थ अयनांश रहित होता है। सायन मान की परम्परा इस प्रकार है – सायन वर्षमान नैसर्गिक है। अत: सृष्टि उत्पन्न होने के पश्चात् जब से वर्ष शब्द का व्यवहार होने लगा है तभी से उसका प्रचार होना चाहिए और वस्तुत: वह तभी से प्रचलित है। प्राय: वेदकाल में उसी का प्रचार था। मधु, माधव इत्यादि संज्ञाओं का प्रचार होने के पूर्व अधिकमास का प्रक्षेपण कर ऋतुओं के पर्यय द्वारा वर्ष मानते रहे होंगे अर्थात् उस समय कुछ स्थूल सायन ही वर्ष प्रचलित रहा होगा। उसके बाद मध्वादि नामों का प्रचार हुआ। उस समय सायनवर्ष के मान में बहुत

सूक्ष्मत्व आ गया था। उसके सैकड़ों वर्ष बाद चैत्रादि नाम प्रचलित हुए, तब तक सायन मान का ही प्रचार था। शकपूर्व २००० वर्ष के लगभग चैत्रादि संज्ञायें प्रचलित हुई और निरयन मान की नींव पड़ी। वेदांगज्योतिष में धनिष्ठारम्भ से वर्षारम्भ माना है। यह निरयन मान है। परन्तु वेदांगज्योतिष में उत्तरायणारम्भ से भी वर्षारम्भ माना है। सूर्य के पास के नक्षत्र दिखाई नहीं देते, इससे धनिष्ठा के आरम्भ में सूर्य के आने के काल को जानने की अपेक्षा उत्तरायणारम्भ काल जानना एक अज्ञ के लिए भी सुगम होता है, अत: वस्तुत: अयनारम्भ से ही वर्ष का आरम्भ मानते रहे होंगे। पहले बता चुके हैं कि वेदांगज्योतिष की पद्धति बड़ी अशुद्ध है, अत: उस समय ९५ वर्षों में ३८ के स्थान में ३५ अधिमास मानकर उत्तरायणारम्भ में वर्षारम्भ मानने की पद्धति का प्रचलित रहना ही अधिक सम्भवनीय ज्ञात होता है।

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भारतीय ज्योतिषशास्त्र का मूलाधार आकाशीय ग्रहनक्षत्रों का गणित तथा वेध है। गणित के आधार पर सूर्य चन्द्रादि की स्थितियों का सही निर्णय कर गोलीयवेध से दृग्गणितैक्यजन्य समन्वय के द्वारा ग्रहों की वास्तविक दृष्ट्युपलब्ध स्थिति ही, उनकी व्यवहारिक उपयोगिता का मूल आधार है। पर्व, धर्मकार्य, यात्रा, विवाह, उत्सव जातक तथा भविष्यफल की जानकारी हेतु ग्रहगणित की शुद्धता की परख पंचांगनिर्माण के द्वारा ही सिद्ध होता है। पंचानां अंगानां समाहार: इति पंचांगम्। पंचांग में पाँच अंग प्रधान होते है – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण। इन पाँच अंगों के समाहार को पंचांग कहते है। भारतवर्ष में पंचांग निर्माण की प्रथा वैदिककाल से चली आ रही है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि पंचांग का प्रादुर्भव हमारे देश में तभी से प्रचलित हुआ होगा जब हमें ज्योतिषशास्त्र का किंचित ज्ञान होने लगा था, पर यह निश्चित है कि वह पुराना पंचांग आज के समान नहीं था। पंच अंग के स्थान पर कदाचित् उस समय चतुरंग, त्र्यंग, द्वयंग अथवा एकांग भी प्रचलित थे और लिपि का ज्ञान होने के पहले तो कदाचित् श्रवण कर मुखार्थ ही उनका ज्ञान कर लेते रहे होंगे। परन्तु इतना अवश्य है कि ज्योतिषस्थिति दर्शक कोई पदार्थ अति प्राचीनकाल से ही प्रचलित रहा है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

पंचांग – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण रूपी पाँच अंगों के समाहार को पंचांग कहते है।

तिथि – सूर्य एवं चन्द्रमा के द्वादश अंशात्मक गत्यन्तर को तिथि कहते है।

नक्षत्र – न क्षरतीति नक्षत्रम्।

सायन – अयनांश सहित सायनम्।

निरयण – अयनांश रहित निरयणम्।

वेदांगज्योतिष – महात्मा लगध प्रणीत ग्रन्थ।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ख
2. क
3. ख
4. क
5. क
6. क

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय ज्योतिष – श्री शंकरबालकृष्णदीक्षित
2. वेदांग ज्योतिष – मूल लेखक – महात्मा लगध, टिका – आचार्य शिवराज कौण्डिन्यायन
3. संवत्सरावली – टिका – पण्डित हीरालाल मिश्र:
4. अथर्वज्योतिष
5. भारतीय पंचांग की परम्परा और विकास

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. भारतीय ज्योतिष - आचार्य नेमिचन्द्र शास्त्री
2. ग्रहलाघवम् - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय
3. पंचांग समिति का प्रतिवेदन – पंडित दीनानाथ शास्त्री चुलैट
4. भारतीय कुण्डली विज्ञान – मीठालाल ओझा
5. केशवीय जातक पद्धति – आचार्य केशव दैवज्ञ प्रणीत। टिका – डॉ0 सुरकान्त झा

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय पंचांग के स्वरूप पर प्रकाश डालें।
2. पंचांग में उद्धृत विभिन्न कालों का वर्णन कीजिये।
3. पंचांग के इतिहास का वर्णन कीजिये।
4. ज्योतिष में पंचांग का महत्व प्रतिपादित कीजिये।

इकाई - 2 पंचांग निर्माण की परम्परा

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई MAJY-103 के प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – पंचांग निर्माण की परम्परा। इससे पूर्व की इकाई में आपने पंचांग के स्वरूप व उसके इतिहास को जान लिया है। अब आप इस इकाई में पंचांग निर्माण की परम्परा का अध्ययन करने जा रहे है।

भारतवर्ष में पंचांग निर्माण की रीति प्राचीनतम वैदिक काल से ही विद्यमान है। पंचांग तभी से प्रचलित हुआ होगा जब हमें ज्योतिष का ज्ञान प्रथमत: हुआ था। भारतवर्ष में तीन पक्षों के आधार पर पंचांग निर्माण की परम्परा आधारित है। मुख्यत: सायन एवं निरयण पद्धति द्वारा भारतवर्ष में पंचांग निर्माण किये जाते हैं।

प्रस्तुत इकाई में आइए पंचाग निर्माण की परम्परा को समझने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान लेंगे कि –

- पंचांग निर्माण का आरम्भ भारतवर्ष में कब से हुआ है।
- पंचांग निर्माण विधि का आधार क्या है।
- भारत में कितने प्रकार के पंचांगों का निर्माण होता है।
- पंचांग निर्माण हेतु कुल कितने पक्ष है।
- पंचांग निर्माण की परम्परा कब से प्रचलित है।

2.3 पंचांग निर्माण की परम्परा

भारत में पंचांग निर्माण की प्रथा लोकप्रियता के साथ वैदिक काल से आज तक प्रचलित है। समय-समय पर इसके स्वरूप में परिवर्तन एवं परिष्कार अवश्य हुये हैं तथा अब भी इस प्रकार के परिवर्धनों एवं परिष्कारों की सम्भावनायें बनी हुई हैं। भारतीय पंचांगों का क्षेत्र विस्तृत है, जबकि अन्य देशों में पंचांगों का अति संक्षिप्त स्वरूप देखने में आता है। इसीलिए पंचांग के लिए विदेशी भाषा में 'कैलेण्डर' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो उनके लिए तो उपयुक्त है किन्तु कैलेण्डर शब्द से भारतीय पंचांगों का बोध नहीं हो पाता। वैदिक काल में पंचांग का स्वरूप आज के सादृश्य

नहीं था, किन्तु पंचांग निर्माण की परम्परा अवश्य थी। 'भारतीय ज्योतिष' के लेखक आचार्य शंकर बालकृष्ण दीक्षित जी के अनुसार पंचांग के स्थान में पहले किसी समय चार अंग, तीन अंग या दो अंग भी प्रचलित रहे होंगे तथा लिपि का ज्ञान से पहले आकाशीय दर्शन से इसका ज्ञान कर लेते रहे होगें। परन्तु इतना अवश्य है कि ज्योतिष की स्थिति तथा गोलीय वेध के प्रमाण एवं संकेत अति प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। दीक्षित जी ने इसे 'ज्योतिदर्पण' कहा है। पं. दीनानाथ शास्त्री चुलैट के अनुसार वैदिक काल में चार प्रकार के सुपर्णचिति, कंकचिति आदि पंचांग बनते थे।

पंचांग पाँच अंगों का समवेत स्वरूप है। उन पाँच अंगों के नाम क्रमश: इस प्रकार है – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण। इन पाँचों अंगों के आधार पर किसी भी शुभकार्य हेतु शुभ समय का निर्णय किया जाता है। जहाँ ये अंग हमें शुभाशुभ समय का ज्ञान करातें हैं वहीं हमें आकाश दर्शन में भी सहायक होते हैं। इन अंगों के निरूपण के साथ-साथ ग्रहों की गति, स्थिति एवं चार का ज्ञान पंचांग के माध्यम से अत्यन्त सरल ढंग से हो जाता है। इसीलिए आवश्यक हो जाता है कि आकाशीय घटनाओं के साथ-साथ उनके परिणामों का भी उल्लेख कर अधिकाधिक लोगों को अवगत कराया जा सके। इस दृष्टि से ज्योतिष के सिद्धान्त, संहिता एवं होरा स्कन्धों के अनेक व्यावहारिक विषयों का समावेश आधुनिक पंचांगों में होने लगा है। आज पंचांग ज्योतिष सम्बन्धी अनेक विषयों का महत्वपूर्ण संकलन भी है। यदि कोई व्यक्ति केवल पंचांगों का ही अध्ययन कर ले तो वह अनेक व्यावहारिक विषयों का ज्ञाता हो सकता है। यही कारण है कि आज पंचांग हमारी जीवन पद्धति के अंग बन चुके हैं।

आज भारत के विभिन्न क्षेत्रों से प्रकाशित होने वाली प्रमुख पंचांगों की संख्या ३०० से अधिक है। इनकी संख्या में दिनों दिन विस्तार होते जा रहा है। यह भी इसकी लोकप्रियता का सूचक है। पंचांगों के आधार पर ही समस्त धार्मिक क्रियाओं एवं अनुष्ठानों का सम्पादन भी होता है। अत: इसका सम्बन्ध धार्मिक भावनाओं से जुड़ा है। कुछ विद्वान अपनी पारम्परिक पद्धति के अनुसार ही पंचांग का निर्माण करना चाहते हैं तथा कुछ विद्वान आधुनिकतम विधियों के अनुसार साधित ग्रहों के आधार पर पंचांग का निर्माण करते हैं।

2.3.1 वैदिकालीन पंचांग का उल्लेख -

पंचांग निर्माण की परम्परा के अन्तर्गत वेदों में इसका स्पष्ट वर्णन मिलता है कि, अमुक दिन, नक्षत्र और ऋतु में अमुकामुक कर्म करना चाहिए। अत: स्पष्ट है कि ज्योतिशास्त्र बहुत प्राचीन है। इसका प्रथम अंग सावन दिन है। इस समय सावनदिन को केवल **दिन** या **वार** कहते है। सावन दिन के बाद नक्षत्रों का ज्ञान हुआ होगा, अत: नक्षत्र दुसरी इकाई बना। इसके बाद सूर्य तथा चन्द्र के

अन्तर से 'तिथि' का ज्ञान हुआ होगा। वेदांग ज्योतिष काल अर्थात् शक पूर्व १४०० वर्ष तक संभवत: तिथि नक्षत्र और सावन दिन ये तीन अंग संभवत: थे। तिथि का मध्यम मान ६० घटी रहा होगा।अर्थात् उसे नाक्षत्र अहोरात्र दर्शक होना चाहिए। उसके अनुसार केवल दिन अथवा केवल रात्रि के दर्शक तिथि का आधा अर्थात् करण नामक अंग का प्रचार तिथि के प्रसार के थोड़े ही बाद हुआ होगा और उसके बाद योग प्रचलित हुआ होगा।

अथर्वज्योतिष में करण और वार दोनों विद्यमान है, हमारे देश में शकारम्भ के पूर्व नक्षत्रप्रधान गणना रहने पर भी मेषादि संज्ञाओ का प्रचार वैदिक काल में हुआ होगा। यह भी देखा जाता है, कि अथर्वज्योतिष और याज्ञवल्यस्मृति में राशियों का ज्ञान होने के शताब्दी पूर्व वारों का का ज्ञान हुआ होगा। एक अन्य ग्रन्थ में भी इसका प्रमाण मिलता है। ऋकगृह्य परिशिष्ट में तिथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र एवं तिथियों की नन्दादि संज्ञाओं दिन क्षय और वार का वर्णन है परन्तु मेषादि राशियों का स्पष्ट वर्णन नहीं है। अत: ये तीनों ग्रन्थ मेषादि राशियों के प्रचार होने के पूर्व के हो सकते है। परन्तु इन तीनों का निर्माण एक ही समय नहीं होगें यह निश्चित है। इससे ज्ञात होता है कि वारों का ज्ञान मेषादि संज्ञाओं से कई शताब्दी पूर्व हुआ है। वारों और मेषादि संज्ञाओं की उत्पत्ति सर्वप्रथम आधुनिक समालोचकों के अनुसार चाहे जहाँ हुई हो पर उनका सर्वत्र प्रचार होने से उनका मूल एक होना चाहिए। क्योंकि उनमें गणितादि का कोई प्रपंच नहीं है। उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में दोनों एक साथ प्रचलित हुए होंगे। आधुनिक संकल्पना के अनुसार वारों का प्रचार मेषादि राशियों से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व अर्थात् शक पूर्व १०००० के आस पास हुआ होगा। वे शक पूर्व ३००० अर्वाचीन तो वे कथमपि नहीं ही है।

करण नामक काल विभाग तिथि द्वारा अपने आप ध्यान में आने योग्य है। तिथि के कुछ दिनों बाद और वार के पूर्व उसका प्रचार प्रसार हुआ होगा। वेदांककालीन जिन ग्रन्थों का विवेचन भारतीय ज्योतिष में किया गया है, उनमें से अथर्वज्योतिष याज्ञवल्क्यस्मृति और ऋकगृह्य परिशिष्ट, इन तीनों ग्रन्थों में वार शब्द आये है। इन तीनों में से याज्ञवल्क्यस्मृति में करण नहीं है। शेष दो करण का वर्णन मिलता है। इससे शंका होती है कि वार के पहले करणों का प्रचार नहीं रहा होगा। यदि यह ठीक है तो दोनों का प्रचार एक ही समय हुआ होगा अथवा करण वारों के कुछ दिनों बाद शीघ्र ही प्रचलित हुए होंगे। इससे ज्ञात होता है कि ये भी शक पूर्व ३००० से अर्वाचीन नहीं है। शनिवार, रविवार, सोमवार इत्यादि वार क्रम की उपपत्ति का वर्णन ज्योतिष सिद्धान्तों के आधार पर दीक्षित जी ने 'भारतीय जयोतिष' नामक अपने ग्रन्थ में किया है।

इससे ज्ञात होता है कि वार क्रम के निर्धारण में मूल कारण होरानामक काल विभाग है।

इससे निम्नलिखित प्रकार की उपपत्ति का ज्ञान हमलोग कर सके है। चन्द्रमा से आरम्भ कर उर्ध्वक्रम से घटिकाधिपति मानें तो प्रथम दिन का स्वामी अर्थात् प्रथम दिन की घटी का स्वामी चन्द्रमा और दूसरे दिन की प्रथम घटी का स्वामी उससे पाँचवा अर्थात् मंगल होगा। वराहमिहिर ने पंचसिद्धान्तिका के त्रैलोक्य संस्थान में लिखा भी है 'उर्ध्व क्रमेण दिनपाश्च पंचमा:' परन्तु इस पक्ष में अर्थात् होराधिपों का वर्णन वराहमिहिर के ग्रन्थों में है परन्तु घटिकाधिप की चर्चा अन्य किसी ने संभवत: इस तरह से नहीं की है। कुछ यूरोपियन विद्वान दिन की उत्पत्ति का प्रथमस्थान मिस्र और किसी ने खाल्डिया बताया है। कन्धिम का कथन है कि डायन काशिअस ने लिखा है कि वारों की पद्धति मिस्र देश की है, परन्तु मिस्र के लोग सात दिन के सप्ताह द्वारा मास के विभाग नहीं करते थे। बल्कि वे एक एक भाग दस-दस का मानते थे। बाद में ७ दिन का माननें लगे। इससे कहा जा सकता है कि वारों का उद्गम स्थान मिस्र नहीं है। वहाँ के प्राचीन लिपि और प्राचीन भाषा में निष्णात रेनुफ नामक विद्वान ने अपने सन् १८९० ई0 के ग्रन्थ में लिखा है, कि मिस्र देश में अहोरात्र का होरा या होरस् नामक देवता मानते थे। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन मिस्र में होरा शब्द और काल विभाग प्रचलित था। अत: वहाँ वारों की उत्पत्ति की सम्भावना हो सकती है। दीक्षित के विवेचन के अनुसार होरा क्रम से वारों की उत्पत्ति का मूल भारतीय नहीं है। तो क्या श्रीमान दीक्षित जी सारे प्राचीन ग्रन्थों को पढ़ तथा समझ लिए थे? यह सोचनीय है।

आजकल होरा शब्द ग्रीक देशीय माना जाता है, परन्तु 'हीरोडोटस' की उक्ति है कि वह काल विभाग ग्रीको को संभवत: बेविलोन अर्थात् खाल्डिया से प्राप्त हुआ होगा। अत: इन मतभेदों के कारण वारों का उत्पत्ति स्थान निश्चय पूर्वक नहीं बताया जा सकता। श्रीदीक्षित के अनुसार सम्भव है कि उनकी उत्पत्ति ग्रीस में हुई हो परन्तु यह भी निश्चित है कि उनका उत्पत्ति स्थान उन तीनों देशों के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं है।

2.3.2 पंचांग निर्माण के प्रमुख तीन पक्ष -

भारतवर्ष में पंचांग निर्माण की परम्परा तीन पक्षों पर आधारित है – आर्यपक्ष, सौरपक्ष एवं ब्राह्मपक्ष। इसका उल्लेख ग्रहलाघवकार गणेशदैवज्ञ जी ने अपने ग्रन्थ में इस प्रकार किया है –

सौरोऽर्कोऽपि विधूच्चमङ्ककलिकोनाब्जो गुरुस्त्वार्यजो।
ऽसृग्राहु च कजं ज्ञकेन्द्रकमथार्येशेषुभाग: शनि:।।
शौक्रं केन्द्रमजार्य मध्यगतिमे यान्ति दृक्तुल्यतां।
सिर्द्धस्तैरिह पर्वधर्मनयसत्कार्यादिकं त्वादिशेत्।।

सम्प्रति इन तीनों पक्षों में स्पष्ट सिद्धान्त 'सौरसिद्धान्त' को कहा जाता है। आचार्य गणेश दैवज्ञ जी

जब ग्रहलाघव की रचना कर रहे थे, उस समय सूर्यसिद्धान्त, आर्यसिद्धान्त तथा ब्रह्मसिद्धान्त तीनों को का अवलोकन करते हुए उन्होंने तीनों में ग्रहों का अन्तर बतलाया। इस श्लोक के अनुसार सूर्यसिद्धान्त (सौर पक्ष) के अनुसार सूर्य चन्द्रोच्च एवं चन्द्रमा ९ कला घटाने पर वेध के सापेक्ष मिलता है। गुरु आर्य सिद्धान्त (आर्य पक्ष) के अनुसार मंगल और राहु, ब्रह्मसिद्धान्त के अनुसार तथा बुध केन्द्र वेध से इसके अनुसार मिलता है। आर्यसिद्धान्त के अनुसार 5 अंश से अधिक शनि वेध से मिलता है। ब्रह्मसिद्धान्त और आर्यसिद्धान्त दोनों की रीति के अनुसार सिद्ध करके उन दोनों का योग करके आधा करने पर शुक्र केन्द्र वेध से मिलता है। गणेशदैवज्ञ जी के मत में इन संशोधनों के उपरान्त ये ग्रह दृग्गणितैक्य को प्राप्त होते हैं। इन्हीं दृग्गणितैक्य ग्रहों से व्रत, पर्व, न्याय और सत्य का आदेश करना चाहिए। सूर्यसिद्धान्त का भास्वती, मकरन्द ब्राह्मपक्ष का करणप्रकाश और करण कुतूहल तथा आर्यपक्ष का खण्डखाद्य आदि क्रमश: करण के ग्रन्थ है।

भारत से अलग दूसरे देशों में वारों का प्रचार कब से हुआ, इसके विषय में कनिंघम ने कहा है कि रोमन ट्यूबिलस ने ईसा पूर्व की बीच में शनिवार का उल्लेख किया है। तदनन्तर जूलियस फन्टिलस ने लिखा है कि जरुसेलम शनिवार को लिया गया है। रोमन के लोगों ने ईसवी के आरम्भ के आस-पास वारों का व्यवहार आरम्भ किया था। परन्तु उसके पूर्व ही ईरानी या हिन्दुओं को वार ज्ञात हो चुके थे। पाश्चात्य लेखक सेल्सस ने जो आगस्टस (ईसापूर्व २७०) और टाइबेरियस नामक रोमन राजाओं के राज्य काल में था। उसके कथन से ज्ञात होता है, कि ईरान के मन्दिर में सात ग्रहों के नाम के दरवाजे थे। वे उन्हीं धातुओं और रंगों से बनाये गये थे, जो कि उन ग्रहों के रंग थे तथा धातु जो उनके प्रिय थे। यह अविदित है कि मन्दिर आज उपलब्ध है या नहीं?

सूक्ष्मता से विचार के पश्चात् यह ज्ञात होता है कि वारों की उत्पत्ति भी भारतवर्ष में ही हुई थी। सम्प्रति भूमण्डल में जहाँ-जहाँ वार प्रचलित है, सर्वत्र सात ही है और उनका क्रम भी सर्वत्र एक ही है। अत: वारों की उतपत्ति किसी एक ही स्थान में हुई हैं, यह स्पष्ट है। अहोरात्र शब्द से होरा की उतपत्ति तथा सूर्यसिद्धान्त में वार क्रम की उत्पत्ति का विधान प्राप्त है। मेरी दृष्टि में विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ 'वेद' हीं सूर्यादि क्रम से वारोत्पत्ति का प्रथम मूल है। वहीं से यह सर्वत्र फैला। यद्यपि हमारे देश में अब तक अनेकों ताम्रपट्ट और शिलालेख मिले है, उनमें वारों का उल्लेख का
प्राचीनतम उदाहरण शक ४०६ का विद्यामान है। मध्यप्रान्त (मध्यप्रदेश) के 'एरन' नामक स्थान के एक खम्भे पर बुद्धगुप्त राजा का गुप्त वर्ष १६५ अर्थात् शक ४०६ आषाढ़ शुक्ल द्वादशी गुरुवार का एक शिलालेख है। इस समय इससे प्राचीन ज्योतिष का ऐसा पौरूष ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, जिसके लेख से यह विदित होता हो कि वह शक ४०६ से प्राचीन है।

भारतीय ज्योतिष के लेखक श्रीशंकरबालकृष्ण दीक्षित के वारोत्पत्ति क्रम का वैदेशिक बोध का खण्डन श्रीमान् वेदविद्यालंकार पं0 दीनानाथ शास्त्री चुलैट तथा वि0वि0 मधुसूदन के प्रमाण से हो जाता है। वेदों में सभी ग्रह तथा नक्षत्र एवं केतुओं के साथ राशि विज्ञान प्रामाणिकता के साथ प्राप्त होनें से वारक्रम के भारतीयमूल होनें में सन्देह की कोई गुजांईश नहीं है।

अभ्यास प्रश्न – 1

1. पंचांग के लिए विदेशी भाषा में किस शब्द का प्रयोग किया जाता है?
   क. एफेमेरिज ख. कैलेण्डर ग. पंचांग घ. ग्रिगोरियन
2. पंचांग कितने अंगों का समवेत रूप हैं –
   क. तीन ख. पाँच ग. आठ घ. सात
3. 'भारतीय ज्योतिष' ग्रन्थ के लेखक कौन है?
   क. शंकरबालकृणदीक्षित ख. वराहमिहिर ग. गणेशकवि घ. कोई नहीं
4. चन्द्रमा एवं सूर्य की गति का अन्तर क्या कहलाता है?
   क. नक्षत्र ख. चन्द्रार्क ग. तिथि घ. वार
5. भारतवर्ष में पंचांग निर्माण की परम्परा कितने पक्षों पर आधारित हैं?
   क. एक ख. दो ग. तीन घ. चार
6. सूर्यसिद्धान्त किस पक्ष का ग्रन्थ माना जाता है?
   क. आर्य पक्ष ख. सौरपक्ष ग. ब्राह्म पक्ष घ. आर्ष पक्ष
7. वार की उत्पत्ति मूलत: कहाँ से हुई है?
   क. वेद ख. पुराण ग. उपनिषद घ. आगम
8. पंचसिद्धान्तिका के प्रणेता कौन है?
   क. आर्यभट्ट ख. वराहमिहिर ग. भास्कर घ. कमलाकर

आचार्य गणेश दैवज्ञ जी ने परम्परा की बात करते हुए स्वग्रन्थ 'ग्रहलाघव' में कहा है कि –

ब्रह्माचार्य वशिष्ठकश्यपमुखैर्यत्खेटकर्मोदितं।
तत्तत्कालजमेव तथ्यमथतभूरिक्षेणऽभूच्छलथम्।।
प्रयातोऽथमहासुर: कृतयुगान्तेऽर्कात्स्फुटम्।
तोशितादथास्ति स्मं कलौ तु सान्तरमथा भूच्चात्र।।
तज्ज्ञात्वार्यभट्ट: खिलं वहतिथेर्कालेऽकरोत्प्रस्फुटं।

तचच्छास्त्रं किलं दुर्गसिंहमिहिरद्यैस्तन्निबद्धं स्फुटं।।
तच्चाभूच्छिथिनं तु विष्णुतनयेनाकारि वेधात्स्फुटम्।
ब्रह्मोस्त्याऽऽश्रितमे तदप्यथ वह्मौ काले भवेत्सान्तरम्।।

इसमें ब्रह्मा, वशिष्ठ, कश्यपादि से लेकर स्वकीय कालखण्ड पर्यन्त आचार्य गणेश दैवज्ञ जी ने ऋषि परम्परा को सम्बोधित किया है।

ऋग्वैदिक युग में पंचांग –

इस युग में पंचांग का ज्ञान केवल वैदिक साहित्य से ही प्राप्त किया जा सकता है, जो विभन्न कोटियों का है। जिसका समय भी अत्यधिक भिन्न- भिन्न है। मैक्समूलर यद्यपि भारतीय वाङ्मय की उल्टी सीधी व्याख्या से समस्त भारतीय साहित्य के प्रति जो अनास्था की लहर उत्पन्न की, उस पर बिना विचार किये उसके अनुसार २००० वर्ष के कालखण्ड में वैदिक वाङ्मय का वर्गीकरण निम्नांकित है। इसके चार युग पृथक् किये जा सकते है, जिनमें से प्रत्येक अपने पूर्ववर्ती काल की पूर्व संकल्पना करता है। ये चार युग निम्नलिखित है –

क. छन्द और मन्त्र – जिनमें संहिता या सूक्त संग्रह, प्रार्थनायें, काम्य मन्त्र, आर्शीमन्त्र, यज्ञीयविधान आदि समाविष्ट है। ऋक् यजु, साम तथा अथर्ववेद क्रम से बने हैं। अर्थात् इसके अनुसार वेद पौरूषेय है।

ख. ब्राह्मण – ये गद्यमय तथा पद्यमय है और उनमें धार्मिक विषय विशेषत: यज्ञों एवं उनके रहस्यात्मक महत्व का विवेचन है। ब्राह्मणों से सम्बन्धित आरण्यक तथा उपनिषद भी है। यद्यपि स्वतन्त्र रूप से भी इनकी परिगणना होती है और इनमें अरण्यवासी साधुओं और सन्यासियों के द्वारा किए हुए परमात्मा तथा जगत एवं मानवों के विषय में विवेचन है। ये ग्रन्थ प्रत्येक वेदों से पृथक-पृथक रुप से सम्बद्ध है। उपनिषद शुद्ध ज्ञानकाण्ड अर्थात् पराविद्या का प्रवेश द्वार है।

ग. इन ग्रन्थों के आधार पर निर्मित सूत्रग्रन्थ या वेदांग – वेदांग जिसका शाब्दिक अर्थ है वेदों के अंग। वेदांग वेदोत्तरकाल में सूत्र ग्रन्थों के आधार पर बनें है। ये वेदों को उनके विभिन्न रुपों में समझने और उनमें अन्तर्निहित विचारों को स्वतन्त्र रुप से समझने के प्रयास है। भारतीय विचारधारा के अनुसार छ: 'वेदांग' निम्नलिखित है।

1. शिक्षा – वैदिक मन्त्र किस प्रकार उच्चारित हो तथा स्मरण किया जाय इसका इन ग्रन्थों में विधान प्राप्त होता है।
2. कल्प – इसके चार भेद ज्ञात है –

- गृह्यसूत्र जो गृहस्थ के गृह कर्मों का विवेचन करते है।
- शुल्वसूत्र – यज्ञीय वेदी के निर्माण एवं विभिन्न मापों का विवेचन करते हैं।
- श्रौतसूत्र – वैदिक विधान ही प्रकट करता है।
- धर्मसूत्र – धार्मिक विधानों की समीक्षा है।

3. व्याकरण - पाणिनी की प्रसिद्ध अष्टाध्यायी जिसमें सभी के लिए लौकिक संस्कृत भाषा को स्थिर कर दिया है। अष्टाध्यायी प्राचीन व्याकरणों के प्रयासों के परिणाम है। पाणिनि के महान व्याकरण ग्रन्थ के सामने अनेक प्राचीन ग्रन्थ अप्रचलित हो गये। इसमें स्वर वैदिकी भी है।
4. निरूक्त – इसमें वैदिक शब्दों की वैज्ञानिक निरूक्ति है तथा यह पाणिनि से पूर्ववर्ती यास्ककृत है। युधिष्ठिर मीमांसक पाणिनी को शकपूर्व २७०० का सिद्ध करते हैं, वहाँ अन्य इन्हें यास्क के पश्चात् (शक् ८००) का मानते हैं। यद्यपि पाश्चात्यों के इन दोनों निर्धारणों की अभी समुचित समीक्षा नहीं हुई है।
5. छन्दस् – पिंगल कृत कहा जाने वाला 'छन्द शास्त्र' है। छादनाच्छन्द से हर वस्तु का परिसीमन भी इसमें जुड़ा है।
6. ज्योतिष – ऋग्ज्योतिष लगधकृत आज प्राप्त है, लेकिन अष्टादश ऋषि प्रवर्तकों में लगध का उल्लेख नहीं है। यद्यपि समस्त वैदिक एवं सूत्र साहित्य में ज्योतिष का वर्णन होनें से ज्योतिषदर्पणरुप पंचांग का भी प्रासंगिक निर्देश हो जाता है। हमारा यहाँ अभीष्ट विषय केवल काल विधायक वेद नेत्ररुप वेदांग ज्योतिष का विश्लेषण है। निम्नांकित वैदिक मन्त्र जहाँ वैदिक ज्योतिर्विज्ञान के समुत्कृष्ट विकास का संकेत प्रदान करते हैं, वहाँ अधिकांश पाश्चात्य एवं उनके अनुयायी इतिहासकार वैदिक वाङ्मय के सम्बद्ध में सर्वत्र भ्रामक मतवाद ही फैलाते नजर आते है –

द्वादशारं नहि तज्जराय वर्वति चक्रं परिध्यामृतस्य।
आ पुत्रा अग्ने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थु:।।

१२ आरों से युक्त क्षीण नहीं होता। वह अमृतमय परिधि के चारों ओर घूमता है। उस चक्र में अग्निपुत्रों के ७२० मिथुन जोड़े हैं। अर्थात् वह चक्र या कालचक्र या अमृतमय द्युलोक की परिधि में १२ विभाग हैं, जिसमें बारह विभागात्मक अरे है। वे अमृतमय द्युलोक की परिधि के चारों ओर घूमता है, कभी जरात्व (क्षीणता) को प्राप्त नहीं होता। इस में अग्निपुत्रों के ७२० मिथुनात्मक जोड़े

स्थित है। यहाँ द्वादश विभागात्मक वर्ष की उपमा उस चक्र से की गयी है। जिसमें १२ अरे १२ राशियाँ या मास अग्निसोमात्मक मिथुन है। उन अग्नि पुत्रों के ७२० जोड़े ३६० सौरदिन और ३६० रात्रि मिथुनात्मक भाव से अवस्थित है।

अर्थात् सामान्य रूप से इनकी मान्य व्याख्या यह है कि वर्ष ३६० सौरदिनों तथा १२ मासों का वर्ष माना जाता था और (अग्नितत्वात्मक दिन तथा सोमतत्वात्मक) रात तथा दिन के सौर दिवसात्मक जोड़े हैं। ऋग्वेद (१,१६४,४८) की यह पंक्ति इसे और स्पष्ट करता है –

द्वादश पधयश्चक्रमेकं त्रीणि नाभ्यानि क उ तच्चिकेत।
तस्मिनत्साकं त्रिशता च शंकवो र्पिता: षष्टिर्न चलाचलास:।।

बारह अर फलकें- एक चक्र तीन नाभियाँ। कौन इन्हें समझता है? इनमें ३६० शंकु लगे हुए है जो चल होकर भी ढीले नहीं होते। यहाँ वर्ष की तुलना घूमने वाले चक्र से की गयी है जिसकी परिधि १२ भागों में विभक्त है। वे तीन नाभियों में वर्गीकृत है। यहाँ भी ३६० दिन का वर्ष है जो १२ मासों में विभक्त हैं। चार मासों के एक-एक इस प्रकार तीन नाभि केन्द्र के द्योतक है। शीत, ग्रीष्म, वर्षा के रुप में मुख्य तीन ऋतुयें तीन केन्द्र हैं। अथवा दोनों तरफ से तीन-तीन केन्द्रात्मक है। जैसा प्राचीनतम शिलालेखों में मिलता है। यदि अन्तिम अंश की व्याख्या सही है तो हमें परवर्ती चातुर्मास्य पद्धति या वर्ष अथवा वर्ष का चार मासों तीन ऋतुओं में वर्गीकरण का प्राचीनतम निर्देश प्राप्त होता है। इन अंशों से यही भी प्रतीत होता है कि वैदिक ऋषि एक समय ३६० सौरदिनों का वर्ष मानते थे। प्राचीन मिस्रवासी ख्सल्डियन तथा ग्रीक एवं यहूदी भी इसी प्रकार मानते थे। ध्यान देने पर यह स्पष्ट होता है कि वैदिक संहिताओं में सावन तथा चान्द्र का भी विधिवत् निवेश है, क्योंकि निम्नलिखित निर्देश प्रकट करता है कि वे तेरहवें मास का भी उपयोग चान्द्र-सौर समन्वय के लिए भी वे करते थे। यथा –

वेद मासो धृतव्रतों द्वादश प्रजावत: वेदा य उपजायते।। ऋग्वेद (१,२५,८)

अर्थात् ध्रुवव्रत (वरुण) बारह मासों को जानते है और वे अधिमास को जानते है, जो बारह मासों के समीप रखा गया है। यह अंश इस बात को स्पष्ट बताता है कि पंचांग (चान्द्र+सौर) था। दोनों में समन्वय कैसे बैठाया गया? ऋग्वेद का एक सूक्त जिसका सर्वप्रथम उल्लेख लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने किया –

द्वादश द्यून यदगोप्यातिभ्यो रणन्नुभव: ससन्त:। सुक्षेत्राकुण्वन्नयं त सिन्धून धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमाप:।। (ऋग्वेद ४.३३.७) अर्थात् १२ दिनों के लिए सोने वाले ऋतुओं ने अपने को अगोप्य (सूर्य) के रूप में सुखदायक बनाया है, वे खेतों को सुव्यवस्थित करते और नदियों को गतिशील करते है। औषधियाँ सुन्दर प्रदेशों में बढ़ती है और निम्नस्थल पर बरसात में जल

फैलता है। लोकमान्य तिलक के अनुसार ऋभु ऋतुओं के सन्धि काल हैं। वे उपर्युक्त मन्त्र में १२ दिन सूर्य के आतिथ्य के भागी बताए गए है। तिलक के अनुसार यह अंश सौर और चान्द्र वर्ष के समन्वय का आशय है अर्थात् ३६६-३५४ = १२ सावनदिन।

2.4 सौर पंचांग का वर्तमान प्रचलित स्वरूप

आधुनिक सूर्यसिद्धान्तानुसार वर्तमान कलियुग के आरम्भ में मध्यम मान से सभी ग्रह एक स्थान में आते है। इसी प्रकार कृतयुग के अन्त में भी जब सूर्यसिद्धान्त बना, उस समय सभी ग्रह एकत्र थे। जैसा कि इस ग्रन्थ के मध्यमाधिकार में कहा गया है –

अस्मिन् कृतयुगस्यान्ते सर्वेमध्यगता ग्रहा:।।

ग्रहों की महायुगीय भगण संख्या ४ से नि:शेष हो जाती है। अत: ४ महायुग तथा २ कलियुग में सभी के भगण पूर्ण हो जाते हैं। अर्थात् २ कलियुग तुल्य समय के बाद सभी ग्रह एकत्र हो जाया करते हैं। ब्रह्म दिन के आरम्भ से वर्तमान कलियुगारम्भ पर्यन्त ७१×६×१०×७×४ + २७ ×१०×९ = ४५२७ + २९ कलियुग (३१७९ + १९३३ वर्ष गतकलि) कलियुग तुल्य समय व्यतीत हो चुका है। यह संख्या २ से नहीं कटती। यदि इसमें से कुछ वर्ष सृष्ट्योत्पत्ति सम्बन्धि न मानें तो कल्पारम्भ में सभी ग्रह एक स्थान में नहीं आते है। इसमें से सृष्टिरचना का २९ कलियुग तुल्य समय निकाल देने से ४५२७ कलियुग शेष रहे जाते हैं। यह संख्या २ से नि:शेष रह जाती है। इस प्रकार सृष्ट्यारम्भ में सभी ग्रह एकत्र मानने से वर्तमान कलियुग के आरम्भ में और उसके पूर्व कृतयुग के अन्त में भी सभी ग्रह एक स्थान में आते है। इसी प्रकार ग्रहों के उच्च तथा पातों की एक कल्प सम्बन्धी उपर्युक्त भगणसंख्या के अनुसार वे सृष्ट्यारम्भ के अतिरिक्त अन्य किसी भी समय सभी ग्रह एकत्र नहीं होते हैं।

अभ्यास प्रश्न – 2

1. वेदांग की संख्या .... है।
2. महर्षि यास्क .... के प्रणेता कहे जाते है।
3. ज्योतिष वेद का .... अंग है।
4. एक कल्प में .... महायुग होते हैं।
5. अष्टाध्यायी .... की रचना है।
6. सौरपंचांग .... ग्रन्थ पर आधारित है।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि भारत में पंचांग निर्माण की प्रथा लोकप्रियता के साथ वैदिक काल से आज तक प्रचलित है। समय-समय पर इसके स्वरूप में परिवर्तन एवं परिष्कार अवश्य हुये हैं तथा अब भी इस प्रकार के परिवर्धनों एवं परिष्कारों की सम्भावनायें बनी हुई हैं। भारतीय पंचांगों का क्षेत्र विस्तृत है, जबकि अन्य देशों में पंचांगों का अति संक्षिप्त स्वरूप देखने में आता है। इसीलिए पंचांग के लिए विदेशी भाषा में 'कैलेण्डर' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जो उनके लिए तो उपयुक्त है किन्तु कैलेण्डर शब्द से भारतीय पंचांगों का बोध नहीं हो पाता। वैदिक काल में पंचांग का स्वरूप आज के सादृश्य नहीं था, किन्तु पंचांग निर्माण की परम्परा अवश्य थी। 'भारतीय ज्योतिष' के लेखक आचार्य शंकर बालकृष्ण दीक्षित जी के अनुसार पंचांग के स्थान में पहले किसी समय चार अंग, तीन अंग या दो अंग भी प्रचलित रहे होंगे तथा लिपि का ज्ञान से पहले आकाशीय दर्शन से इसका ज्ञान कर लेते रहे होगें। परन्तु इतना अवश्य है कि ज्योतिष की स्थिति तथा गोलीय वेध के प्रमाण एवं संकेत अति प्राचीन काल से प्रचलित रहा है। दीक्षित जी ने इसे 'ज्योतिदर्पण' कहा है। पं. दीनानाथ शास्त्री चुलैट के अनुसार वैदिक काल में चार प्रकार के सुपर्णचिति, कंकचिति आदि पंचांग बनते थे। पंचांग पाँच अंगों का समवेत स्वरूप है। उन पाँच अंगों के नाम क्रमश: इस प्रकार है – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण। इन पाँचों अंगों के आधार पर किसी भी शुभकार्य हेतु शुभ समय का निर्णय किया जाता है। जहाँ ये अंग हमें शुभाशुभ समय का ज्ञान करातें हैं, वहीं हमें आकाश दर्शन में भी सहायक होते हैं।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

कृतयुग – सत्ययुग

पंचांग – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण रूपी पाँच अंगों के समाहार को पंचांग कहते है।

तिथि – सूर्य एवं चन्द्रमा के द्वादश अंशात्मक गत्यन्तर को तिथि कहते है।

कैलेण्डर – विदेशों में पंचांग को ही कैलेण्डर से सम्बोधित करते है।

भगण – १२ राशियों का एक भगण होता है।

पंचांग समिति का प्रतिवदेन – पं0 दीनानाथ शास्त्री चुलैट द्वारा संकलित

वैदिक काल – वेदों का काल।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 का उत्तर

1. ख
2. ख
3. क

4. ग
5. ग
6. ख
7. क
8. ख

अभ्यास प्रश्न -2 का उत्तर

1. 6
2. निरूक्त
3. चक्षुरुपी
4. १०००
5. पाणिनि
6. सूर्यसिद्धान्त

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय ज्योतिष – श्री शंकरबालकृष्णदीक्षित
2. वेदांग ज्योतिष – मूल लेखक – महात्मा लगध, टीका – आचार्य शिवराज कौण्डिन्यायन
3. संवत्सरावली – टीका – पण्डित हीरालाल मिश्रः
4. शास्त्रशुद्ध दृष्टि से सूर्यसिद्धान्त की समीक्षा, कार्य परियोजना – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र
5. पंचांग विज्ञानम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. भारतीय ज्योतिष - डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री
2. पंचांग विज्ञानम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा
3. पंचांग समिति का प्रतिवेदन – पंडित दीनानाथ शास्त्री चुलैट
4. आधुनिक पंचांग दर्शन – प्रोफेसर भास्कर शर्मा
5. शास्त्रशुद्ध दृष्टि से सूर्यसिद्धान्त की समीक्षा, कार्य परियोजना – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारतीय पंचांग निर्माण की परम्परा का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. 'त्रिपक्ष' से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।
3. ऋग्वैदिक कालीन पंचांग का उल्लेख कीजिये।
4. पंचांग का महत्व प्रतिपादित कीजिये।

इकाई - 3 पंचांग के अंग एवं सिद्धान्त

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – पंचांग के अंग एवं सिद्धान्त। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने पंचांग के स्वरूप, संक्षिप्त इतिहास व उसकी परम्परा का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में पंचांग के अंग एवं सिद्धान्त के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

पंचांग के पाँच अंग है – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण। ये पंचांग के प्रधान अंग के रूप में जाने जाते है। इनका सैद्धान्तिक आनयन प्राय: ज्योतिष शास्त्र के समस्त सिद्धान्त ग्रन्थों में वर्णित है।

आइए हम उन पंचांग के अंगों के बारे में विस्तृत अध्ययन करते है तथा उनका सैद्धान्तिक आनयन को भी जानने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- पंचांग के अंगों को समझ लेंगे।
- पंचांग के सैद्धान्तिक प्रक्रिया को जान लेंगे।
- पंचांग के आनयन को समझा लेंगे।
- तिथि आदि पंचांग के अंगों का विभिन्न गणितीय उपपत्तियों को समझ लेंगे।
- पंचांग के महत्व को जान जायेंगे।

3.3 पंचांग की सामान्य जानकारी

पंचांग ज्योतिषशास्त्र का आधारभूत तत्व है। 'पंचांग' कालपुरुष के पाँच अंग – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण के विस्तृत विवरण को कहते है। संस्कृत में पंचांग को इस प्रकार परिभाषित करते हैं - **पंचानां अंगानां समाहार: इति पंचांगम्।** इसे आचार्यों ने श्लोक रूप में भी निम्न प्रकार निबद्ध किया है –

तिथि वारं च नक्षत्रं योग: करणमेव च।
इति पंचांगमाख्यातं व्रतपर्वनिदर्शकम्।।

'संवत्सरावली' नामक ग्रन्थ में पंचांग फलश्रुति का भी निम्न प्रकार उल्लेख किया गया है –

लक्ष्मी: स्यादचला तिथि: श्रवणतो वारात्तथायुश्चिरम्।
नक्षत्रं कृतपापतापशमनं योगो वियोगापह:।।

ज्योतिष शास्त्र के समस्त सैद्धान्तिक ग्रन्थों का अध्ययन हो जाने पर भी प्रायोगिक स्थल में जिसके बिना एक ज्योतिष शास्त्र का ज्ञाता भी अभाव का अनुभव करता है, उसका नाम है – पंचांग। आकाश मण्डल में सूर्य-चन्द्रमा के संचार को पंचांग की संज्ञा दी गयी है। प्रलयोपरान्त जब सूर्य का दर्शन होता है तब सृष्टि की रचना आरम्भ होती है। उसी समय से दिन, होरा, वार आदि की गणना होने लगती है। पंचांग द्वारा ही सामाजिक जीवन के सभी प्रकार के मांगलिक कार्यों हेतु शुद्ध तथा पवित्र समय का निर्धारण किया जाता है, जिसके फलस्वरूप प्रत्येक कार्य शुभ समय में पूर्ण एवं सम्पादित हो सकें।

पंचांग को हम आधुनिक भाषा में कहें तो वह एक ज्योतिषी का संगणक (कम्प्यूटर) है। जिस में बारह महीनों अर्थात् पूरे वर्ष का समस्त सूक्ष्म से विशाल तक का लेखा-जोखा अंकित रहता है। यही कारण है कि ज्योतिषशास्त्र के अध्येता को सर्वप्रथम पंचांग देखना सिखाया जाता है। पंचांग की परिभाषा में तो पाँच अंगों (तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण) की चर्चा है। किन्तु विदित हो कि पंचांग का क्षेत्र व्यापक है, विशाल है। इससे देखने वाले के सामने समस्त आकाशीय नक्षत्र मण्डल 'करगत फल आमलक समाना' हाथों में स्थित आँवले के फल जैसा सूक्ष्म रूप धारण कर दिखाई देने लगता है। पंचांग के प्रमुख अंगों के आधार पर ही शुभ समय निश्चित किया जाता है। इन पाँचों के परिचय और इन्हीं पाँचों के आपस में मिलाने से अनेक शुभ अथवा अशुभ फल देने वाले समय का ज्ञान प्राप्त होता है। उनका ज्ञान रखना परमावश्यक है। इन पाँचों अंगों के संयोग से उत्पन्न होने वाली शुभ फलदायी काल को ही मुहूर्त्त कहा जाता है। मुहूर्त्तों में भी शुभ मुहूर्त्त का निर्धारण जातक का पिण्ड के आधार पर किया जाता है। यही संहिता शास्त्र के अन्तर्गत पंचांग कहलाता है।

3.3.1 पंचांग के प्रधान अंग

सूर्य तथा चन्द्रमा के मध्य १२ अंश के गत्यात्मक अन्तर को तिथि कहते हैं। इसी तरह की ३० तिथियों से एक चान्द्रमास बनता है। अमावस्या तिथि को चन्द्रमा क्षीण अवस्था में रहता है तथा पूर्णिमा को पूर्ण बली होता है। सूर्य तथा चन्द्रमा आकाश में जहाँ विचरण करते हैं, उसे नक्षत्र कहते हैं। इस पूरे विचरण मार्ग को भगण कहते हैं जो ३६० अंश का होता है। इसके २७ भाग होते हैं। उन्हें २७ नक्षत्र कहा जाता है। इसमें एक नक्षत्र का मान १३ अंश २० कला निश्चित होता है। इस ३६० अंश के भगण को १२ भागों में बाँटने पर १२ राशियाँ प्रकट होती है। इसमें एक राशि का मान ३० अंश होता है। इसे राशि चक्र कहते है। पंचांग के प्रधान अंगों में प्रथम अंग तिथि को कहा गया है।

अत: आइए सर्वप्रथम तिथि के बारे मे जानते हैं।

1. **तिथि** - चन्द्रमा अपने विमण्डल में स्वगति से चलता हुआ जिस समय सूर्य के सन्निकट पहुँच जाता है तब वह अमावस्या तिथि होती है। अर्थात् अमावस्या तिथि के दिन सूर्य-चन्द्र दोनों एक राशि पर आ जाते हैं। उसके बाद सूर्य एवं चन्द्रमा दोनों अपने-अपने मार्ग पर घूमते हुए जो दूरी (१२ अंश की) उत्पन्न करते हैं, उसी को 'तिथि' कहा गया है। १२-१२ अंशात्मक अन्तर की एक-एक तिथि होती है। ३६० अंश पूरा होने पर पुन: सूर्य-चन्द्र एक राशि पर आ जाते हैं, तब एक चान्द्रमास होता है। सूर्य चन्द्र का १२ अंश अन्तर जिस समय में पूरा होता है, उसको तिथि का भोगकाल कहते हैं। तिथि का अन्तर जिस समय से प्रारम्भ होता है, वह पंचांग में अंकित रहता है। जब १,२,३,४ आदि तिथियों में चन्द्रमा की कलाएँ बढ़ती रहती है, उसको शुक्ल पक्ष और जिस समय चन्द्रमा की कलाएँ घटने लगती हैं, उसे कृष्णपक्ष कहा जाता है। इसीलिए चान्द्रमास में दो पक्ष कहे गए है। अमावस्या को पंचांगों में ३० वीं तिथि लिखते हैं। जब चन्द्रमा की कलाएँ पूर्णता को प्राप्त हो जाती है उसे पूर्णिमा एवं घटते-घटते जब कलाएँ हीन हो जाती है, तो वह अमावस्या कही जाती है। सूर्य का मध्यम दैनिक गति १ अंश है तथा चन्द्रमा का मध्यम दैनिक गति १३ अंश है। अर्थात् ये पूर्वाभिमुख होकर १२ अंशों के अन्तर पर गति करते हैं। सूर्य तथा चन्द्रमा का १२ अंशों का अन्तर यदा कदा कम या ज्यादा हो जाता है तब कभी तिथि कम हो जाती है तो कभी तिथि वृद्धि हो जाती है। एक मास में दो पक्ष होते हैं – शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष। शुक्ल पक्ष अन्तिम तिथि को को पूर्णिमा तथा कृष्णपक्ष की अन्तिम तिथि को अमावस्या कहते हैं। अमावस्या को सूर्य-चन्द्र का मिलन होता है। अमावस्या के पश्चात् चन्द्रमा नई तिथि से से नवीन मास का आरम्भ करता है। तिथियों का एक निश्चित समय नहीं होता है। इनका अन्तर तथा अवधि भी समान नहीं होती है। इसमें तिथि क्षय तथा वृद्धि भी होती है। जब सूर्यांशों से चन्द्रमा सूर्य से १२ × १५ = १८० अंश आगे हो जाता है तब पूर्णिमा तिथि समाप्त होती है और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा का आरम्भ होता है। जब चन्द्रमा और सूर्य का अन्तर ३६० अंश अर्थात् शून्य हो जाता है तो अमावस्या होती है। इसी परिभ्रमण को चान्द्र मास कहते हैं।
2. **वार** – पंचांग का दूसरा प्रमुख अंग है –वार। इसका साधन अहर्गण साधन से किया जाता है। ग्रहस्पष्ट के लिए भी भी अहर्गण साधन आवश्यक है। वारों का क्रम ग्रहकक्षा क्रम पर आधारित है। सृष्टि रचना के समय सूर्य ही था इसलिये प्रथम वार सूर्यवार अर्थात् रविवार

आता है। उसके बाद ही अन्य ग्रह क्रम से आते हैं। एक अहोरात्र अर्थात् दिन-रात में २४ होरा होती है। सूर्योदय के समय जिस ग्रह की होरा होती है। उस दिन उसी ग्रह का वार होता है।

वार को इस प्रकार भी समझा जा सकता है। जब किसी वस्तु का निरीक्षण होता है, तब सर्वप्रथम उत्कृष्ट पर ही दृष्टि पड़ती है। इस स्वयंसिद्ध नियम के अनुसार हमारे ऋषि मुनियों की दृष्टि सर्वप्रथम सूर्य पर पड़ी इसलिए पहला वार सूर्य का निश्चित हुआ। उसके बाद चन्द्रमा पर पड़ी, इसलिए दूसरा वार चन्द्रवार या सोमवार कहा गया। सूर्य कक्षा से नीचे चौथी चन्द्रकक्षा है। इससे चार-चार कक्षा के वार निश्चित किए गए। इस दृष्टि से चन्द्रमा से चौथी कक्षा मंगल की है अत: तीसरा मंगलवार हुआ। मंगल से चौथी कक्षा बुध की होने के कारण चौथे स्थान पर बुधवार सुनिश्चित हुआ इसी तरह बुध से चौथी कक्षा पर गुरु होने से गुरुवार, गुरु से चौथी कक्षा शुक्र की होने से शुक्रवार एवं शुक्र से चौथी कक्षा शनि की पड़ती है। अत: शनिवार को सप्तम वार के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया। इस प्रकार ऋषियों ने वार-क्रम निश्चित कर विश्व का महान उपकार किया है। ज्योतिष शास्त्र का यह सिद्धान्त सम्पूर्ण विश्व में एकरूपता के लिए मान्य है। यह इस शास्त्र का गौरव है।

वारों के वैकल्पिक नाम इस प्रकार प्राप्त होते हैं-

रविवार- भानु, सूर्य, बुध्न, भास्कर, दिवाकर, सविता, प्रभाकर, तपन, दिवेश, दिनेश, अर्क, दिवामणि, चण्डांशु, द्युमणि इत्यादि।

सोमवार- चन्द्र, विधु, इन्दु, निशाकर, शीतांशु, हिमरश्मि, जडांशु, मृगांक, शशांक, हरिपाल इत्यादि।

भौमवार- कुज, भूमितनय, आर, भीमवक्त्र एवं अंगारक इत्यादि।

बुधवार- सौम्य, वित्, ज्ञ, मृगांकजन्मा, कुमारबोधन, तारापुत्र इत्यादि।

गुरूवार- बृहस्पति, इज्य, जीव, सुरेन्द्र, सुरपूज्य, चित्रशिखण्डितनय, वाक्पति इत्यादि।

शुक्रवार- उशना, आस्फुजित्, कवि, भृगु, भार्गव, दैत्यगुरु इत्यादि।

शनिवार- मन्द, शनैश्चर, रवितनय, रौद्र, अर्कि, सौरि, पंगु, शनि इत्यादि।

3. **नक्षत्र** - नक्षत्र को तारा भी कहते हैं। एक नक्षत्र उस पूरे चक्र (३६०°) का २७ वाँ भाग होता है जिस पर सूर्य एक वर्ष में एक परिक्रमा करता है। सभी नक्षत्र प्रतिदिन पूर्व में उदय होकर पश्चिम में अस्त होते हैं। तथा पुन: पूर्व में उदय होते हैं। इसी को नाक्षत्र अहोरात्र कहते है। यह चक्र सदा समान रहता है। कभी घटता बढ़ता नहीं है। सूर्य जिस मार्ग में भ्रमण करते है, उसे क्रान्तिवृत्त कहते हैं। यह वृत्त ३६० अंशों का होता है। इसके समान रूप से १२ भाग

करने से एक-एक राशि तथा २७ भाग कर देने से एक-एक नक्षत्र कहा गया है। यह चन्द्रमा से सम्बन्धित है। अत: स्पष्ट राश्यादि चन्द्रमा का कलात्मक बनाकर ८०० से भाग देने पर लब्धिगत नक्षत्र संख्या शेष वर्तमान नक्षत्र की सूक्ष्म कला होती है। नक्षत्रों की संख्या २७ कही गयी है। ये नक्षत्र हैं- अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पू0फा0, उ0फा0, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पू0षा0, उ0षा0, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पू0भा0, उ0भा0 तथा रेवती।

विशेष – इन २७ नक्षत्रों के अतिरिक्त अभिजित् नक्षत्र की भी गणना नक्षत्रों में कहीं-कहीं की जाती है। अभिजित् उत्तराषाढ़ा तथा श्रवण के मध्य आता है। उत्तराषाढ़ा का अन्तिम चतुर्थ भाग तथा श्रवण का पहला पन्द्रहवाँ भाग अभिजित् का भोग होता है।

अब नक्षत्रों के बारे में अब आप जान गये होगे। इन नक्षत्रों के आधार पर वर्णों का निर्धारण कर किस प्रकार नक्षत्र नाम का निर्धारण किया जाता है इसके बारे में जानना अति आवश्यक है। इसलिये अग्रिम जानकारी दी जा रही है इसे ध्यान पूर्वक समझना चाहिये।

अश्विनी नक्षत्र के चारो पादों को **चू, चे, चो, ला** के रूप में जाना जाता है**। भरणी नक्षत्र** के चारो पादों को **ली, लू, ले, लो** के रूप में जाना जाता है। **कृत्तिका नक्षत्र** के चारो पादों को **अ, ई, उ, ए** के रूप में जाना जाता है। **रोहिणी नक्षत्र** के चारो पादों को **ओ, वा, वी, वू** के रूप में जाना जाता है। **मृगशिरा नक्षत्र** के चारो पादों को **वे, वो, का, की** के रूप में जाना जाता है। आर्द्रा नक्षत्र के चारो पादों को **कू, घ, ड., छ** के रूप में जाना जाता है। पुनर्वसु के चारो पादों को **के, को, हा, ही** के रूप में जाना जाता है। पुष्य नक्षत्र के चारो पादों को **हू, हे, हो, डा** के रूप में जाना जाता है। आश्लेषा नक्षत्र के चारो पादों को **डी, डू, डे, डो** के रूप में जाना जाता है। मघा नक्षत्र के चारो पादों को **मा, मी, मू, मे** के रूप में जाना जाता है। पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र के चारो पादों को **मो, टा, टी, टू** के रूप में जाना जाता है। उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के चारो पादों को **टे, टो, पा, पी** के रूप में जाना जाता है। हस्त नक्षत्र के चारो पादों को **पू, ष, ण, ठ** के रूप में जाना जाता है। चित्रा नक्षत्र के चारो पादों को **पे, पो, रा, री** के रूप में जाना जाता है। स्वाती नक्षत्र के चारो पादों को **रू, रे, रो, ता** के रूप में जाना जाता है। विशाखा नक्षत्र के चारो पादों को **ती, तू, ते, तो** के रूप में जाना जाता है। अनुराधा नक्षत्र के चारो पादों को **ना, नी, नू, ने** के रूप में जाना जाता है। ज्येष्ठा नक्षत्र के चारो पादों को **नो, या, यी, यू** के रूप में जाना जाता है। मूल नक्षत्र के चारो पादों को **ये, यो, भा, भी** के रूप में जाना जाता है। पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र के चारो पादों को **भू, ध, फ, ढ** के रूप में जाना जाता है। उत्तराषाढ़ा नक्षत्र के चारो पादों को **भे, भो, जा, जी** के रूप में जाना जाता है। श्रवण नक्षत्र के चारो पादों को **खी, खू, खे,**

खो के रूप में जाना जाता है। धनिष्ठा नक्षत्र के चारो पादों को **गा, गी, गू, गे** के रूप में जाना जाता है। शतभिषा नक्षत्र के चारो पादों को **गो, सा, सी, सू** के रूप में जाना जाता है। पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र के चारो पादों को **से, सो, दा, दी** के रूप में जाना जाता है। उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र के चारो पादों को **दू, थ, झ, ञ** के रूप में जाना जाता है। रेवती नक्षत्र के चारो पादों को **दे, दो, चा, ची** के रूप में जाना जाता है।

इन पादों का निर्धारण भयात् एवं भभोग के आधार पर होता है। भ का अर्थ नक्षत्र होता है। यात् का गत हुआ होता है यानी जितनी घटी नक्षत्र गत हो गयी उसे भयात् के रूप में एवं जितनी घटी नक्षत्र सम्पूर्ण भोग करेगी उसे भभोग के रूप में जाना जाता है। इसके निर्धारण हेतु बतलाया गया है कि-

गतर्क्ष नाडी खरशेषु शुद्धा, सूर्योदयादिष्ट भवेद् युक्ता।
भयात् संज्ञा भवतीह तस्य, निजर्क्ष्य नाड़ी सहितो भभोगः।।

इसका अर्थ यह हुआ कि गत नक्षत्र को साठ में से घटाकर सूर्योदयादिष्ट को जोड़ देने से भयात् संज्ञा हो जाती है। और वर्तमान नक्षत्र में उस घटाये हुये मान को जोड़ने से भभोग संज्ञा हो जाती है। जिसके आधार पर पाद भेद का निर्धारण हो जाता है। इस प्रकार से इसमें आपने नक्षत्रों के नाम एवं पाद भेद की दृष्टि से उनके वर्णाक्षरों को जाना। इसके ज्ञान से नक्षत्र ज्ञान आपका प्रौढ़ होगा तथा आसानी से आप राशि का निर्माण भी करने में समर्थ हो सकेगें।

नक्षत्र भगण – ग्रह के प्रथम उदय से द्वितीय उदय तक के समय को उस ग्रह का 'सावन दिन' कहते हैं। नाक्षत्र सावन दिन संख्या से ग्रह भगण संख्या घटाने पर ग्रह सावन दिन आता है। चन्द्र भगण से सूर्य भगण संख्या घटाने पर चान्द्रमास संख्या प्राप्त होती है।

अथ भग्रह योगाय भानां वक्ष्ये ध्रुवान शरान्।
संख्याकारान् योगतारा: सागानां बिम्ब विस्तृतो।।

अर्थात् तारा तथा ग्रहयोग जानने के लिए अश्विनी आदि तारागणों का क्रान्ति वृत्तीय ध्रुव राशि आदि, उनका आकार, संख्या, प्रत्येक का योग तारा और उनका शर और योगतारा का बिम्ब विस्तार किया जाता है। नक्षत्र मण्डल के योगतारा का शर या क्रान्तिवृत्त से उत्तर या दक्षिण में उनकी दूरी के अनुसार देखी जाती है। निम्न नक्षत्रों का विक्षेप दक्षिण में होता है- ४,५,६,१६,१७,१८,१९,२०,२१,९,१३,१४,२४। शेष का विक्षेप उत्तर दिशा में होता है। एक नक्षत्र का भोग ८०० कलाओं का तथा एक तिथि का भोग ७२० कलाओं का होता है। ग्रह के भोग को कला बनाकर ८०० कला से भाग देने पर लब्धि, गत नक्षत्रों की संख्या होती है और शेष आगे के नक्षत्र की गतकला की प्राप्ति होती है। गत कला को ग्रह की दैनिक गति से भाग देने पर दिन, मास,

घटीपल आदि प्राप्त होते हैं। ८०० कला में से गत कला को घटाकर शेष को दैनिक गति से भाग देने पर वर्तमान ग्रह उस नक्षत्र में कब तक रहेगा इसका भी पता लगता है।

योग –

कुल सत्ताईस योग होते हैं, जिन्हे क्रमशः विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतिपात, वरीयान्, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र एवं वैधृति। इन योगों का प्रयोग संकल्पादि के अवसर पर किया जाता है तथा शुभाशुभ विचार में भी इनका महत्व है। जन्म कुण्डली में योग का फल जानने हेतु इन्ही योगों का प्रयोग देखने को मिलता है।

इसके अलावा आनन्दादि योगों का प्रयोग भी देखने को मिलता है, जिसका प्रयोग यथा नाम तथा गुणः के आधार पर लिखा रहता है। इन योगों की संख्या अठ्ठाईस बतलायी गयी है। इसका वर्णन इस प्रकार किया गया है-

आनन्दाख्यः कालदण्डश्च धूम्रो धाता सौम्यो ध्वांक्षकेतु क्रमेण।
श्रीवत्साख्यो वज्रकं मुद्गरश्च छत्रं मित्रं मानसं पद्मलुम्बौ।
उत्पातमृत्यु किलकाणसिद्धी शुभो अमृताख्यो मुसलो गदश्च।
मातंगरक्षश्चरसुस्थिराख्याः प्रवर्धमानाः फलदाः स्वनाम्ना।।

अर्थात् इन योगों के नाम इस प्रकार है- 1 आनन्द, 2 कालदण्ड, 3 धूम्र, 4 धाता, 5 सौम्य, 6 ध्वांक्ष, 7 केतु, 8 श्रीवत्स, 9 वज्र, 10 मुद्गर, 11 छत्र, 12 मित्र, 13 मानस, 14 पद्म, 15 लुम्ब, 16 उत्पात, 17 मृत्यु, 18 काण, 19 सिद्धि, 20 शुभ, 21 अमृत, 22 मुशल, 23 गद, 24 मातंग, 25 रक्ष, 26 चर, 27 सुस्थिर और 28 प्रवर्धमान हैं। ये सभी योग अपने नाम के अनुसार फल देने वाले होते है।

इन योगों के निर्धारण का नियम बतलाते हुये कहा गया है कि-

दास्रादर्के मृगादिन्दौ सार्पाद्भौमे कराद्बुधे।
मैत्राद् गुरौ भृगौ वैश्वाद् गण्या मन्दे च वारुणात्।।

अर्थात् रविवार को अश्विनी से, सोमवार को मृगशिरा से, मंगलवार को आश्लेषा से, बुधवार को हस्त से, गुरूवार को अनुराधा से, शुक्रवार को उत्तराषाढ़ा से और शनिवार को शतभिषा से योगों को जाना चाहिये। अभिजित सहित वर्तमान नक्षत्र तक गिनकर जितनी संख्या हो उस दिन आनन्द से गिनने पर उतनी संख्या वाला योग होता है। उदाहरण स्वरूप यदि रविवार को धनिष्ठा नक्षत्र है तो कौन योग होगा ? ऐसे प्रश्न के उत्तर के लिये रविवार को अश्विनी से धनिष्ठा तक अभिजित् सहित गिनने पर 24 संख्या हुयी। अतः आनन्दादि से 24वां मातंग योग आया। इसी प्रकार सभी वारों में

समझना चाहिये।

किसी भी कार्य के आरम्भ में इन योगों का विचार करना चाहिये। शुभ योगों के होने पर उसमें आरम्भ शुभदायक तथा अशुभ योगों में कार्य का आरम्भ अशुभदायक होता है। अशुभ योगों में कार्यारम्भ आवश्यक हो तो उसके परिहार का विचार कर आवश्यक दुष्ट घड़ी का त्याग कर कार्यारम्भ किया जा सकता है जिसका विचार इस प्रकार है-

ध्वांक्षे वज्रे मुद्गरे चेषुनाड्ये वर्ज्या वेदाः पद्मलुम्बे गदे अश्वाः।
धूम्रे काणे मौसले भूर्द्वयं द्वे रक्षोमृत्यूत्पातकालाश्च सर्वे।।

अर्थात् 6 ध्वांक्ष, 9 वज्र और 10 मुद्गर योगों में आदि की पांच घटी, 14 पद्म और 15 लुम्ब योगों मे आदि की चार घटी, 23 गद योग में आदि की सात घटी, 3 धूम्र योग में आदि की 1 धटी, 18 काण योग में दो घटी , 22 मुशल में दो घटी, 25 राक्षस, 17 मृत्यु और 16 उत्पात एवं 2 काल योगों की समस्त घटिकायें शुभ कर्म में त्याज्य हैं।

इसके अलावा यह भी ज्ञतव्य है कि सूर्य जिस नक्षत्र पर हो, उस नक्षत्र से वर्तमान चन्द्र नक्षत्र चौथा, नवां, छठा, दसवां, तेरहवां, और बीसवॉं हो तो रवियोग होता है। यह उस काल के समस्त दोषों को नष्ट करने वाला बतलाया गया है। यथा-

सूर्यभाद्वेदगोतर्कदिग्विश्वनखसम्मिते ।
चन्द्रर्क्षे रवियोगाः स्युर्दोषसंघविनाशकाः।।

योग साधन -

रविन्दुयोगलिप्ताभ्योयोगाभ भोगभापिता:।
गतं गम्यं च षष्टिघ्नं भुक्तियोगाप्त नाडिका।।

सूर्य तथा चन्द्रमा के स्पष्ट स्थानों को जोड़कर उनकी कला बनाकर ८०० से भाग देने पर गत योगों की संख्या प्राप्त होती है। शेष से यह ज्ञात होता है कि वर्तमान योग की कितनी कला बीत गई। यदि शेष को ८०० कला में से घटा दिया जाये तो यह ज्ञात होगा कि वर्तमान योग की कितनी कला शेष है। गत तथा गम्य कला को ६० से गुणा करके सूर्य तथा चन्द्रमा की स्पष्ट दैनिक गतियों के योग से भाग देने पर यह ज्ञात होगा कि वर्तमान योग कितने पहले आरम्भ हुआ और कितना शेष है। अश्विनी के आरम्भ में सूर्य व चन्द्रमा दोनों मिलकर ८०० कला आगे चलने पर १ योग समाप्त होता है। १६०० कला पर दूसरा योग समाप्त होता है। इस तरह से ३६०० या २१६०० कला चलने पर २७ वाँ योग आता है।

करण परिचय एवं साधन –

एक तिथि में दो करण होते हैं। करण चर एवं स्थिर दो प्रकार के होते हैं। चर करण सात होते हैं जिन्हें बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि के नाम से जाना जाता है। इनका प्रारम्भ शुक्ल प्रतिपदा के उत्तरार्द्ध से होता है। और एक मास में इनकी आठ आवृत्तियां होती हैं। शकुनी, चतुष्पद, नाग तथा किंस्तुघ्न ये चार स्थिर करण है। इनका प्रारम्भ कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध से होता है। अर्थात् चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध में शकुनी, अमावास्या के पूर्वार्ध में चतुष्पद, उत्तरार्ध में नाग तथा शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न करण सदा नियत रहते हैं। इनकी स्थिर संज्ञा है।
इसमें जहां - जहां विष्टि शब्द आया है, उससे उस तिथि के निर्दिष्ट भाग को भद्रा कहते हैं। जैसे शुक्ल पक्ष में चार, ग्यारह और कृष्णपक्ष में तीन, दश तिथियों के उत्तरार्ध में भद्रा रहती है। और शुक्लपक्ष में आठ, पन्द्रह कृष्णपक्ष में सात, चौदह तिथियों के पूर्वार्ध में भद्रा रहती है।
भद्रा के ज्ञान हेतु तिथियों का मान जानना आवश्यक है। जैसे दिया गया कि कृष्णपक्ष के उत्तरार्ध में भद्रा रहती है तो उत्तरार्ध का प्रारम्भ कब होगा? इसका सम्पूर्ण काल कितना रहेगा? इन सारी चींजों को जानना आवश्यक है, अन्यथा इसके अभाव में भद्रा का निर्धारण नही हो सकेगा। जैसे द्वितीया तिथि का घटी मान 14.4 दिया गया है। इस मान को 60.00 में से घटाने पर 45.56 शेष बचेगा। इस मान को तृतीया के घटी मान 12.31 में जोड़ने से तृतीया का भोग काल 58.27 हो जाता है। इस भोग काल का आधा 29.13.30 आयेगा। इस मान को द्वितीया के मान घटी 14.4 में जोड़ने पर तृतीया का उत्तरार्ध 43.17 के बाद प्रारम्भ होगा। उसी समय से भद्रा प्रारम्भ होकर तृतीया की समाप्ति पर्यन्त रहेगी। इसी प्रकार अन्य सभी भद्राओं को समझना चाहिये। अब आप करण का सामान्य परिचय जान गये होगें। आवश्यकतानुसार विष्टि करण का साधन भी आराम से कर सकते है।

ध्रुवाणि शकुनिर्नाग: तृतीयं तु चतुष्पदम्।
किंस्तुघ्नं च चतुर्दश्या: कृष्णाया अपरार्धत:।।
बवादीनि तथा सप्त चराख्यकरणानि तु।
मासेऽष्टकृत्व एकैकं करणं परिवर्तते।।
तिथ्यर्धभोगं सर्वेषां करणानां प्रचक्षते।
इत्थं स्पष्टगति: प्रोक्ता सूर्यादीनां खचारिणाम्।।

शकुनि, नाग, चतुष्पद व किंस्तुघ्न ये चार स्थिर करण कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ होकर आधी-आधी तिथि में क्रम से चलते हैं। इसके बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, एवं विष्टि आदि सप्त चर करण कम से माह में आठ परिक्रमा करते हैं। एक करण आधी तिथि अर्थात् ६

अंश का भोग करता है। इस तरह से एक चान्द्रमास में ६० करण होते हैं। इनमें चार स्थिर और शेष ५६ चर करण है। पूरे मास में ७ चर करणों की ८ आवृत्ति होती है।

स्थिर करण - कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध में शकुनि, अमावस्या के पूर्वार्ध में चतुष्पद तथा उत्तरार्द्ध में नाग, शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के पूर्वार्ध में किंस्तुघ्न आदि स्थिर करण होते हैं।

चर करण – शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा के उत्तरार्द्ध से कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के पूर्वार्द्ध तक ५६ तिथ्यर्धो में क्रम से चर करणों की आवृति होती है।

प्रत्येक चान्द्रमास सम्बन्धित करणों के नाम –

तिथि	**शुक्लपक्ष (पूर्वार्द्ध)**	**शुक्लपक्ष (उत्तरार्द्ध)**	**तिथि**	**कृष्णपक्ष (पूर्वार्द्ध)**	**कृष्णपक्ष (उत्तरार्द्ध)**
१	किंस्तुघ्न	बव	१	बालव	कौलव
२	बालव	कौलव	२	तैतिल	गर
३	तैतिल	गर	३	वणिज	विष्टि
४	वणिज	विष्टि	४	बव	बालव
५	बव	बालव	५	कौलव	तैतिल
६	कौलव	तैतिल	६	गर	वणिज
७	गर	वणिज	७	विष्टि	बव
८	विष्टि	बव	८	बालव	कौलव
९	बालव	कौलव	९	तैतिल	गर
१०	तैतिल	गर	१०	वणिज	विष्टि
११	वणिज	विष्टि	११	बव	बालव
१२	बव	बालव	१२	कौलव	तैतिल
१३	कौलव	तैतिल	१३	गर	वणिज
१४	गर	वणिज	१४	विष्टि	शकुनि
१५	विष्टि	बव	१५	नाग	चतुष्पद

अभ्यास प्रश्न -1

1. निम्न में पंचांग का अंग नहीं हैं –

   क. वार ख. नक्षत्र ग. तिथि घ. अयन

2. तिथि श्रवण से होता है –

   क. अचल लक्ष्मी की प्राप्ति ख. आयुवृद्धि ग. पापशमन घ. मनोकामना पूर्ण

3. जया संज्ञक तिथियाँ हैं –

   क. ३,८,१३ ख. १,६,११ ग. २,७,१२ घ. ९,४,१४

4. एक तिथि में कितने करण होते हैं?

   क. १ ख. २ ग. ३ घ. ४

5. हस्त नक्षत्र का चरणाक्षर है?

   क. पू, ष, ण, ठ ख. पे, पो, रा, री ग. रू, रे, रो, तो घ. मा, मी, मू, मे

6. कृत्तिका नक्षत्र के स्वामी है –

   क. दस्रौ ख. यम ग. अनल घ. ब्रह्मा

7. एक चान्द्रमास में कुल कितने करण होते हैं ?

   क. ५० ख. ६० ग. ७० घ. ८०

8. 'भद्रा' के रूप में किस करण को जाना जाता है?

   क. बव ख. बालव ग. विष्टि घ. कौलव

3.4 तिथियों के शुभाशुभ स्वरूप

तिथि क्या है? इस पर विचार करते हुये आचार्यों ने कहा है एक- चन्द्रकलावृद्धिक्षयान्यतरावच्छिन्नः कालः तिथिः। अर्थात् चन्द्रमा के एक-एक कला वृद्धि के अवच्छिन्न काल को तिथि कहा जाता है। इसके बारे में वृहद् ज्ञान आप इससे पूर्व के प्रकरण में प्राप्त कर चुके हैं। तिथियों की संख्या पन्द्रह है जिनका नाम प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा या अमावास्या है। ये दोनो तिथियां शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष की है। इनके शुभ एवं अशुभ के बारे में यह वचन मिलता है-

नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्यो अशुभमध्यशस्ता।
सिते असिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धा।। (मुहूर्त्तचिन्तामणिः -शुभाशुभप्रकरण- 4)

इस श्लोक के अनुसार तिथियों को पांच भागों में बांटा गया है जिन्हें नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता एवं पूर्णा के नाम से जाना जाता है। नन्दा में प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी तिथियां, भद्रा में द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथियां, जया में तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथियां, रिक्ता में चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियां तथा पूर्णा में पंचमी, दशमी एवं अमावास्या या पूर्णिमा तिथियां आती है। प्रत्येक पक्ष में ये

नन्दादि तिथियां तीन बार आती है। उसी को व्यक्त करते हुये कहा गया है कि शुक्ल पक्ष में प्रथम नन्दा इत्यादि तिथियां अशुभ, द्वितीय नन्दा इत्यादि तिथियां मध्य एवं तृतीय नन्दा इत्यादि तिथियां शुभ होती है। उसी प्रकार कृष्ण पक्ष में प्रथम नन्दा इत्यादि तिथियां शुभ, द्वितीय नन्दा इत्यादि तिथियां मध्य एवं तृतीय नन्दा आदि तिथियां अशुभ होती है।

शुक्रवार को नन्दा तिथि यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी, बुधवार को भद्रा यानी द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथि, भौमवार को जया यानी तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथि, शनिवार को रिक्ता यानी चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथि तथा गुरुवार को पंचमी, दशमी, अमावास्या या पूर्णिमा तिथि सिद्ध योग प्रदान करती है अर्थात् इसमें कार्य का आरम्भ कार्य को सिद्धि दिलाने वाला होता है।

चन्द्रमा के पूर्ण या क्षीण होने से तिथियों में बलत्व या निर्बलत्व होता है। शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से पंचमी तक चन्द्रमा के क्षीण होने के कारण प्रथमावृति की नन्दा इत्यादि तिथियां अशुभ है। षष्ठी से दशमी तक चन्द्रमा के मध्य यानी न पूर्ण न क्षीण होने से द्वितीयावृति की नन्दा इत्यादि तिथियां मध्य मानी जाती है। ठीक इसी प्रकार तृतीयावृति की नन्दादि तिथियां चन्द्रमा के पूर्ण होने के कारण शुभ कही गयी है।

इसके अध्ययन से तिथियों की संज्ञा एवं शुभ एवं अशुभत्व का विचार आप सम्यक् तरीके से जान गये होगें। इस ज्ञान को पुष्ट करने के लिये नीचे प्रश्न दिया जा रहा है जो इस प्रकार है-

3.4.1 तिथियों एवं वारों के संयोग से शुभ एवं अशुभ विचार-

अब हम रवि इत्यादि वारों, तिथियों एवं नक्षत्रों के संयोग से शुभ एवं अशुभ कालों का विचार इस प्रकार करेगें। अधोलिखित श्लोक को ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये।

नन्दा भद्रा नन्दिकाख्या जया च रिक्ता भद्रा चैवपूर्णा मृतार्कात्।

याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवं धनिष्ठार्यम्णं ज्येष्ठान्त्यं रवेर्दग्धभं स्यात्।। मुहूर्त्तचिन्तामणिः शुभाशुभप्रकरणम्- 5

अर्थात् सूर्य आदि वारों में क्रम से नन्दा, भद्रा, नन्दा, जया, रिक्ता, भद्रा और पूर्णा तिथियां पड़ जाये तो अधम योग होता है। इसका मतलब रविवार को नन्दा यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी तिथियां हो, सोमवार को भद्रा यानी द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथियां हो, भौमवार को नन्दा यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी तिथियां हो, बुधवार को जया यानी तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथियां हों, गुरुवार को रिक्ता यानी चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियां हों, शुक्रवार को भद्रा यानी द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथियां हो और शनिवार को पूर्णा यानी पंचमी, दशमी एवं अमावास्या या पूर्णिमा तिथियां आती हो तो मृत योग बन जाता है।

इसी प्रकार सूर्यादि वारों में क्रमशः भरणी आदि नक्षत्र हो अर्थात् रविवार को भरणी, सोमवार को

चित्रा, मंगलवार को उत्तराषाढ़ा, बुधवार को धनिष्ठा, बृहस्पतिवार को उत्तराफाल्गुनि, शुक्रवार को ज्येष्ठा और शनिवार को रेवती आ जाय तो दग्ध योग होता है। ये दोनों मृत्यु योग एवं दग्ध योग यात्रा में अत्यन्त निन्दित है। अन्य शुभ कार्य भी इनमें न किये जाय तो उत्तम होता है।
तिथियों और वारों से संबंधित शुभाशुभत्व पर विचार करते हुये ग्रन्थकार ने एक विचार और दिया है जिसका वर्णन मै यहां अत्यन्त उचित समझता हूँ जो इस प्रकार है।

षष्ठ्यादितिथयो मन्दाद्विलोमं प्रतिपद् बुधे ।
सप्तम्यर्के धमाः षष्ठ्याद्यामाश्च रदधावने।।

इस श्लोक की व्याख्या करते हुये बतलाया गया है कि षष्ठी आदि क्रम से तिथियों और शनि आदि उलटे वारों के योग से क्रकच नामक अधम योग होता है। जैसे शनिवार को षष्ठी, शुक्रवार को सप्तमी, गुरुवार को अष्टमी, बुधवार को नवमी, भौमवार को दशमी, सोमवार को एकादशी और रविवार को द्वादशी हो जाय तो क्रकच नाम का कुयोग होता है। यह कुयोग दिन एवं तिथि के संयोग से तेरह बनने के कारण हो रहा है। जैसे शनिवार का मतलब सात एवं षष्ठी तिथि का मतलब छ, दोनों को जोड़ने से तेरह हो रहा है जिसके कारण क्रकच नामक योग बन रहा है। एक और उदाहरण समझ लेने से यह बात पूरी तरह दिमाग में बैठ जायेगी जैसे भौमवार और दशमी, इसमें भौमवार की संख्या तीन है, दशमी की दश संख्या को इसमें जोड़ने से तेरह हो रहा है जिसके कारण यह योग लग रहा है।
इसके साथ ही ज्यौतिष शास्त्र में यह बतलाया गया है कि बुधवार को प्रतिपदा तथा रविवार को सप्तमी हो तो संवर्तक नाम का कुयोग होता है। इसे शुभ नही माना गया है। इसके अलावा दग्धादि योगों की चर्चा करते हुये बतलाया गया है कि-

सूर्येशपंचाग्निरसाष्टनन्दा वेदांगसप्ताश्विगजांकशैलाः।
सूर्यांगसप्तोरगगोदिगीशा दग्धा विषाख्याश्च हुताशनश्च।
सूर्यादिवारे तिथयोभवन्ति मघाविशाखाशिवमूलवन्हिः।
ब्राह्मं करोर्काद्यमघण्टकाश्च शुभे विवजर्या गमने त्ववश्यम्।।

अर्थात् रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मंगलवार को पंचमी, बुधवार को तृतीया, बृहस्पतिवार को षष्ठी, शुक्रवार को अष्टमी एवं शनिवार को नवमी पड़ जाय तो दग्ध योग होता है।
रविवार को चतुर्थी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को द्वितीया, बृहस्पतिवार को अष्टमी, शुक्रवार को नवमी एवं शनिवार को सप्तमी पड़ जाय तो विष नामक योग होता है।
रविवार को द्वादशी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को अष्टमी, बृहस्पतिवार को नवमी, शुक्रवार को दशमी एवं शनिवार को एकादशी पड़ जाय तो हुताशन योग होता है।

रविवार को मघा, सोमवार को विशाखा, मंगलवार को आर्द्रा, बुधवार को मूल, बृहस्पतिवार को कृत्तिका, शुक्रवार को रोहिणी एवं शनिवार को हस्त नक्षत्र आ जाय तो यमघण्ट नामक योग होता है। उक्त चारों योग समस्त शुभ कार्यों में वर्जित बतलाये गये है। विशेष कर यात्रा में तो अवश्य ही त्याज्य है।

इसमें आपने तिथियों, वारों एवं नक्षत्रों के संयोग से अशुभ योगों के बारे में जाना। इसको छोड़कर अन्यत्र शुभ होता है। अतः इस पर कुछ प्रश्न दिये जा रहे हैं जिसका हल आपके ज्ञान को अभिवर्द्धित करेगा।

3.4.2 तिथियों एवं नक्षत्रों के संयोग से शुभ एवं अशुभ का विचार

तिथियों एवं नक्षत्रों के मिलन शुभ एवं अशुभ का विचार हम इस प्रकार करते है-

तथा निन्द्यं शुभे सार्पं द्वादश्यां वैश्वमादिमे।

अनुराधा तृतीयायां पंचम्यां पित्र्यभं तथा।

त्र्युत्तराश्च तृतीयायामेकादश्यां च रोहिणी।

स्वाती चित्रे त्र्योदश्यां सप्तम्यां हस्तराक्षसे।

नवम्यां कृतिकाष्टाम्यां पूभा षष्ठ्यां च रोहिणी।।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि द्वादशी तिथि में आश्लेषा, प्रतिपदा तिथि में उत्तराषाढ़ा, द्वितीया तिथि में अनुराधा, पंचमी मे मघा, तृतीया में तीनों उत्तरा यानी उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, एकादशी में रोहिणी, त्रयोदशी में स्वाती और चित्रा, सप्तमी में हस्त एवं मूल, नवमी में कृत्तिका, अष्टमी में पूर्वाभाद्रपदा और षष्ठी में रोहिणी पड़े तो निन्द्य योग होता है। इनमें शुभ कार्य करना वर्जित माना गया है।

नक्षत्रों का मासों से संबंध करके भी शुभ एवं अशुभ का विचार किया गया है-

कदास्रभे त्वाष्ट्रवायू विश्वेज्यौ भगवासवौ।

वैश्वस्रुति पाशिपौष्णे अजपादग्निपित्र्यभे।।

चित्राद्वीशौ शिवाश्व्यर्काः श्रुतिमूले यमेन्द्रभे।

चैत्रादिमासे शून्याख्यास्तारा वित्तविनाशदाः।।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि चैत्रमास में रोहिणी एवं अश्विनी नक्षत्र, वैशाख मास में चित्रा एवं स्वाती नक्षत्र, ज्येष्ठ मास में उत्तराषाढ़ा एवं पुष्य नक्षत्र, आषाढ़ में पूर्वाफाल्गुनि एवं धनिष्ठा नक्षत्र, श्रावण में उत्तराषाढ़ा एवं श्रवण नक्षत्र, भाद्रपद में शतभिषा एवं रेवती नक्षत्र, आश्विन में पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र, कार्तिक में कृत्तिका एवं मघा नक्षत्र, मार्गशीर्ष में चित्रा एवं विशाखा नक्षत्र, पौष में आर्द्रा एवं अश्विनी नक्षत्र, माघ मे श्रवण एवं मूल नक्षत्र, फाल्गुन में भरणी एवं ज्येष्ठा नक्षत्र मास

शून्य नक्षत्र कहे गये हैं। इनमें शुभ कार्य करने से कर्ता के धन का नाश होता है। इसी प्रकार राशियों के शून्यता का भी वर्णन मिलता है। यथा-

घटो झषो गौर्मिथुनं मेषकन्यालितौलिनः।
धनुः कर्को मृगः सिंहश्चैत्रादौ शून्यराशयः।।

अर्थात् चैत्र मास में कुम्भ, वैशाख में मीन, ज्येष्ठ में वृष, आषाढ़ में मिथुन, श्रावण में मेष, भाद्रपद में कन्या, आश्विन में वृश्चिक्, कार्तिक में तुला, मार्गशीर्ष में धनु, पौष में कर्क, माघ में मकर और फाल्गुन में सिंह ये राशियां शून्य मानी गयी है। इनमें शुभ कार्य करने से कर्ता के वंश और धन दोनों का विनाश होता है।

इसी प्रकार पंचांग में तिथियों एवं लग्नों के संयोग से भी शुभ एवं अशुभ का विचार इस प्रकार किया गया है-

पक्षादितस्त्वोजतिथौ घटैणौ मृगेन्द्रनक्रौ मिथुनांगने च।
चापेन्दुभे कर्कहरी हयान्त्यौ गोन्त्यौ च नेष्टे तिथिशून्यलग्ने।।

शुक्ल एवं कृष्ण दोनों पक्षों में प्रतिपदा से लेकर विषम तिथियों में क्रम से प्रतिपदा में तुला एवं मकर, तृतीया में सिंह और मकर, पंचमी में मिथुन और कन्या, सप्तमी में धनु एवं कर्क, नवमी में कर्क और सिंह, एकादशी में धनु और मीन, त्रयोदशी में वृष और मीन शून्य लग्न है। इनमें कोई शुभकार्य करना उचित नही है।

3.4.3 तिथि, वार एवं नक्षत्रादि योगों द्वारा शुभ एवं अशुभ का विचार

इसमें तिथि, वारों एवं नक्षत्रों तीनों का संयोग पाया जाता है। इन तीनों के संयोगो के आधार पर अशुभ एवं शुभ फलों का विचार करते है-

वर्जयेत् सर्वकार्येषु हस्तार्कं पंचमी तिथौ।
भौमाश्विनीं च सप्तम्यां षष्ठ्यां चन्द्रैन्दवं तथा।
बुधानुराधामष्टम्यां दशम्यां भृगुरेवतीम्।
नवम्यां गुरुपुष्यं चैकादशम्यां शनिरोहिणीम्।।

इसके अर्थ का प्रतिपादन करते हुये कहा गया है कि पंचमी तिथि में रविवार और हस्त नक्षत्र हो, सप्तमी तिथि में भौमवार और अश्विनी नक्षत्र हो, षष्ठी में सोमवार एवं मृगशिरा नक्षत्र हो, अष्टमी में बुधवार और अनुराधा नक्षत्र हो, दशमी में शुक्रवार एवं रेवती नक्षत्र हो, नवमी में गुरुवार एवं पुष्य नक्षत्र हो और एकादशी में शनिवार एवं रोहिणी नक्षत्र हो तो इन्हें समस्त शुभ कार्यो में त्याग कर देना चाहिये।

यद्यपि यहाँ नक्षत्र एवं वार के योग से शुभ योग होते है, तथापि तिथियों के योग से निषिद्ध योग हो जाता है। इसी को 'मधुसर्पिष योग' भी कहते है। महर्षि वसिष्ठ ने दूसरे प्रकार का मधु सर्पिष् योग कहा है जिसको 'हालाहल योग' भी कहा गया है।

नक्षत्रों एवं वारों के योग से कुछ विशिष्ट कार्यों को करने के लिये विवर्जित किया गया है जो इस प्रकार है-

गृहप्रवेशे यात्रायां विवाहे च यथाक्रमम्।
भौमाश्विनीं शनौ ब्राह्मं गुरौ पुष्यं विवर्जयेत्।

यहाँ पर जिन योगों की चर्चा की गयी हैं वे योग सिद्ध योग बनाते है लेकिन कुछ विशेष कार्य हेतु इन योगों को वर्जित किया गया है। गृह प्रवेश में भौमवार एवं अश्विनी नक्षत्र का संयोग त्याग देना चाहिये। यात्रा में शनिवार एवं रोहिणी नक्षत्र के संयोग को त्याग देना चाहिये। विवाह में गुरुवार एवं पुष्य नक्षत्र के संयोग को त्याग देना चाहिये।

विशेष- भौमाश्विनी, शनिरोहिणी और गुरुपुष्य ये तीनो सिद्धि है। तथापि गृहप्रवेश में भौमवार निषिद्ध है, अश्विनी नक्षत्र भी विहित नही है। अतः सिद्ध योग होते हुये भी गृहप्रवेश में त्याज्य है। वसिष्ठ एवं राजमार्तण्ड के अनुसार यात्रा में शनिवार निन्द्य माना गया है। अतः रोहिणी के योग से सिद्ध योग होते हुये भी यात्रा में त्याज्य है। गुरुपुष्य योग कामुकता का वर्धक होने से विवाह में निषिद्ध माना गया है।

सभी प्रकार के कार्यों में अधोलिखित योगों को त्याज्य माना है-

जन्मर्क्षमासतिथयोव्यतिपातभद्रा वैधृत्यमापितृदिनानितिथिक्षयर्द्धी।
न्यूनाधिमासकुलिकप्रहरार्द्धपातविष्कम्भवज्रघटिकात्रयमेववर्ज्यम्।
परिधार्द्धं पंच शूले षट् च गण्डातिगण्डयोः
व्याघाते नवनाड्यश्च वर्ज्याः सर्वेषु कर्मसु।।

अर्थात् जन्म नक्षत्र, जन्म मास, जन्म तिथि, व्यतिपात, भद्रा, वैधृति, अमावास्या, पितृ घात दिन, तिथि का क्षय दिन, तिथि वृद्धि वाला दिन, न्यून मास, अधिक मास, कुलिक योग, अर्द्धयाम, पात, विष्कम्भ योग और वज्र योग की तीन घटी, परिघ योग का आधा, शूलयोग की पॉच घटी, गण्ड एवं अतिगण्ड योग की छः छः घटी एवं व्याघात योग की नव घटी सभी प्रकार के शुभ कार्यों हेतु वर्जित की गयी है।

विशेष- जन्म नक्षत्र एवं जन्म मास उपनयन में शुभ होता है।

दूसरे दूसरे गर्भ से उत्पन्न बालक बालिकाओं का विवाह उत्तम है।

नारद संहिता के अनुसार पट्टबन्धन, मुण्डन, अन्नप्राशन, व्रतबन्ध इन कार्यों में जन्मर्क्ष शुभ माना गया

है। बहुत से कार्यो में जन्म की तारा शुभ कही गयी है।

इस प्रकार आपने तिथियों, वारों, मासों, लग्नों एवं नक्षत्रों के संयोग से शुभ एवं अशुभ योगों के बारे में जाना। इसको छोड़कर अन्यत्र शुभ होता है। अतः इस पर कुछ प्रश्न दिये जा रहे हैं जिसका हल आपके ज्ञान को अभिवर्द्धित करेगा।

शुभाशुभ योगों का विशेष विचार-

इस प्रकरण में पंचांग के अनुसार शुभ अशुभ फलों के विशेष विचार किये जायेगें। इसका ज्ञान शुभ अशुभ फलों के जानने हेतु अतयावश्यक बतलाया गया है।

3.4.4 वार एवं नक्षत्र के संयोग से सर्वार्थ सिद्धि योग का विचार-

सर्वाथसिद्धि योग एक ऐसा योग है जिसमें कार्य करने से सभी प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति होती है। आइये विचार करें कि सर्वार्थ सिद्धि योग कैसे बनता है। इस सन्दर्भ में अधोलिखित श्लोक मिलता है-

सूर्येर्कमूलोत्तरपुष्यदास्रं चन्द्रे श्रुतिब्राह्मशशीज्यमैत्रम्।
भौमेश्व्यहिर्बुध्न्यकृशानुसार्पं ज्ञे ब्राह्ममैत्रार्ककृशानुचान्द्रम्।
जीवेन्त्यमैत्राश्व्यदितिज्यधिष्ण्यं शुक्रेन्त्यमैत्राश्व्यदितिश्रवोभम्।
शनौ श्रुतिब्राह्मसमीरभानि सर्वार्थसिद्ध्यै कथितानि पूर्वैः।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि रविवार को अर्क यानी हस्त नक्षत्र, मूल नक्षत्र, उत्तर यानी उत्तराफाल्गुनि, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य और अश्विनी ये सात नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है।

सोमवार को श्रुति यानी श्रवण, ब्राह्म यानी रोहिणी, शशी यानी मृगशिरा, इज्य यानी पुष्य, और मैत्र यानी अनुराधा ये पॉच नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है।

मंगलवार को अश्व यानी अश्विनी, अहिर्बुध्न्य यानी उत्तराभाद्रपदा, कृशानु यानी कृत्तिका तथा सार्पं यानी आश्लेषा ये चार नक्षत्र मिल जाय तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है।

बुधवार को ब्राह्म यानी रोहिणी, मैत्र यानी अनुराधा, अर्क यानी हस्त, कृशानु अर्थात् कृत्तिका, और चान्द्रं यानी मृगशिरा ये पॉच नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग बनता है।

बृहस्पतिवार को अन्त्य यानी रेवती, मैत्र यानी अनुराधा, अश्व यानी अश्विनी, अदिति यानी पुनर्वसु, इज्य यानी पुष्य, धिष्ण्य यानी नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है।

शुक्रवार को अन्त्य यानी रेवती, मैत्र यानी अनुराधा, अश्व अर्थात् अश्विनी, अदिति यानी पुनर्वसु, और श्रव यानी श्रवण नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग बनता है।

शनिवार को श्रुति यानी श्रवण, ब्राह्म यानी रोहिणी, समीर यानी स्वाती, भानि अर्थात् नक्षत्राणि

अर्थात् ये नक्षत्र पाये जाते हों तो उस दिन सर्वार्थ सिद्धि योग बन रहा है ऐसा कहा जा सकता है।
इसी प्रकार उत्पात, मृत्यु, काण एवं सिद्ध योग का विचार इस प्रकार किया गया है-

द्वीशात्तोयाद्वासवात्पौष्णभाच्च ब्राह्मात्पुष्यादर्यमर्क्षाद्युगर्क्षैः।
स्यादुत्पातो मृत्यु काणौ च सिद्धिर्वारेर्काद्ये तत्फलं नामतुल्यम्।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि अर्काद्ये यानी सूर्यवार को विशाखा नक्षत्र से चार - चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी रविवार को विशाखा नक्षत्र हो तो उत्पात योग, अनुराधा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो काण योग एवं मूल नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते हैं।
सोमवार को तृतीया यानी पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र से चार-चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी सोमवार को पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हो तो उत्पात योग, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, अभिजित् नक्षत्र हो तो काण योग एवं श्रवण नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।
मंगलवार को धनिष्ठा नक्षत्र से चार-चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये हैं। यानी मंगलवार को धनिष्ठा नक्षत्र हो तो उत्पात योग, शतभिषा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र हो तो काण योग एवं उत्तराभाद्रपद नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।
बुधवार को रेवती नक्षत्र से चार-चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये हैं। यानी बुधवार को रेवती नक्षत्र हो तो उत्पात योग, अश्विनी नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, भरणी नक्षत्र हो तो काण योग एवं कृत्तिका नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।
वृहस्पतिवार को रोहिणी नक्षत्र से चार- चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी गुरुवार को रोहिणी नक्षत्र हो तो उत्पात योग, मृगशिरा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, आर्द्रा नक्षत्र हो तो काण योग एवं पुनर्वसु नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।
शुक्रवार को पुष्य नक्षत्र से चार-चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी शुक्रवार को पुष्य नक्षत्र हो तो उत्पात योग, आश्लेषा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, मघा नक्षत्र हो तो काण योग एवं पूर्वा फाल्गुनि नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते हैं।

शनिवार को उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्र से चार- चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी शनिवार को उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्र हो तो उत्पात योग, हस्त नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, चित्रा नक्षत्र हो तो काण योग एवं स्वाती नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।

अभ्यास प्रश्न – 2

1. शनिवार को स्वाती नक्षत्र हो तो .... योग बनता है।
2. रविवार के दिन नन्दा संज्ञक तिथि हो तो .... योग उत्पन्न होता है।
3. बुधवार को धनिष्ठा संज्ञक नक्षत्र हो तो .... योग बनता है।
4. शुक्रवार को सप्तमी तिथि का योग हो तो .... योग बनता है।
5. रविवार को चतुर्थी तिथि हो तो .... योग बनता है।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि पंचांग ज्योतिषशास्त्र का आधारभूत तत्व है। 'पंचांग' कालपुरुष के पाँच अंग – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण के विस्तृत विवरण को कहते है। संस्कृत में पंचांग को इस प्रकार परिभाषित करते हैं- पंचानां अंगानां समाहार: इति पंचांगम्। ज्योतिष शास्त्र के समस्त सैद्धान्तिक ग्रन्थों का अध्ययन हो जाने पर भी प्रायोगिक स्थल में जिसके बिना एक ज्योतिष शास्त्र का ज्ञाता भी अभाव का अनुभव करता है, उसका नाम है – पंचांग। आकाश मण्डल में सूर्य-चन्द्रमा के संचार को पंचांग की संज्ञा दी गयी है। प्रलयोपरान्त जब सूर्य का दर्शन होता है तब सृष्टि की रचना आरम्भ होती है। उसी समय से दिन, होरा, वार आदि की गणना होने लगती है। पंचांग द्वारा ही सामाजिक जीवन के सभी प्रकार के मांगलिक कार्यों हेतु शुद्ध तथा पवित्र समय का निर्धारण किया जाता है, जिसके फलस्वरूप प्रत्येक कार्य शुभ समय में पूर्ण एवं सम्पादित हो सकें।

पंचांग को हम आधुनिक भाषा में कहे तो वह एक ज्योतिषी का संगणक (कम्प्यूटर) है। जिस में बारह महीनों अर्थात् पूरे वर्ष का समस्त सूक्ष्म से विशाल तक का लेखा-जोखा अंकित रहता है। यही कारण है कि ज्योतिषशास्त्र के अध्येता को सर्वप्रथम पंचांग देखना सिखाया जाता है। पंचांग की परिभाषा में तो पाँच अंगों (तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण) की चर्चा है। किन्तु विदित हो कि पंचांग का क्षेत्र व्यापक है, विशाल है। इससे देखने वाले के सामने समस्त आकाशीय नक्षत्र मण्डल 'करगत फल आमलक समाना' हाथों में स्थित आँवले के फल जैसा सूक्ष्म रूप धारण कर दिखाई देने लगता है। पंचांग के प्रमुख अंगों के आधार पर ही शुभ समय निश्चित किया जाता है। इन पाँचों के

परिचय और इन्हीं पाँचों के आपस में मिलाने से अनेक शुभ अथवा अशुभ फल देने वाले समय का ज्ञान प्राप्त होता है। उनका ज्ञान रखना परमावश्यक है। इन पाँचों अंगों के संयोग से उत्पन्न होने वाली शुभ फलदायी काल को ही मुहूर्त्त कहा जाता है। मुहूर्त्तो में भी शुभ मुहूर्त्त का निर्धारण जातक का पिण्ड के आधार पर किया जाता है। यही संहिता शास्त्र के अन्तर्गत पंचांग कहलाता है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

पंचांग – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण रूपी पाँच अंगों के समाहार को पंचांग कहते है।

तिथि – सूर्य एवं चन्द्रमा के द्वादश अंशात्मक गत्यन्तर को तिथि कहते है।

वार – रव्यादित: शनिवार पर्यन्त सप्त वार होते हैं।

भगण – १२ राशियों का एक भगण होता है।

नक्षत्र – न क्षरतीति नक्षत्रम्। अश्विनी से रेवती पर्यन्त २७ नक्षत्र होते हैं।

योग – सूर्य एवं चन्द्र के योग से योगों की उत्पत्ति होती है। आनन्दादि एवं विष्कुम्भादि दो प्रकार के योग होते हैं।

करण – एक तिथि में दो करण होते हैं।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 का उत्तर

1. घ
2. क
3. क
4. ख
5. क
6. ग
7. ख
8. ग

अभ्यास प्रश्न -2 का उत्तर

1. सिद्ध
2. अधम
3. दग्ध
4. क्रकच
5. विष

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय ज्योतिष – श्री शंकरबालकृष्णदीक्षित

2. आधुनिक पंचांग दर्शन – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

3. संवत्सरावली – टीका – पण्डित हीरालाल मिश्र:

4. शास्त्रशुद्ध दृष्टि से सूर्यसिद्धान्त की समीक्षा, कार्य परियोजना – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र

5. पंचांग विज्ञानम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. भारतीय ज्योतिष - डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री

2. पंचांग विज्ञानम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

3. पंचांग समिति का प्रतिवेदन – पंडित दीनानाथ शास्त्री चुलैट

4. वैजयन्ती पंचांग गणितम् – डॉ0 भास्कर शर्मा

5. शास्त्रशुद्ध दृष्टि से सूर्यसिद्धान्त की समीक्षा, कार्य परियोजना – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पंचांग का परिचय देते हुए उनके अंगों का वर्णन कीजिये।

2. तिथि से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।

3. वार एवं नक्षत्रों का विस्तृत उल्लेख कीजिये।

4. करण को परिभाषित करते हुए उसका साधन कीजिये।

5. पंचांग के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालें।

इकाई - 4 दृक्सिद्ध पंचांग का महत्व

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – दृक्सिद्ध पंचांग का महत्व। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने पंचांग के स्वरूप, संक्षिप्त इतिहास व परम्परा, पंचांग के अंग एवं सिद्धान्तों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में दृक्सिद्ध पंचांग के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

दृक्सिद्ध का सामान्य अर्थ है – चाक्षुषदृष्ट्या एवं वेधोपलब्ध जब समान हो तभी वह दृक्सिद्ध होता है। पंचांगों में इस स्वरूप का अधिक महत्व बतलाया गया है।

आइए हम उन पंचांग के दृक्सिद्ध स्वरूप के बारे में विस्तृत अध्ययन करते है तथा उसके विभिन्न आयामों को भी जानने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- दृक्सिद्ध पंचांग के बारे में जान लेंगे।
- दृक्सिद्ध पंचांग की परम्परा को समझ लेंगे।
- दृक्सिद्ध पंचांग के महत्व को समझा सकेंगे।
- दृक्सिद्ध पंचांग के आनयन को व्यक्त कर सकेंगे।
- पंचाग निर्माण की परम्परा में दृक्सिद्ध के योगदान को बता सकेंगे।

4.3 दृक्सिद्ध पंचांग का परिचय

सम्प्रति भारतवर्ष में पंचांग निर्माण मुख्यत: दो विधियों द्वारा किया जा रहा है- उनमें एक दृश्य विधान है, तो दूसरा अदृश्य विधान। दृक्सिद्ध पंचांग का सम्बन्ध दृश्य विधान से है। आज कतिपय आचार्य अपनी पारम्परिक पद्धति (सारिणी द्वारा) के अनुसार ही पंचांग का निर्माण करते हैं तथा कुछ विद्वान आधुनिकतम विधियों के अनुसार साधित ग्रहों के आधार पर पंचांग बनाना चाहते हैं। आधुनिक पद्धति को 'दृश्य गणित' कहते हैं तथा इस पद्धति से निर्मित पंचांग को 'दृश्य पंचांग' कहते हैं। जितने भी दृश्य कार्य हैं उनका साधन दृश्य पद्धति से ही होना चाहिए तभी गणितागत एवं वेधोपलब्ध परिणामों में साम्य हो सकेगा अन्यथा नहीं।

दृक्सिद्ध क्या है? इसे समझने के लिए सर्वप्रथम गणितागत ग्रहों एवं वेध द्वारा साधित ग्रहों को जानना होगा। गणितागत ग्रह से तात्पर्य अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह में मन्दफल, शीघ्रफलादि स्पष्ट

संस्कारजन्य स्पष्टग्रह से है, जिसे **'दृक्तुल्य'** भी कहा जाता है। तथा वेध द्वारा साधित ग्रह से तात्पर्य वेधयन्त्र द्वारा साधित ग्रह से हैं।

यदा गणितागत ग्रह वेधयन्त्र द्वारा साधित ग्रह के साम्य होता है, तो उसे **दृक्सिद्ध** कहते हैं। दृग्गणितैक्य का स्वरूप प्रासांगिक है। नेत्रों द्वारा आकाशस्थ ग्रहों को वेधकर गणितीय विधान से एकरूपता देने की पद्धति को 'दृग्गणित' कहते है। इसका महत्व प्राचीनकाल से ही सम्प्रत्यावत् विद्यमान है। पौरूष सिद्धान्त के आविष्कारक आचार्य आर्यभट्ट से लेकर विद्यावाचस्पति मुरलीधर ठाकुर पर्यन्त सभी आचार्यों ने दृग्गणित सिद्धान्त के महत्व को स्वीकृत् किया है। वेध द्वारा सिद्ध पृष्ठीय सायन और पृष्ठीय वेधोपलब्धग्रह से गर्भीयसाधन करने की पद्धति का सूक्ष्म विवेचन ही दृक्सिद्ध का वास्तविक पक्ष होता है। गर्भीय ग्रह निरयन होता है। भारतीय पद्धति मूलत: इसी को ग्रहण करता है।

आचार्य भास्कराचार्य जी ने अपने ग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि के स्पष्टाधिकार में स्पष्टग्रहों के दृग्गणित सिद्धान्त के महत्व को इस प्रकार निरूपित किया है –

यात्राविवाहोत्सवजातकादौ खेटै: स्फुटैरेव फलस्फुटत्वम्।
स्यात्प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फटक्रिया दृग्गणितैक्य कृद्या।।

प्रस्तुत श्लोक में भी दृग्गणित के महत्व को स्वीकार किया गया है। यात्रा, विवाह विभिन्न उत्सवों एवं जातक शास्त्र में स्पष्ट ग्रह के द्वारा ही प्रभाव का स्फुटत्व का सम्बन्ध माना है। दृग्गणित सिद्ध गर्भीय क्रान्तिवृत्तीय स्थानाभिप्रायिकग्रह स्पष्टाधिकारान्त गणित से आता है। त्रिप्रश्नादि उदयास्ताधिकारान्त विभिन्न पृष्ठीय संस्कारों से ये स्थानाभिप्रायिक ग्रह दृश्य होते हैं। अत: स्थानाभिप्रायिक गणित से लाये ग्रह एक प्रकार का दृग्गणित है। इससे ग्रह बिम्ब का दर्शन नहीं होता। यदि गणित के द्वारा लाये ग्रह में उदयास्तान्त समस्त संस्कार किये जाये, तभी बिम्बीय ग्रह दृश्य होता है। यदि दृश्य नहीं हो सके तथा जितनें अन्तर से दृश्य हो, उतना कालान्तर जन्य अन्तर समझना चाहिए। **अत: इस प्रकार यदि ग्रह समान हो तो 'दृक्सिद्ध' कहलाता है, अन्यथा नहीं।**

विदित हो कि सर्वत्र दृग्गणित के अनुसार ग्रहों का स्पष्टीकरण का विधान स्पष्टाधिकार में निरूपित किया गया है, परन्तु स्पष्टाधिकार में साधित स्पष्ट ग्रह का जो साधन किया गया है, वह दृग्ग्रह नहीं होता।

सायन पृष्ठीय और सायन गर्भीय दो प्रकार सायन सम्बन्ध भी गोल में निहित है। सायन पृष्ठीय के ही वेध गोलीय का महत्व है न कि अन्यों का। नक्षत्रों को भू सापेक्ष अचलत्व होने से हजारों वर्षों में भी नक्षत्रों का चलत्व भाव नहीं होता। उनकी अपनी गति से ही नक्षत्र पुंज की आकृति लाखों वर्षों में

किंचित् परिवर्तित होते हैं। फलस्वरूप में नक्षत्रों के कदम्बाभिमुख भोगों का अन्तर दीर्घकाल में होने से, उनसे उत्पन्न प्रभाव भी परिवर्तित होते है। इसलिए निरयण नक्षत्र स्वरूप का वर्णन है। यहाँ पर सौर गोल के तथा गोलीय क्षेत्रों के साम्पातिक होने से सौरमण्डल को सायन के रूप में माना जाता है। वहाँ भोग की दृष्टि से निरयन पृष्ठीय तथा निरयन गर्भीय, ये दोनों पक्ष नक्षत्रों से सम्बन्धित होने से निरयन सम्बद्ध कहा गया है। उन दोनों का संयुक्त समन्वित स्वरूप भारतीय पद्धति से सम्भव है, जहाँ स्थानाभिप्रायिक, बिम्बाभिप्रायिक ग्रह का निरयण तथा गर्भीय एवं पृष्ठीय भेद के साथ सायन रूप भी बनते हैं।

कालान्तर से ही ग्रहचार में भी महद् अन्तर देखा जाता है। अपनें निर्माण काल में सभी पद्धति सूक्ष्म होती है। विभिन्न परिवर्तन कालान्तर के द्वारा होता है। कक्षावृद्धि, कक्षाह्रास, फल की वृद्धि तथा ह्रास और ग्रहकक्षा का मार्गान्तर, कक्षा का संकुचन और प्रसारण, गुरूत्वाकर्षण और विकर्षण निष्पत्ति से प्रत्येक क्षण होने वाले परिवर्तन, ग्रह की दूरी तथा समीपता में परिवर्तन, कोणान्तर निष्पत्ति में परिवर्तन, शीघ्रोच्च, मन्दोच्च पात आदि का स्थान परिवर्तन, आकर्षण विकर्षण आदि के निष्पत्ति में अन्तर आना, भूपृष्ठीय परिणाम में क्षितिजान्तर और स्थानान्तरण होने से और दृश्यान्तर एवं प्रभावान्तर आदि, ये सभी तथ्य विचारणीय विषय है। इन्हीं कारणों से कालान्तर में ग्रहगति में और कक्षाक्रम तथा फलों में अन्तर देखा जाता है। इनमें कुछ सिद्ध है तथा कुछ साध्य है। प्रत्येक के धन-ऋण चक्र में परमाल्प और परमाधिक्य के मध्य में ह्रास-वृद्धि का यदि ज्ञान हो जाए तो कालान्तर में उत्पन्न अन्तर का उपपत्ति द्वारा निदान कर सकते है। विभिन्न कालिक ग्रन्थों में पठित अंकों में भी अधिक अन्तर उपर्युक्त कारणों से देखा जाता है। इन्हें सर्वसम्मति के द्वारा कैसे निदान हो एतदर्थ गणित की सूक्ष्मता के लिए निरन्तर वेध प्रक्रिया की सूक्ष्मता होने से कालान्तर जन्य अन्तर जानना सम्भव है।

प्राचीन पठितांकों में अन्तर का कारण कालान्तर जन्य अन्तर निरन्तर वेधजन्य परीक्षण से गम्य है। प्राचीन पंचसिद्धान्तिका से आरम्भ कर आर्यभट्ट से पूर्वक्रम से पराशर तक पठितांकों को स्वीकार कर प्रथमत: गोलीयगणित तथा वेध के आश्रय से आर्यभट्टीय सिद्धान्त प्रथम पौरूष सिद्धान्त के रूप में प्राप्त है। प्राचीन अष्टादश प्रवर्तकों के मूल सिद्धान्त ग्रन्थ के बदलें में इस समय विभिन्न सिद्ध वचन प्राप्त होते है। श्री ब्रह्मगुप्त के द्वारा रचित ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त ब्राह्म पक्ष का उदाहरण है।

श्रीमान् भास्कराचार्य जी के द्वारा रचित सिद्धान्तशिरोमणि में गोलीय युक्तियों का सम्यक् रूप से विस्तार किया गया है। उसी प्रकार से केशव,गणेश,मथुरानाथ, कमलाकर, जयसिंह, नीलाम्बर, बापूदेव, सुधाकर, गेनालाल चौधरी, केतकर, सदाशिव आप्टे, अर्कसोमयाजि, दीक्षित, लाहिरी तथा

मुरलीधर ठाकुर आदि के कार्य स्तुत्य हैं।

आकर्षण विकर्षण ताप, शीत, स्वदीप्त, परदीप्त, गोलीयपिण्डों के तथा उनके अन्तर्गत पंचभुतात्मक पिण्डों के तीन प्रकार से विरल, द्रव्य, दृढ़स्वरूपों की पाँच अवस्थाएँ एवं 25 तत्वों के उपर इस समय भी अन्वेषण एवं प्रयोग गतिशील हैं। ये सभी प्रयोग गोलाश्रित और गणित मूल के अन्तर्गत है। ये सभी अपने-अपने कालिक प्रायुक्तिकी तथा शिल्पजन्य विकास और सामर्थ्य पर आधारित माने जाते हैं। वैदिक वैज्ञानिक परम्परा का द्वितीय पक्ष है व्यक्त और अव्यक्त समन्वित क्रम का गोलीय दृष्टि से दिग्देशकाल एवं पात्र या पिण्ड की दृष्टि से यथार्थ का बोध जरूरी है। आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक त्रिविधवर्गीकरण के प्राचीन तथ्यों में आज आधिभौतिक विकास का पांचभौतिक द्वार उद्धाटित है। अत: दीर्घकालिक वेध एवं पूर्वपठितांकों के रक्षण से निकट भविष्य में कालान्तर गति निर्धारित करना है, तो निरन्तर वेध तथा गणितीय सत्यापन से सम्भव हो सकेगा। विदित हो कि दृग्गणितैक्य पर आधारित अन्तिम सिद्धान्त 'सिद्धान्तदर्पण' है, जो सामन्तचन्द्रशेखर की रचना है।

प्राचीन आचार्यों ने कालान्तर जन्य संस्कार का बीज संज्ञा नाम दिया है। आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, भास्कर, केशव, गणेश, मथुरानाथ, जयसिंह, सुधाकर, सामन्तचन्द्रशेखर आदि आचार्यों ने स्व-स्व कालिक अन्तर बीजरूप के द्वारा पूर्वपठित अंक में संशोधित कर स्वकालिक अन्तर तथा मान प्रमाण दिये हैं, परन्तु मध्यकालिक आचार्यों ने बीजविधान ग्रहण आदि में दृष्टप्रमाण सिद्धि के लिए तथा अदृष्ट फल सिद्ध के लिए निर्बीज विधान का निरूपण किया है। जैसे – कमलाकर ने कहा कि –

अदृष्टफल सिद्ध्यर्थं यथार्कादृणितं कुरू।
गणितं यदि दृष्ट्यर्थं तदृष्टयुद्भवत: सदा।।
सूर्यसिद्धान्तमतोद्बाऽर्कात्साध्यासदा तावधिकौ क्षयाख्यौ।
मासौ ग्रहक्षैर्गणितं तथान्यत्साध्यं सदा यद्यपि तद् ग्रहाद्यम्।।
स्थूलं सदा ब्राह्ममतं निरूक्तमादित्यसिद्धान्तमतं च सूक्ष्मम्।
भाद्यादिके सूक्ष्मतरादसूक्ष्मं सूक्ष्मं मतं स्थूलत एव सिद्धम्।।
अतोऽनिशं संक्रमणे शुभाविना स्थितौ सदा सूक्ष्मविधानसाधने।
सौरमतं शस्तमथान्य निर्णये स्थूलं च मन्ये ग्रहसंक्रमेष्वपि।।

इन श्लोकों में कमलाकरभट्ट ने सूर्यसिद्धान्त से ही अदृष्ट फल साधन के लिए गणित विधान को स्वीकार करना कहा है। ग्रह नक्षत्रों के दर्शन के लिए स्वदृश्य क्षितिजाभिप्रायिक दृग्गणितैक्य के लिए सबीज विधान का समर्थन किया है। सूर्यसिद्धान्त मत के द्वारा आनित यथास्थित सूर्य चन्द्र से अधिमास एवं क्षयमास का साधन करना चाहिए। ब्राह्ममत की अपेक्षा सूर्यसिद्धान्त का सूक्ष्मत्व भी

प्रदर्शित किया गया है। इसी से चान्द्र सौर मासों का अन्तर अधिमासादि का निश्चय धार्मिक कार्य विभिन्न अनुष्ठान आदि अदृष्टफल समस्त साधन निर्बीज साधित तिथ्यादियों में करना चाहिए। ग्रह का लोप दर्शन होन पर ताराग्रहों के योग होने पर, नत और उन्नत नतांश आदि, दिगंश क्रान्ति, शर आदि में सभी स्थानों पर सायन पृष्ठीय सभी ग्रहणादि दृश्य पदार्थ जितना अन्तरित होता है, उसके लिए उपपत्ति के द्वारा बीज संस्कार देकर दृग्गणितैक्य साधक सूक्ष्म गत्यादि के द्वारा सूक्ष्म गणित साधन से दृग्गणितैक्य पदार्थों के साध कर करना चाहिए। इसी प्रकार ग्रह का उदयास्त तथा ग्रहण आदि का साधन करने योग्य है। अत: दृष्टि सिद्धि के लिए दृग्गणित विधान का प्रासंगिकरण सर्वकालिक सिद्ध है। इसलिए खगोलीय सर्वेक्षण का ग्रहगोलीय अन्वेषण क्रम का मनुष्यों के द्वारा लघुस्तरीय, वृहद्स्तरीय और मुख्य खगोलीय परिवेक्षण केन्द्रों का महत्व भी सिद्ध होता है। भास्कर आदि आचार्यों ने सभी जगह इसका वर्णन किया है।

अभ्यास प्रश्न -1

1. सम्प्रति भारतवर्ष में मुख्यत: पंचांग निर्माण के कितने विधान है?
   क. दो ख. चार ग. छ: घ. आठ
2. यदा गणितागत ग्रह वेधयन्त्र द्वारा साधित ग्रह के साम्य होता है, तो उसे क्या कहते हैं?
   क. दृक्तुल्य ख. दृक्सिद्ध ग. वेधोपलब्ध ग्रह घ. स्पष्ट ग्रह
3. दृग्गणितैक्य पर आधारित 'सिद्धान्तदर्पण' किसकी रचना है?
   क. आर्यभट्ट ख. कमलाकर ग. सामन्तचन्द्रशेखर घ. कोई नहीं
4. आचार्य भास्कराचार्य जी ने 'दृग्गणितैक्य' की बात किस ग्रन्थ में की है?
   क. लीलावती ख. बीजगणित ग. सिद्धान्तशिरोमणि घ. सूर्यसिद्धान्त
5. निम्न में दृक्सिद्ध पंचांग का सम्बन्ध किस विधान से है?
   क. दृश्य विधान ख. अदृश्य विधान ग. ग्रहण विधान घ. कालविधान
6. 'नभ:' का शाब्दिक अर्थ क्या है?
   क. आकाश ख. पृथ्वी ग. अग्नि घ.वायु
7. सारिणी पद्धति पर आधारित निर्मित पंचांग की विधान संज्ञा है?
   क. दृश्य ख. अदृश्य ग. गणितीय घ. काल
8. गोल में खमध्य से ग्रह पर्यन्त क्या होता है।
   क. नतांश ख. उन्नतांश ग. द्युज्याचापांश घ. क्षितिज

4.3.1 पंचांग के दृश्य तथा अदृश्य पक्ष -

पंचांग में दिखाई देने वाले पाँच अंगों के अतिरिक्त भी अनेक भेद होते हैं जो पंचांग में होते हैं, परन्तु दिखाई नहीं देते हैं। श्रौत तथा स्मार्त क्रियायें काल के अधीन होती है। काल के ज्ञान के बिना इनकी क्रिया सम्भव नहीं है। श्रुति (वेद) द्वारा जो कार्य होते हैं वे श्रौतकार्य कहलाते हैं। इनमें यज्ञ कार्य प्रमुख होता है। यज्ञ भी काल पर ही आधारित है। यथा दर्शपूर्णमासी यज्ञ। इसमें दो यज्ञ सम्मिलित है। इसमें पूर्णिमा तथा दर्श को यज्ञ सम्बन्धी वस्तुयें एकत्रित करके अगले दिन प्रतिपदा को यज्ञ आरम्भ करना चाहिये। सूर्य तथा चन्द्रमा जब एक स्थान पर होते हैं तो वह दर्श काल (अमावस्या) होता है, जो काल विशेष है। चन्द्रमा जब अपनी कलाओं को पूर्ण कर लेता है तब पूर्णिमा होती है। यह भी काल विशेष ही हैं यह दोनों स्थितियाँ कपोल कल्पित नहीं बल्कि समय पर आधारित तथा प्रत्यक्ष अनुभव करने योग्य है। इसलिए काल का साधन करना आवश्यक है।

यह काल साधन धार्मिक कार्यों के लिए भी आवश्यक है। सुसंस्कारी पत्नी धर्म, अर्थ, काम नामक तीनों तत्वों में सहायता करती है। विवाह लग्न के द्वारा ही उसका चरित्र पवित्र तथा दृढ़ होता है। इस विवाह लग्न के लिए भी शुभ समय की आवश्यकता होती है जो काल का ही पूरक है। इस तरह की सभी धार्मिक क्रियायें काल के आधार पर ही की जाती है। जिस समय पर कार्य किया जायेगा, वो कार्य उस काल के अनुसार ही फलिभूत होगा अर्थात् वह उस किये गये समय के अनुरूप ही फल देगा। ज्योतिष शास्त्र को काल विधान शास्त्र कहते हैं। नारद जी के वचनानुसार – ''विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्तं कर्मं न सिद्ध्यति।''

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि समस्त कार्यों के करने वाले काल का साधन कैसे किया जाये? काल का न तो आरम्भ होता है और ना ही अन्त होता है। इसकी गणना भी नहीं की जा सकती। काल का अनुमान ही लगाया जा सकता है। काल दो प्रकार का बताया गया है- प्रथम लोकान्त कृत काल, यह लोकान्त का निर्देशन करता है। ग्रह आदि और अन्त से परे है। इसी काल द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति व अन्त होता है। दूसरा कलनात्मक काल, इसे अनुमानात्मक काल भी कह सकते हैं। इस काल का साधन ग्रह नक्षत्रों की सहायता से होता है। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने सटीक वैज्ञानिक पद्धति निर्मित की है। छ: ग्रहों के कोणीयगति साधन करने की पद्धति। सभी ग्रह अपनी-अपनी कक्षाओं में भ्रमण करते हुए भूकेन्द्र में जो कोण निर्मित करते हैं उसे ही कोणीय गति कहते हैं। कोणीय गति का साधन इसलिए करते है क्योंकि ग्रहों की दूरियों को नगण्य माना गया है। इस तरह से ही साधित कोणीय गति के द्वारा काल की गणना की जाती है। यह काल व्रतपर्वादि कार्य में सहायता प्रदान करता है।

गणित कार्य में सूक्ष्मता के साथ सटीकता आती है। प्राचीन ऋषियों ने श्रुति, स्मृति, पुराण तथा प्राचीन ग्रन्थों को आधार बनाकर धर्मसिन्धु, निर्णयसिन्धु, पुरूषार्थ चिन्तामणि, हेमाद्रि, वीर मित्रोदय आदि ग्रन्थ रचे। प्रत्येक समय ग्रहों के गतिमान होने के कारण ग्रह नभ मण्डल में सदैव दिखाई नहीं देते। कभी दिखते हैं तो कभी अदृश्य हो जाते हैं। इसलिए इन ग्रन्थों के आधार पर स्पष्ट गतियों के द्वारा ग्रहस्पष्ट किया जाता है। ग्रह यदि राश्यादि चक्र में न दिखाई दे तो गणित क्रिया के अन्य संस्कारों द्वारा उसकी उपस्थिति देखी जाती है। इस गणित क्रिया को दृग्गणित की संज्ञा दी गयी है। आधुनिक पंचांग निर्माता इस गणित का उपयोग नहीं करते जिसके कारण पंचांग में अन्तर आ जाता है।

पंचांग साधन के द्वारा ही ग्रह का प्रत्यक्षीकरण होता है। यह फलादेश के लिए भी अतिआवश्यक है। क्योंकि जब पंचांग शुद्ध तथा सटीक होगा तभी फलदेश सही निकल पायेगा। अन्यथा फलोदश भी अशुद्ध हो जायेगा। पंचांग साधन के लिए सावन दिन, वार साधन, तिथि साधन, नक्षत्र साधन, योग साधन, करण साधन तथा चन्द्र साधन की आवश्यकता होती है।

भारतीय पद्धति से दृग्गणितैक्य –

हमारे सिद्धान्त ग्रन्थों में दृग्गणित की एकरूपता प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण है। यथा –

यस्मिन देशे यत्रकाले येन दृग्गणितैक्यकम्।
दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात् तिथ्यादि निर्णयम्।।

जिन व्रत, पर्व, उत्सवादि आदि में ऋतुओं के साथ सम्बन्ध धर्मशास्त्रों में निर्दिष्ट है वहाँ, यदि निरयण मान ग्रहण करते है, तब वसन्तोत्सव शीतकाल में या वर्षाकाल में होगा। प्रत्यक्ष आकाशीय सूर्य स्थिति को दिन-रात्रि का मान प्राय: 21 मार्च से आसन्न होने पर और 22 सितम्बर के आसन्न होने पर दिन-रात्रि समान होता है। किन्तु निरयण मान से इस समय प्राय: 23 या 24 दिनों का अन्तर निरयण मेष संक्रमण और तुला संक्रमण स्वीकार किया जाता है। अयनांश संस्कार से प्रत्यक्ष रूप से दृक् प्रतीति होती है।

ग्रहों के मार्ग स्पन्दशील तथा दोलायमान होने से स्थिर नहीं है। क्रान्तिवृत्त से ये जितना विक्षिप्त होते हैं, वे उनके परम विक्षेप तथा क्रान्तिवृत्त सापेक्ष ये जिस बिन्दु पर राशिचक्र का दक्षिण से उत्तर अतिक्रमण कहते हैं, वह प्रथमपात तथा जिस बिन्दु पर उत्तर से दक्षिण अतिक्रमण करते हैं वह द्वितीय पात है। क्रान्तिवृत्त से ग्रहविक्षेप दक्षिणोत्तर का परमत्व ध्रुवीय मापन तथा कदम्बप्रोतीय मापन से द्विविध होता है। उच्च, मन्दोच्च एवं पात की सापेक्षता से गणित एवं वेध से सभी तत्व ज्ञात करने के सैद्धान्तिक विधान तथा प्रयोग प्रकार भारतीय ज्योतिष में उपलब्ध हैं। यह कथन

अतिशयोक्ति नहीं है कि, सहस्रश: ग्रन्थ समीक्षा की प्रत्याशा में आज भी पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाते हुए मुद्रणबाध्य हो रहे है। उनके त्रिविध संरक्षण क्षीणतम अवस्था को प्राप्त हो रहे है। गणितागत ग्रह जब वेध से साम्य रखते है, तो उस पद्धति को दृग्गणितैक्य विधायक पद्धति कहते हैं। गणितोपलब्ध क्रान्तिवृत्तीय स्थानाभिप्रायिक ग्रहों में दृक्कर्मादि संस्कार करने के बाद ही ग्रहर्क्ष दृश्य होते हैं। इसके बाद भी कालान्तर जन्य अन्तर के कारण यदि बिम्बोदय गणितागत काल से जितना पूर्व या बाद में होता है, उसके हिसाब से पद्धति की तात्कालिक स्थूलता का बोध होता है। अत: सद्य: द्विविध गोलीय वेध एवं गणितीय सत्यापन का दृढ़ सम्बन्ध सिद्ध है। इस क्रम के टूटने से ही भ्रम की प्रवृत्ति हुई है। अत: इसके निराकरणार्थ राष्ट्रीयवेधशाला एवं क्षेत्रीयवेधशाला निर्माण कर निरन्तर वेध की महती आवश्यकता है।

वास्तविक बिम्बोदय तथा आभाषिक बिम्बोदय का अन्तर काल भी आज ज्ञात है। ज्योतिषसिद्धान्त में भी इसके संकेत मिलते हैं। न्यूनाधिक गति से चलायमान ग्रह वर्तमान में दृग्गणितैक्य से जितना भी अन्तरित उपलब्ध हो, उसे जानकर अन्तर के कारण एवं अनियत अन्तर एवं कालान्तरगति का निर्धारण कर ले तो दीर्घकाल तक के लिए समस्या समाप्त हो जायेगी।

कोई भी परिवर्तन गति दीर्घकाल सापेक्ष एक रूपक नहीं रहती। अत: सदा बीज संस्कार एवं बीजान्तर अधिक होने पर वर्तमान उपलब्धि एवं मानक के आधार पर नये-नये करण ग्रन्थ बनते रहे हैं। चूँकि नासा, यूरोपियन अल्मनाक तथा भारतीय खगोलपरिषद भी अनियत परिवर्तन की वर्तमान गति से मापने के मानक की बाध्यता को अभी नहीं तोड़ सके हैं। फलत: शुद्ध फलचक्र के चक्कर में अचलवत् निरयण नक्षत्रचक्र से सायन सौरचक्र का सम्बन्ध खण्डित कर रहे हैं।

दृश्य पंचांग का पक्ष भी प्राचीन –

''पृष्ठस्थाने ग्रहं विध्वा कथं कार्य: कुकेन्द्रिक:।'' के समाधान में सभी सिद्धान्त वेध सिद्ध ग्रह को स्थानाभिप्रायिक भूकेन्द्रिक में बदलने की युक्ति देते हैं। सिद्धान्तशिरोमणि स्पष्टाधिकारान्त प्रभा टीका में पृष्ठीय ग्रह से गर्भीय ग्रह लाने की युक्ति मिलती है। उपपत्तीन्दुशेखर में म.म. दुर्गा प्रसाद द्विवेदी नें भी इस तथ्य की विधिवत् समीक्षा की है। भास्करादि आचार्यों ने तथा सूर्यसिद्धान्त में भी इस प्रकार की युक्ति मिलती है।

पंचांग समिति का प्रतिवेदन में भी पं. रामसुचित त्रिपाठी प्रभृति विद्वानों ने निर्बीज से तिथ्यादि साधन तथा सबीज से ग्रहणादि साधन का समर्थन किया। इस पक्ष का खण्डन पं. दीनानाथ शास्त्री चुलैट, प्रोफेसर शक्तिधर शर्मा (शास्त्रशुद्ध पंचांग मीमांसा में) स्वर्गीय शंकरबालकृष्ण दीक्षित तथा अनेक सूक्ष्मतावादी सूक्ष्म निरयण समर्थक लाहिरी प्रभृति करते हैं, लेकिन ये प्राचीन विधान इस

महाकाशविज्ञान के युग में समीक्षणीय है। क्योंकि पूर्व समीक्षा में अदृष्ट तथा दृष्ट का शास्त्रीय स्वरूप दर्शाया गया है। पूर्वकालिक पद्धति का स्थानाभिप्रायिक ग्रह ग्रहचारान्तर से निश्चित कालखण्ड के पश्चात् स्थानान्तरित होनें से दृक्कर्मादि संस्कार करने पर भी दृश्यता खोते हैं। वहाँ कालान्तर बीजदान से प्राप्त दृश्यत्व तो ठीक है, लेकिन अदृष्ट स्थिति को स्थूल छोड़ना किस दृष्टि से ठीक है। एतदर्थ परम्परागत प्रमाणों की समीक्षा से दृष्ट तथा अदृष्ट दोनों पक्ष सूक्ष्म मान-प्रमाण से गृहीत होनें के प्रमाण तथा संकेत निगमागम सम्मत होने से ग्राह्य है।

वैदिक काल में सुपर्णचिति पंचांग से प्रारम्भ कर सामन्त चन्द्रशेखर तथा जयसिंह तक के प्रमाण द्रष्टव्य तथा समीक्षणीय हैं। आकाशीय निरीक्षण से वैदिक ऋषि सुपर्णचिति पंचांग की गणना एवं दृग्गणितैक्य करते थे। 'प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शनमिति' वैदिकप्रमाण इसका यजुर्वेदीय संकेत है।

प्रभाकरसिद्धान्त भी पं. दीनानाथ शास्त्री चुलैट का दृश्य पंचांग साधक विधान है।

दृक्सिद्ध और दृक्तुल्य ये दो स्थितियाँ हैं। दृक्तुल्य ग्रह आकाश में दृश्य होते हैं। दृष्ट्या सिद्ध: दृक्सिद्ध: की व्युत्पत्ति से दृष्टि से सिद्ध ग्रह भी पूर्वार्ध का ही अर्थात् दृक्तुल्य का द्योतक है, लेकिन वस्तुत: दृष्ट्यासिद्ध: का तात्पर्यार्थ क्रान्तिवृत्तीय कदम्बसूत्रीय स्थानाभिप्रायिक सूक्ष्म निरयण का द्योतक हो जाता है। ये ग्रह ही पंचांग तथा धर्मानुष्ठान के योग्य हैं। दृक्तुल्य ग्रह से ग्रहणादि तो ठीक-ठीक दृश्य होते हैं, लेकिन उन दोनों का अन्तर भी भास्करादि के प्रमाण से सिद्ध है। पं. चुलैट, एन.सी. लाहिरी, केतकर, प्रो. शक्तिधर शर्मा तथा अन्य आचार्यों ने दृक्तुल्य ग्रहों को दृक्सिद्ध करने की चेष्टा की, लेकिन उनके प्रकार इन्हें कितना दृक्सिद्ध बना पाया, यह समीक्षा का विषय है।

4.3.2 दृक्प्रत्ययद् नवीन पंचांग –

सम्प्रति हमारे देश में प्रचलित सभी निरयन पंचांगों से दृक्प्रतीति नहीं होती अर्थात् उनमें लिखी परिस्थिति आकाश में नेत्रों से प्रत्यक्ष दिखायी नहीं देती, अत: कुछ लोगों ने नवीन दृक्प्रत्ययद् सूक्ष्म पंचांग बनाना आरम्भ किया है। अब यहाँ उन्हीं का वर्णन करेंगे।

१. केरोपन्ती अथवा पटवर्द्धनी पंचांग – यह पंचांग शक १७८७ से छपता है, इसमें अक्षांश और रेखांश बम्बई के हैं। केरो लक्ष्मण छत्रे इसके कर्ता और आबा साहब पटवर्धन प्रवर्तक थे। आरम्भ में कुछ दिनों तक छत्रे जी ने इसके गणित स्वयं किया होगा। बाद में उनकी देखरेख में वसई के आबा जोशी मोघे करते थे। उनका स्वर्गवास हो जाने के बाद उनके वंशज करते हैं। केरोपन्त के बाद उसका निरीक्षण उनके पुत्र नीलकंठ विनायक छत्रे करते हैं। सुनते हैं, केरोपन्त के बाद उसका पुत्र और कई शिष्य भी कुछ गणित करते हैं। रत्नागिरि के जगन्मित्र प्रेस के मालिक जर्नादन हरि आठले की इस पंचांग पर बड़ी श्रद्धा है। शक १७९१ से १८११ पर्यन्त वे इसे अपने व्यय से छापते थे। पहले इसका

नाम 'नवीन पंचांग' था। इसके गणित का खर्च आबा साहब पटवर्धन देते थे। उन्हें यह विषय बड़ा प्रिय था। उन्होंने तीन चार सहस्र रूपया व्यय करके कुछ यन्त्र भी मोल लिये थे और वे स्वयं वेध करते थे। यद्यपि यह सत्य है कि इस पद्धति के कल्पक केरोपन्त हैं, परन्तु आबासाहब प्रोत्साहन न देते तो इसका उदय न हुआ होता। पटवर्धन की स्मृति में शक १७९९ से इसका नाम नवीन या पटवर्धनीय पंचांग रखा गया। शक १८१२ से पूना के चित्रशाला प्रेस के मालिक वासुदेव गणेश जोशी इसे अपने व्यय से छपाते थे। पंचांग का विक्रय कम होने के कारण उन्हें इसमें घाटा हुआ करता है। आठले और जोशी ने यदि छापना स्वीकार न किया होता तो यह पंचांग कभी का लुप्त हो चुका होता, परन्तु किसी ने उनका प्रत्यक्ष आभार भी नहीं माना। इतना ही नहीं, वे अपने व्यय से पंचांग छपाते हैं, यह बात किसी ने प्रकाशित तक नहीं की।

२. **दृग्गणित पंचांग** – मद्रासनिवासी रघुनाथाचार्य जी ने इंग्लिश नाटिकल आल्मनाक द्वारा शक १७९१ से यह पंचांग बनाना आरम्भ किया। यह द्रविड़ और तैलंगी दोनों लिपियों में छपता है। इससे ज्ञात होता है कि उन प्रान्तों में इसका विशेष प्रचार है। इसे शिरिय (लघु) कहते हैं। प्रतीत होता है रघुनाथाचार्य अपने समय में पेरिय (वृहत्) दृग्गणित पंचांग बनाते थे। रघुनाथाचार्य जी का उपनाम चिन्तामणि है। उनके पुत्र वेंकटाचार्य का बनाया हुआ शक १८१८ (वर्तमान कलि ४९९८) का द्रविड़ लिपि में छपा हुआ शिरिय सौर पंचांग हमारे पास है। उसमें शक १८१९ की मेषसंक्रान्ति रविवार (११ अप्रैल १८९७ ई0) को ५२ घटी ४३ पल पर है। सूर्यसिद्धान्तानुसार स्पष्ट मेषसंक्रान्ति लगभग इसी समय आती है। बहुत थोड़ा अन्तर पड़ता है। इससे सिद्ध होता है कि इसमें सूर्यसिद्धान्तागत स्पष्टरवि और नाटिकल अल्मनाक द्वारा लाये हुए स्पष्ट सायन रवि के अन्तर तुल्य शक १८१९ के आरम्भ में २२/१५ अयनांश माना है। इसमें अक्षांश और रेखांश मद्रास के होंगे।

बापूदेव शास्त्री का पंचांग – बापूदेव शास्त्री को सायन गणना मान्य है। सन् १८६३ के लगभग सायन गणना की शास्त्रीयता के विषय में उन्होंने इंगलिश में एक निबन्ध लिखा था। वह छपा है। उससे ज्ञात होता है कि उनके मन में सायन पंचांग ही शास्त्रानुकूल है। यद्यपि उन्होंने काशीराज के आश्रय द्वारा शक १७९८ से निरयन पंचांग छपाना आरम्भ किया है तथापि निरयन पंचांग को मानने वाली जनता के केवल सन्तोष के लिए उन्होंने ऐसा किया है, क्योंकि पंचांग की प्रस्तावना में ऐसा लिखा है कि –

महाराजाधिराजद्विजराज श्री ५ मदीश्वरीप्रसादनारायणसिंहबहादुराख्येन श्रीकाशीनरेश .... आदिष्ट: पंचांगकरणे प्रवृत्तोऽहम्। भवति यद्यप्यत्र सायनगणनैव मुख्या तथाप्यस्मिन भारतवर्षे सर्वत्र निरयनगणनाया एव प्रचारात् सामान्यजन प्रमोदायेदं तिथिपत्रं निरयनगणनयैव व्यरचयम्।।

बापूदेव शास्त्री का पंचांग इंग्लिश नाटिकल अल्मनाक से बनता है। उसमें अक्षांश और रेखांश काशी

के हैं। उन्होंने लिखा है कि सूर्यसिद्धान्तादि ग्रन्थों द्वारा लाये हुए रवि और सूक्ष्म सायन रवि के अन्तर तुल्य इसमें अयनांश माना है। नाटिकल अल्मनाक के सायन रवि और अपने पंचांग के निरयन रवि की तुलना करते हुए इन्होंने शक १८०६ में अयनांश लगभग २२ अंश १ कला माना है। उस वर्ष सूर्यसिद्धान्तानुसार अमान्त चैत्र कृष्ण १ शुक्रवार को काशी के स्पष्ट सूर्योदय से ३० घटी २६ पल पर मेष संक्रान्ति आती है पर बापूदेव शास्त्री के पंचांग में उसी दिन ३१ घटी १२ पल अर्थात् सूर्यसिद्धान्त से वह ४६ पल आगे है। अन्य किसी भी सिद्धान्त से यह काल नहीं आता। इससे सिद्ध होता है कि उन्होंने अन्य किसी ग्रन्थ का नहीं बल्कि सूर्यसिद्धान्त का ही लिया है। उसमें ४६ विकला की अशुद्धि होगी। केरोपन्त से बापूदेवशास्त्री का वाद विवाद हुआ था, उस सम्बन्ध में उन्होंने पूना के ज्ञानप्रकाश पत्र के १४ जून सन् १८८० के अंक में एक लेख दिया था। उसमें लिखा था कि सूर्यसिद्धान्त का ही लेना चाहिए परन्तु मध्यम। उपर्युक्त सूर्यसिद्धान्तागत मेषसंक्रान्तिकाल में नाटिकल अल्मनाक द्वारा सायन रवि २२/०/३१ आता है, अत: अयनांश इतना ही मानना चाहिए, पर शास्त्री जी २२/१/० माना है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने पंचांग में मध्यम रवि का नहीं बल्कि स्पष्ट रवि का ही अन्तर स्वीकार किया है। बापूदेव शास्त्री के पश्चात् उनके शिष्यों ने पंचांग बनाने का काम जारी रखा है।

अन्य पंचांगों से बापूदेवशास्त्री के पंचांग में भिन्नता केवल इसी एक बात है कि वह नाटिकल अल्मनाक से बनाया जाता है, इस कारण उसकी ग्रहगतिस्थिति शुद्ध अर्थात् दृक्प्रत्ययद होती है। अयनांश में थोड़ा अन्तर है पर वह नहीं के बराबर है। सूर्यसिद्धान्तार्गत रवि और नाटिकल अल्मनाक के रवि के अन्तर तुल्य अयनांश मानने से वर्षमान सूर्यसिद्धान्तीय मानने सरीखा ही होता है।

इसके अतिरिक्त तंजौर प्रान्त के तिरूवादि स्थान निवासी सुन्देरेश्वर श्रौती और वेंकटेश्वर दीक्षित शक १७९८ से तमिल लिपि में एक सक्ष्म सौर पंचांग बनाते हैं। उसमें शक १८१५ के आरम्भ में अयनांश २२/१० अर्थात् लगभग रघुनाथाचार्य के पंचांग तुल्य ही मानना है। उस वर्ष मेषसंक्रान्ति भौमवार को ५१ घटी ३१ पल पर लगी है। प्रतीत होता है कि तिरूवादि में ज्योतिस्तन्त्रसभा नाम की कोई सभा स्थापित हुई थी। उसके अध्यक्ष चिदम्बरम् ऐयर ने सन् १८८३ई0 में (Hindu Zodiac) नामक एक छोटा सा ग्रन्थ लिखा है। उसमें उन्होंने लिखा है कि उपर्युक्त पंचांग कुंभकोणस्थ शंकराचार्य की आज्ञानुसार बनता है। राजपूताने के खेतड़ी नामक रियासत के राजा अजितसिंह की आज्ञा से रूड़मल्ल नामक ज्योतिषी का बनाया हुआ अजितप्रकाश नामक शक १८१८ का पंचांग भी नाटिकल अल्मनाक पर ही आधारित है। इसमें वर्ष के आरम्भ में अयनांश २२/११ है तथा इसमें

अक्षांश और रेखांश खेतड़ी के हैं। अक्षांश २८ और कालात्मक देशान्तर उज्जयिनी से पश्चिम ३ पल दिया है।

4.4 सायन पंचांग –

जिस दिन से दिनमान घटने या बढ़ने लगता है वस्तुत: उसी दिन से क्रमश: उत्तरायण और दक्षिणायन आरम्भ होता है और यह बात आकाश में भी प्रत्यक्ष दिखाई देने लगती है, पर ऐसा होते हुए भी हमारे देश में प्रचलित आजकल के पंचांगों में अयनप्रवृत्ति उस दिन नहीं लिखी रहती। हमारे पंचांगकार मकर और कर्क संक्रान्तियाँ लगभग २२ दिन बाद लिखते हैं। साधारण मनुष्य को भी शंका होगी कि वास्तविक परिस्थिति के विपरीत ऐसा क्यों किया जाता है। इस शंका की उत्पत्ति और उसके समाधानार्थ किये हुए संशोधन का फल आधुनिक सायन पंचांग है। इसके जन्म दाता हैं। लेले,

जनार्दन, बालाजी मोडक और शंकरबालकृष्णदीक्षित हैं।

सायन पंचांगकार सायनपंचांग जिस पद्धति से बनाते हैं वह यह है – सम्पात से आरम्भ कर क्रान्तिवृत्त के तुल्य २७ भाग करके उन्हें अश्विन्यादि नक्षत्र और तुल्य १२ भागों को मेषादि राशि कहा है, अर्थात् अश्विनी नक्षत्र और मेष राशि को सम्पात से आरम्भ किया है, वहाँ तारात्मक नक्षत्र चाहें जो हो। इसी प्रकार सायन राशियों में सूर्य के प्रवेश को संक्रान्ति कहा है और उसी के अनुसार चान्द्रमासों के नाम रखे हैं। जिस चान्द्रमास में सायन मेषसंक्रान्ति होती है अर्थात् वसन्तसम्पात में सूर्य जाता है, उसे चैत्र कहा है। इसी प्रकार वैशाखादिकों की भी व्यवस्था की है। इस पद्धति से चैत्र में सर्वदा वसन्त रहेगा, आर्द्रा नक्षत्र में वर्षा आरम्भ होगी और इसी प्रकार सब ऋतुएँ नियमित मासों में होंगी।

सायन और निरयन मानों के ग्राह्याग्राह्यत्व का विचार यहाँ तार्किक दृष्टि से करते हैं। जैसे दिन की गणना का प्राकृतिक साधन सूर्योदय और मासगणना का प्राकृतिक साधन चन्द्रमा का पूर्ण या अदृश्य होना है, उसी प्रकार वर्षगणना का स्वाभाविक साधन ऋतुओं की एक परिक्रमा है। ऋतुयें उत्पन्न न हुई होती तो वर्ष एक कालमान न बना होता, पर ऋतुओं की उत्पत्ति का कारण सूर्य है, अत: वर्ष सौर मानना चाहिए और चूँकि ऋतुएँ सायन रवि के अनुसार होती हैं, अत: वर्ष भी सायन सौरमान का मानना चाहिए। दूसरे यह है कि १२ चान्द्रमासों में ऋतुओं का एक पूर्ण पर्यय नहीं होता, इसलिए बीच में अधिमास डालना पड़ता है। यदि अधिमास का प्रक्षेपण न किया जाय तो जैसे मुसलमानों का मुहर्रम ३३ वर्षों में सब ऋतुओं में आता है, उसी प्रकार ३३ वर्षों में चैत्र में क्रमश: सब ऋतुयें आ जाया करेंगी। अत: सिद्ध है कि अधिमास मानने का केवल यही एक उद्देश्य है कि किसी भी मास में सर्वदा एक ही ऋतु रहे। चूँकि ऋतुयें सायन मान पर अवलम्बित हैं, अत: अधिकमास का अवलम्बन

करना तत्वत: सायन मान स्वीकार करने के समान ही है। जैसे अधिमास न मानने से ३३ वर्षों में प्रत्येक मास में सभी ऋतुयें क्रमश: घूम जाती हैं, उसी प्रकार नाक्षत्र सौरवर्ष मानने से लगभग २६००० वर्षों में एक ही मास में क्रमश: सब ऋतुयें आ जायेंगी, अर्थात् चैत्र में आज यदि वसन्त है तो सवा चार सहस्र वर्षों में ग्रीष्म, साढ़े आठ सहस्र वर्षों में वर्षा और १७ सहस्र वर्षों के पश्चात् हेमन्त ऋतु होने लगेगी। ३३ वर्षों में होने वाली ऋतुमास विपर्यय को दूर करने के लिए यदि हम अधिकमास मानते हैं, तो बहुत दिनों में ही क्यों न आये, परन्तु जिसका आना निश्चित है उस ऋतुमास विपर्यय को हटाने के लिए सायन सौरवर्ष स्वीकार करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

सायन वर्षमान नैसर्गिक है, अत: सृष्टि उत्पन्न होने के बाद जब से वर्ष शब्द का व्यवहार होने लगा है तभी से उसका प्रचार होना चाहिए और वस्तुत: वह तभी से प्रचलित है। प्राय: वेदकाल में उसी का प्रचार था। मधु, माधव इत्यादि संज्ञाओं का प्रचार होने के पूर्व अधिकमास का प्रक्षेपण कर ऋतुओं के पर्यय द्वारा वर्ष मानते रहे होंगे अर्थात् उस समय कुछ स्थूल सायन ही वर्ष प्रचलित रहा होगा। उसके बाद मध्वादि नामों का प्रचार हुआ। उस समय सायनवर्ष के मान में बहुत सूक्ष्मत्व आ गया था। उसके सैकड़ों वर्ष बाद चैत्रादि नाम प्रचलित हुए, तब तक सायन मान का ही प्रचार था शकपूर्व २००० वर्ष के लगभग चैत्रादि संज्ञायें प्रचलित हुई और निरयनमान की नींव पड़ी। वेदांग ज्योतिष में धनिष्ठारम्भ से वर्षारम्भ माना है। यह निरयन मान है। परन्तु वेदांगज्योतिष में उत्तरायणारम्भ से भी वर्षारम्भ माना है। सूर्य के पास के नक्षत्र दिखाई नहीं देते, इससे धनिष्ठा के आरम्भ में सूर्य के आने के काल को जानने की अपेक्षा उत्तरायणारम्भ काल जानना एक अज्ञ के लिए भी सुगम होता है। अत: वस्तुत: अयनारम्भ से ही वर्ष का आरम्भ मानते रहे होंगे।

अभ्यास प्रश्न – 2

1. गणितागत ग्रह जब वेध से साम्य रखते है, तो उस पद्धति को ....पद्धति कहते हैं।
2. पृष्ठस्थाने ग्रहं विध्वा कथं कार्य: ....।
3. मकर संक्रान्ति ....होता है।
4. केरोपन्ती तथा पटवर्द्धनी पंचांग .... है।
5. सूर्य का मकर राशि में प्रवेश करने से .... आरम्भ होता है।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि सम्प्रति भारतवर्ष में पंचांग निर्माण मुख्यत: दो विधियों द्वारा किया जा रहा है- उनमें एक दृश्य विधान है, तो दूसरा अदृश्य

विधान। दृक्सिद्ध पंचांग का सम्बन्ध दृश्य विधान से है। आज कतिपय आचार्य अपनी पारम्परिक पद्धति (सारिणी द्वारा) के अनुसार ही पंचांग का निर्माण करते हैं तथा कुछ विद्वान आधुनिकतम विधियों के अनुसार साधित ग्रहों के आधार पर पंचांग बनाना चाहते हैं। आधुनिक पद्धति को 'दृश्य गणित' कहते हैं तथा इस पद्धति से निर्मित पंचांग को 'दृश्य पंचांग' कहते हैं। जितने भी दृश्य कार्य हैं उनका साधन दृश्य पद्धति से ही होना चाहिए तभी गणितागत एवं वेधोपलब्ध परिणामों में साम्य हो सकेगा अन्यथा नहीं।

दृक्सिद्ध क्या है? इसे समझने के लिए सर्वप्रथम गणितागत ग्रहों एवं वेध द्वारा साधित ग्रहों को जानना होगा। गणितागत ग्रह से तात्पर्य अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह में मन्दफल, शीघ्रफलादि स्पष्ट संस्कारजन्य स्पष्टग्रह से है, जिसे **'दृक्तुल्य'** भी कहा जाता है। तथा वेध द्वारा साधित ग्रह से तात्पर्य वेधयन्त्र द्वारा साधित ग्रह से हैं।

यदा गणितागत ग्रह वेधयन्त्र द्वारा साधित ग्रह के साम्य होता है, तो उसे **दृक्सिद्ध** कहते हैं। दृग्गणितैक्य का स्वरूप प्रासांगिक है। नेत्रों द्वारा आकाशस्थ ग्रहों को वेधकर गणितीय विधान से एकरूपता देने की पद्धति को 'दृग्गणित' कहते है। इसका महत्व प्राचीनकाल से ही सम्प्रत्यावत् विद्यमान है। पौरूष सिद्धान्त के आविष्कारक आचार्य आर्यभट्ट से लेकर विद्यावाचस्पति मुरलीधर ठाकुर पर्यन्त सभी आचार्यों ने दृग्गणित सिद्धान्त के महत्व को स्वीकृत् किया है। वेध द्वारा सिद्ध पृष्ठीय सायन और पृष्ठीय वेधोपलब्धग्रह से गर्भीयसाधन करने की पद्धति का सूक्ष्म विवेचन ही दृक्सिद्ध का वास्तविक पक्ष होता है। गर्भीय ग्रह निरयन होता है। भारतीय पद्धति मूलत: इसी को ग्रहण करता है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

पंचांग –पाँच अंगों (तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण) के समाहार को पंचांग कहते है।

दृक्तुल्य – अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह में मंदफल, शीघ्रफलादि संस्कार द्वारा आनीत स्पष्ट ग्रह।

दृक्सिद्ध – गणितागत ग्रह जब वेधोपलब्ध ग्रह से साम्य रखता हो, उसे दृक्सिद्ध कहते हैं।

सायन – अयनांश मान के सहित सायन पद्धति होता है।

निरयण – अयनांश रहित मान निरयण मान होता है।

योग – सूर्य एवं चन्द्रमा के योग से योगों की उत्पत्ति होती है। आनन्दादि एवं विष्कुम्भादि दो प्रकार के योग होते हैं।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 का उत्तर

1. क
2. ख
3. ग
4. ग
5. क
6. क
7. ख
8. क

अभ्यास प्रश्न -2 का उत्तर

1. दृग्गणितैक्य विधायक
2. कुकेन्द्रिक:
3. 14 या 15 जनवरी
4. दृक्प्रत्ययद
5. उत्तरायण

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय ज्योतिष – श्री शंकरबालकृष्णदीक्षित
2. आधुनिक पंचांग दर्शन – प्रोफेसर भास्कर शर्मा
3. संवत्सरावली – टीका – पण्डित हीरालाल मिश्र:
4. शास्त्रशुद्ध दृष्टि से सूर्यसिद्धान्त की समीक्षा, कार्य परियोजना – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र
5. पंचांग विज्ञानम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. भारतीय ज्योतिष - डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री
2. पंचांग विज्ञानम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा
3. पंचांग समिति का प्रतिवेदन – पंडित दीनानाथ शास्त्री चुलैट
4. वैजयन्ती पंचांग गणितम् – डॉ0 भास्कर शर्मा
5. शास्त्रशुद्ध दृष्टि से सूर्यसिद्धान्त की समीक्षा, कार्य परियोजना – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. दृक्सिद्ध पंचांग से आप क्या समझते हैं?
2. दृक्सिद्ध एवं दृक्तुल्य में क्या अन्तर है? स्पष्ट कीजिये।
3. वर्तमान में प्रकाशित होने वाले दृश्य पंचांगों का वर्णन कीजिये।
4. सायन पंचांग पर प्रकाश डालें।
5. निरयण पंचांग का निरूपण कीजिये।

इकाई - 5 पंचांग की उपयोगिता

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के प्रथम खण्ड की पाँचवी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है– पंचांग की उपयोगिता। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने पंचांग स्वरूप, संक्षिप्त इतिहास, उसकी परम्परा, दृक्सिद्ध पंचांग आदि का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में पंचांग की उपयोगिता के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

पंचांग ज्योतिष शास्त्र का प्राण माना जाता है। समस्त ज्योतिष शास्त्र का सारतत्व पंचांग में ही समाहित होता है। अत: इसकी उपयोगिता इससे और भी बढ़ जाती है।

पंचांग का सम्बन्ध आम जनमानस के दैनिक जीवन के क्रियाकलापों से जुड़ा है। अत: पंचांग की उपयोगिता अक्षुण्ण है। आइए हम उन पंचांग की उपयोगिता के बारे में विस्तृत अध्ययन करते है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- पंचांग के अंगों को समझ लेंगे।
- पंचांग के सैद्धान्तिक प्रक्रिया को जान लेंगे।
- पंचांग की आवश्यकता को समझा सकेंगे।
- तिथि आदि पंचांग के अंगों का विभिन्न गणितीय उपपत्तियों को समझ लेंगे।
- पंचांग के महत्व को जान जायेंगे।

5.3 पंचांग विवेचन

पंचांग शब्द स्वयं ही अपना परिचय देता है। पाँच अंगों का समवेत स्वरूप ही पंचांग है। उन पाँच अंगों के नाम क्रमश: इस प्रकार हैं – तिथि, वार, नक्षत्र योग एवं करण। इन पाँचों अंगों के आधार पर किसी भी शुभकार्य हेतु शुभ समय का निर्णय किया जाता है। जहाँ ये अंग हमें शुभाशुभ समय का ज्ञान करातें हैं वहीं हमें आकाश दर्शन में भी सहायक होते हैं। इन अंगों के निरूपण के साथ-साथ ग्रहों की गति, स्थिति एवं चार का ज्ञान पंचांग के माध्यम से अत्यन्त सरल ढंग से किया जाता है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि आकाशीय घटनाओं के साथ-साथ उनके परिणामों का भी उल्लेख कर अधिकाधिक लोगों को अवगत कराया जा सके। इस दृष्टि से ज्योतिष के सिद्धान्त,

संहिता एवं होरा स्कन्धों के अनेक व्यावहारिक विषयों का समावेश आधुनिक भारतीय पंचांगों में होने लगा है। आज पंचांग ज्योतिष सम्बन्धी अनेक विषयों का महत्वपूर्ण संकलन भी है। यदि कोई व्यक्ति केवल पंचांगों का ही अध्ययन कर ले तो वह अनेक व्यावहारिक विषयों का ज्ञाता हो सकता है। यही कारण है कि आज पंचांग हमारी जीवन पद्धति के अंग बन चुके हैं।

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादास्तेषु केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चन्द्राकौं यत्र साक्षिणौ।।

इस उक्ति के अनुसार ज्योतिषशास्त्र प्रत्यक्ष शास्त्र है और इसकी गणनाओं का मूलाधार सूर्य एवं चन्द्रमा की स्थिति रहा है। प्राचीनकाल से ही ज्योतिष का प्रथम सम्बन्ध खगोल से रहा है। खगोलीय पिण्डों के साथ मानव के तादात्म्य सम्बन्ध का पक्षधर ज्योतिषशास्त्र फलित के अन्तर्गत मानव पर पड़ने वाले उसके प्रभाव का विवेचन करता है। हमारे सौरमण्डल में सभी ग्रह कक्षा में सूर्य के चारों ओर भ्रमण करते हैं और वैदिक काल से ही विद्वान इन ग्रहों की गति, युति व प्रभावों का अध्ययन करते रहे हैं, और आकाशीय चमत्कारों से अभिभूत होते रहे हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में खगोलीय ग्रह नक्षत्रों की स्थितियों ने मनुष्य को उलझन में डाल दिया था और तभी से मनुष्य ने इनके रहस्य को समझने का प्रयास प्रारम्भ कर दिया था। मनुष्य व्यवहार के साधनभूत कालमान आकाशीय पिण्डों के चमत्कारों एवं गति पर ही अवलम्बित है। खेती के लिए ऋतुओं का ज्ञान आवश्यक है और ऋतु ज्ञान सूर्य पर आधारित है। वर्षा भी सूर्य के कारण ही होती है। प्रकृति में होने वाले विक्षोभों की सूचना इन ग्रहों की विविध स्थितियों से ही प्राप्त होती है। सृष्टि के प्रारम्भ से ही मनुष्य आकाशस्थ ज्योति के चिन्तन में संलग्न है लेकिन इस ज्ञान को शास्त्र का रूप प्राप्त करने में ही काफी लम्बा समय लगा। वैदिक वांङ्मय में ज्योतिषीय ज्ञान यत्र-तत्र बिखरा सा उपलब्ध होता है क्योंकि वे ज्योतिष के ग्रन्थ नहीं थे, वेदांग काल में आते आते ज्योतिष ने शास्त्र का आकार प्राप्त किया और वेदों को जानने के लिए ज्योतिषशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता प्रतीत की जाने लगी और ज्योतिष को वेद पुरूष का 'नेत्र' कहा गया। इसलिए भास्कराचार्य जी ने भी स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है –

वेदश्चक्षु: किलेदं स्मृतं ज्योतिषम्।

प्रकृति की गोद में रहने वाला प्रारम्भिक मनुष्य तो साक्षात् आकाश में ग्रह आदि की स्थिति देखकर ही काल विषयक अनुमान लगा लेता था। धीरे-धीरे ग्रह गतियों की विवेचना एवं गणना सम्बन्धी ग्रन्थों का निर्माण हुआ और आम व्यक्ति इन ग्रन्थों के माध्यम से ही ग्रहों की स्थिति का अनुमान करने लगा। पंचांग निर्माण मनुष्य की इसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु किया जाने लगा कि मनुष्य पंचांग के माध्यम से ही ग्रहों की स्थिति, गति व उनके होने वाले परिवर्तनों को जान ले। पंचांग

निर्माण की अनेकानेक विधियाँ यथा केतकी, ग्रहलाघव, सूर्यसिद्धान्त आदि पर आधारित गणना पद्धति देश में प्रचलित रही हैं और उसके भी नाना भेद सायन, निरयन, सौर, दृक् आदि प्रचलित रहे हैं। प्रत्येक पद्धति से पंचांग निर्माण में कुछ न कुछ भेद अवश्य उपस्थित होता है। लम्बे समय तक दृक्पक्षीय व सौरपक्षीय पंचांगों में विवाद की स्थिति बनी रही और उनकी गणनाओं के अन्तर के कारण उस पर आधारित व्रत, पर्व आदि के निर्णयों में भी विवाद की स्थिति बन गई आज अधिकांश लोग दृक्पक्षीय पंचांगों को स्वीकार करने लगे हैं।

5.4 पंचांग की उपयोगिता

सम्पूर्ण विश्व में सभी मनुष्य सुख की अभिलाषा रखते है, परन्तु इष्ट की प्राप्ति बिना अनिष्ट शमन की प्राप्ति नहीं हो सकता, यह वेदों का उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वेदों में यज्ञ द्वारा अनिष्ट का शमन कर इष्ट की प्राप्ति का मार्ग बतलाया गया है। शतपथ ब्राह्मण में कहा गया हैं कि ''यज्ञों वै श्रेष्ठतमं कर्म''। यज्ञ सम्पादन के लिए शुभकाल की आवश्यकता होती है। क्योंकि शुभकाल में किया गया यज्ञ सफलता का द्योतक है। शुभकाल के बिना विहित यज्ञादि कर्म कष्टप्रद होते है। अपने जीवन यात्रा में मनुष्य बहुत से कार्यों का सम्पादन करता है, किन्तु शुभाशुभ कालविचार के बिना उसका निवर्हन नहीं हो पाता। धर्मकार्य, गृहनिर्माण, विवाह, यात्रा, युद्ध इत्यादि सभी कार्यों में शुभ समय की आवश्यकता होती है। इन समयों का ज्ञान केवल ज्योतिषशास्त्र के द्वारा ही प्राप्त होता है। ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों एवं नक्षत्रों की गति, स्थिति, संस्थान, मान, प्रमाण एवं सर्वविध प्रभाव के विषय में सिद्धान्त, संहिता एवं होरा इन तीनों भेदों का वर्गीकरण किया गया है। अत: ज्योतिष शास्त्र को कालविधायक तथा बोधक शास्त्र कहा गया है। काल के दो भेद है – 1. नित्य 2. अनित्य।

नित्यकाल सविरंचि सब्रह्माण्ड एवं सर्व भूतसंहारक है। अनित्य काल कलनात्मक एवं व्यवहार योग्य है। इसी व्यावहारिक काल के ज्ञान के लिए ज्योतिर्विद पंचांग का निर्माण करते है। वस्तुत: ज्योतिष का मुख्य कार्य पंचांग का सम्यक रूप से निर्माण करना है। यज्ञादि श्रौत स्मार्त कर्मों के सम्पादन में, षोडशसंस्कारों के विधान में व्रत, पर्व, अनुष्ठान निर्णय में पंचांग का कालविधान आधार रूप से सहायक होता है। क्योंकि सूक्ष्म पंचांग द्वारा ही शुभाशुभ काल का ठीक-ठीक निर्णय होता है। अत: पंचांग का दूसरा नाम कालदर्शक भी है। महर्षि नारद ने कहा भी है – ''विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्त्तं कर्मं न सिद्धयति'' यह उक्ति पंचांग पक्ष में सम्यक् रूप से घटता है।
ज्योतिषशास्त्र में तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण को पंचांग कहते है। इस के महात्म्य में कहा गया

है कि –

तिथि: वारञ्च नक्षत्रं योग: करणमेव च।
पंचांगस्य फलं श्रुत्वा गंगास्नानं फलं लभेत।।

पंचांग का महत्व प्राचीनकाल से ही स्वीकृत है। वाजसनेयसंहिता में लिखा है – प्रज्ञानाय नक्षत्र दर्शनम्। 'यादसे गणकम्' इत्यादि वाक्यों से ज्योतिर्विदों का महत्व का प्रतिपादन होता है। वह ज्योतिर्विद निश्चय ही पंचांग का ज्ञान मौखिक रूप से या भोजपत्र या तालपत्र पर नक्षत्रों, ग्रहों को देखकर तथा आकाशीय स्थिति को देखकर धारण करता होगा। एक प्रसंग में कहा गया कि ऋषियों द्वारा कथित शुभकाल में कोई भी किया गया कार्य सफल होता है। किन्तु शुभकाल का ज्ञान बिना पंचांग के सम्भव नहीं है। अत: प्राचीनकाल में भी पंचांग का ज्ञान एवं महत्व सभी लोग अवश्य जानते रहे होंगे। वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में सांवत्सरसूत्राध्याय में दैव की योग्यता बतायी है, जिससे स्थिति स्पष्ट हो जाती है। वेध नैपुण्य के साथ विभिन्न मान-प्रमाणों के सत्यासत्य परीक्षण का सामर्थ्य भी दैवज्ञ होना चाहिए। कालगणनादि के साथ समस्त प्रभाव शस्त्र भी इससे जुड़े हैं।

धर्मशास्त्र से पंचांग का सम्बन्ध अभिन्न है। जैसे – यज्ञ, उत्सव, पर्व, व्रत का सम्यक रूप से निर्धारण बिना पंचांग की सहायता से कैसे सम्भव हो सकता है? पंचांग के सहायता से ही रामनवमी, जन्माष्टमी, रक्षाबन्धन, विजयादशमी, दीपावली, होली, शिवरात्रि, मकर संक्रान्ति इत्यादि समस्त व्रत, पर्व एवं समस्त उत्सव का सम्यक निर्धारण होता है। आकाशीय आश्चर्यजनक घटनाओं में ग्रहण उल्कापात, अन्तरिक्षोत्पात इत्यादि प्रमुख है। हमारे धार्मिक समाज में ग्रहण का महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रहणकाल में स्नान, जप, दान का महत्व धर्मशास्त्रों में देखा जाता है। अत: भास्कराचार्य जी ने स्वग्रन्थ सिद्धान्तशिरोमणि में कहा है कि –

बहुफलं जपदानहुतादिकं स्मृति पुराणविद: प्रवदन्ति हि।
सदुपयोगि जने स चमत्कृति ग्रहणमिन्द्विनयो: कथयाम्यत:।।

इसी सन्दर्भ में आचार्य कमलाकर भट्ट ने भी कहा है कि –

यत्र स्नानाज्जपाद्होमाद्दानश्चेश्वरभक्तित:।
भूमिस्थितो नर: शीघ्रं सर्वपापै: प्रमुच्यते।।

उपर्युक्त श्लोकों द्वारा ग्रहणकाल का सम्यक् निर्धारण पंचांग द्वारा ही सम्भव है। संक्रान्ति, महावरूणी पर्व, पितरों का श्राद्ध तिथि, नवरात्रि में घटस्थापन मुहूर्त्त, यात्रा, वास्तु, गृहप्रवेश, राज्याभिषेक, अग्न्याधान, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चौलकर्म, उपनयन, विद्यारम्भ, समावर्तन, विवाहादि सभी प्रकार के संस्कार मुहूर्त्त का ठीक-ठीक ज्ञान इसके अभाव में

ज्ञात करना सम्भव नहीं है। सभी प्रकार के मुहूर्त्त का विचार पंचांग के द्वारा ही सम्पादित होते है। न केवल जीवित मनुष्यों का संस्कार अपितु मृत्युपश्चात् तिथियों से ही अनेक पितृकार्य होते हैं। सामान्य मनुष्यों के लिए भी दैनिक उपयोगी मुहूर्त जैसे – नूतन वस्त्र धारण, सुवर्ण प्रवालादि, रत्न आभूषण धारण, शस्त्रधारण, नृपर्शन, पशुक्रय, विक्रय, औषधि सेवन, पंचांग के अभाव में ठीक-ठीक जानना सम्भव नहीं है। हमारे कृषि प्रधान देश में किसानों के लिए बीजवपन, लतापादपारोपण, धान्यच्छेदन, कर्णमर्दन, सस्यरोपणादि समस्त कृषि कार्यों एवं ऋतुचक्र का ज्ञान, वृष्टिकाल ज्ञान आदि समस्त कार्यों में सफलता प्राप्ति के लिए शुभकाल का ज्ञान की आवश्यकता पंचांग द्वारा ही पूर्ण होता है। भारतवर्ष में कृषिकर्म वृष्टि पर ही आधारित है। यदि वृष्टि का सम्यक् पूर्वानुमान होता है, तो कृषकों के लिए महत्वपूर्ण उपकार होगा। प्राचीनकाल में वर्षा का पूर्वानुमान तिथि नक्षत्र वार, ग्रहस्थिति, सूर्यसंचार, नक्षत्राभिप्रायिक ग्रहसंचार आदि के द्वारा और वायु संचार तथा अष्टविध निमित्तों के परीक्षण से दैवज्ञ करते थे। यद्यपि आधुनिक यन्त्र प्रधान युग में आकाश में छोड़े गये कृत्रिम उपग्रहों के द्वारा वैज्ञानिक वर्षा का पूर्वानुमान करते है, फिर भी इनकी भूमिका खत्म नहीं हुई, सामाजिक कार्यों में जलाशय खनन, कुआँ, भवन निर्माण, स्थापत्य आदि में शुभकाल का निर्धारण पंचांग से ही होता है। इन प्रमाणों द्वारा निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि मनुष्य जीवन से प्रारम्भ होकर मृत्यु पर्यन्त जो भी संस्कार व्रत, पर्व, उत्सव आदि जो धर्म आचरण है वे सभी मुहूर्त्त पर ही आधारित है। दिग्देशकाल ज्ञान एवं इनकी सापेक्षता से पात्र का निर्धारण भूगोलीय अक्षांशदेशान्तरादि ज्ञान, दिग्ज्ञान, भूपृष्ठीय वातावरणादि समस्त तथ्य ज्योतिष शास्त्र की निष्पत्ति से पंचांग में भी प्रयुक्त होते हैं।

अभ्यास प्रश्न -1

1. ज्योतिषशास्त्रीय गणना का मूलाधार है –
   क. सूर्य ख. चन्द्र ग. भौम घ. सूर्य-चन्द्र
2. ज्योतिष वेदपुरूष का कौन सा अंग के रूप में जाना जाता है?
   क. नेत्र ख. मुख ग. कर्ण घ. पाद
3. ग्रहलाघव किसकी रचना है?
   क. राम दैवज्ञ ख. गणेश दैवज्ञ ग. केशव घ. भास्कराचार्य
4. निम्न में पंचांग का अंग नहीं है –
   क. तिथि ख. वार ग. नक्षत्र घ. ग्रहण
5. 'प्रज्ञानाय नक्षत्र दर्शनम्' कहाँ का वाक्य है

क. उपनिषद ख. वाजसनेय संहिता ग. पुराण घ. महाभारत

6. काल के मुख्य कौन से दो भेद है?

क. नित्य-अनित्य ख. दृश्य-अदृश्य ग. काल-विकराल घ. कोई नहीं

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पंचांग में मानव जीवन से जुड़े प्रत्येक व्रत, पर्व, उत्सव, संस्कार आदि का वर्णन द्रष्टव्य है। मानव जीवन के गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त समस्त क्रियाकलापों का भारतीय वैदिक सनातन परम्परा के अनुरूप पंचांग में वर्णन प्राप्त होता है। न कि केवल व्रत, पर्व, उत्सव और संस्कार ही बल्कि आकाशीय ग्रह-नक्षत्रादि की स्थितियों का भी गणितीय उल्लेख प्राप्त होता है। यदि एक वाक्य में कहना चाहें तो ज्योतिषशास्त्र के समस्त विषयों का सारतत्व कहीं एक स्थान पर मिलता हैं, तो वह है पंचांग। वस्तुत: पंचांग में केवल पाँच अंग ही नहीं अपितु सिद्धान्त ज्योतिष के अन्तर्गत प्रमुख रूप से ग्रहस्पष्टीकरण, ग्रहों की स्थिति, ग्रहण, ग्रहोदयास्त, कालांश, दिनमान, तिथिमान, नक्षत्रमान, योग एवं करण मान, भ्रदादि विचार, ग्रहराशिसंचार, रेलवे अन्तर, अक्षांश, देशान्तर, चरान्तर, बेलान्तर, क्रान्तिमान, दैनिकलग्नसारिणी आदि का उल्लेख सम्यक् रूप से मिलता है।

फलित ज्योतिष के अन्तर्गत प्रमुख रूप से व्रतोत्सव, पर्व, प्रमुख तिथियाँ, मुहूर्त्त, विवाह, मेलापक, धर्मकार्य, श्राद्धादि निर्णय, नूतन कार्यादि का विचार मिलता है।

संहिता ज्योतिष के अन्तर्गत सुभिक्ष-दुर्भिक्ष, समर्घ-महर्घ, फसल, दकार्गल, वास्तु, भौमान्तरिक्ष, उत्पात, प्राकृतिक आपदादि से सम्बन्धित समग्र तथ्यों का उल्लेख मिलता है।

भारतीयज्योतिषशास्त्र का मूलाधार आकाशीय ग्रहनक्षत्रों का गणित तथा वेध है। गणित के आधार पर सूर्य चन्द्रादि की स्थितियों का सही निर्णय कर गोलीयवेध से दृग्गणितैक्यजन्य समन्वय के द्वारा ग्रहों की वास्तविक दृष्ट्युपलब्ध स्थिति ही, उनकी व्यावहारिक उपयोगिता का मूलाधार है। पर्व, धर्मकार्य, यात्रा, विवाह, उत्सवजातक तथा भविष्यफल की जानकारी हेतु ग्रहगणित की शुद्धता की परख पंचांगनिर्माण के द्वारा ही सिद्ध होता है। पंचांग के पाँचों अंग व्यक्त काल के प्रधानतत्व है। इनके ही आधार पर प्रत्येक धार्मिक, सामाजिक, व्यावहारिक एवं शास्त्रीयकार्य सम्पन्न होते हैं। भारतीयसिद्धान्तज्योतिष की अपनी विशेषता भी है।

जिस शास्त्र के अन्तर्गत ग्रहनक्षत्रों के गणित गोलीयप्रभाव एवं उनकी विशेषताओं का सांगोपांग वर्णन हो, वह ज्योतिषशास्त्र कहलाता है। विभिन्न राशियों नक्षत्रों में सूर्यचन्द्र आदि के परिभ्रमण से 'काल' की गणना तथा पर्यवेक्षण से इसका ज्ञान होता है। सृष्टिकल्प के प्रारम्भ में सभी ग्रह राशिवृत्त

के आदि बिन्दु पर थे। अपनी-अपनी कक्षाओं में कक्षाओं के लघु एवं वृहदाकार भेद के कारण बिम्ब के व्यास के लघु तथा वृहद् दृश्य होने से तीव्र मन्द एवं मध्यम प्रतीत होने वाली गतियों का अध्ययन करने वाले ज्योतिषी तथा उनकी सैद्धान्तिक गणना करने वाले गणक कहलाए। इन गोलीयबिम्बों का अध्ययन के विविध भेद ही ज्योतिषनाम से प्रसिद्ध हुआ तथा इनके वार्षिक गणितीय विवरण 'पंचांग' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक श्री सर्वेश्वर के सृष्टयुत्पादन पालन संवरण की सतत् संचरण परिवर्तन परिवर्द्धमान परम्परा में स्थावर जंगमादि ही नहीं वरन् प्रत्येक प्राणीमात्र भी इस काल की गतिशीलता से प्रभावित है। 'कालस्तु कलनात्मक:' अर्थात् गणनात्मक। इसी काल की गणना अनादि काल से ज्योतिष के माध्यम से की जा रही है।

वेद के षडंगों में ज्योतिषशास्त्र का अद्वितीय स्थान है। पाणिनि ने अपने शिक्षा ग्रन्थ में इसे वेद का नेत्र कहा है – ज्योतिषामयनं चक्षु:। वेदों में सूर्य चन्द्रमा तथा अन्य नक्षत्रों की देवस्वरूप में स्तुतिपरक ऋचायें प्राप्त होती है। ब्राह्मण ओर आरण्यक ग्रन्थों में ग्रह-नक्षत्रों के गुणस्वरूप प्रभावादि के रहस्योद्घाटनात्मक चिन्तन किया गया है।

ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान की यह अजस्र धारा ब्रह्मादि परमाचार्यों से लेकर पराशर महर्षि तक अष्टादश महामुनियों का गम्भीर चिन्तन लेकर प्रवाहित होती रही है। अष्टादशैते गम्भीरा जयोति: शास्त्र प्रवर्त्तका:।।

इन आचार्यों के परवर्ती ऋषिकल्प शास्त्र सागर के पारंगत विशिष्ट विद्वानों ने अपने-अपने ग्रन्थों यथा- वराहमिहिराचार्य ने ईसा से 148 वर्ष पूर्व पंचसिद्धान्तिका, वृहत्संहिता, वृहज्जातक, श्रीपति ने जातकपद्धति, वल्लालसेन ने अद्भुतसागर, नारायण दैवज्ञ ने मुहूर्त्तमार्तण्ड, गणपति ने मुहूर्तगणपति, भर्तृहरि ने राजमार्तण्ड में संहितोक्त विषयों का दिग्देशकालानुसार जन समूह के कल्याणार्थ सरल पद्धति में प्रस्तुतीकरण किया है।

ज्योतिष शास्त्र को जानने के लिए मुख्यत: इसके दो भाग किए गए - गणित और फलित। पश्चात् यह स्कन्धत्रय के नामों से विभाजित होकर जाना जाने लगा। सिद्धान्त, संहिता और होरा इन तीन नामों से ज्ञात होने के कारण इसे स्कन्धत्रय भी कहते हैं। सम्प्रति उक्त विभाजन ने पंचांत्मक (होरा, गणित, संहिता, प्रश्न और निमित्त) रूप को धारण कर लिया है।

ज्योतिष शास्त्र के समस्त सैद्धान्तिक ग्रन्थों का अध्ययन हो जाने पर भी प्रायोगिक स्थल में जिसके बिना एक ज्योतिष शास्त्र का ज्ञाता भी अभाव का अनुभव करता है वह है – पंचांग। वस्तुत: पंचांग को यदि हम आधुनिक भाषा में कहे तो वह एक ज्योतिषी का कम्प्यूटर है।

इस प्रकार देखा जाये तो पंचांग की उपयोगिता मानव जीवन में सर्वतोभावेन दिखलाई पड़ती है। मानव को उसके जीवन से जुड़े पग-पग पर पंचांग उसके लिए वरदान साबित हो सकती है। आवश्यकता इस बात की है, सामान्य मनुष्य को भी इसकी जानकारी होनी चाहिए, जिससे वह इसके महत्व को समझते हुए उसका जीवन में उपयोग कर सके।

निम्नलिखित रूप से पंचांग के महत्व को समझा जा सकता है –

1. तिथि ज्ञान में
2. वार ज्ञान में
3. नक्षत्रों के बोध में
4. योग के बोध में
5. ग्रहगणित बोध में
6. ग्रहण बोध में
7. विभिन्न शुभाशुभ मुहूर्त्तों के ज्ञान में
8. दैनन्दिन ग्रहों की स्थिति ज्ञान में
9. वास्तु सम्बन्धित ज्ञान में
10. प्राकृतिक एवं अन्तरिक्ष सम्बन्धित रहस्यों की जानकारी में
11. वैश्विक स्थिति के ज्ञान में
12. मानव के दैनन्दिन जीवन से जुड़े अनेक क्रियाकलापों में
13. जन्मकुण्डली निर्माण तथा फलादेशादि कर्तव्यों में
14. व्रत-पर्व निर्धारण में
15. मूल रूप से समग्र ज्योतिष शास्त्र(सिद्धान्त, संहिता, होरा, प्रश्न, शकुन आदि) के सारतत्व ज्ञान बोध में।

उपर्युक्त सभी विधाओं में पंचांग की उपयोगिता परिलक्षित होती है। पंचांग मूलत: मानव-मात्र के जीवन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है। अत: मनुष्य पंचांग का ज्ञान प्राप्त कर जीवन को भी उपयोगी बना सकता है।

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जाना कि पंचांग शब्द स्वयं ही अपना परिचय देता है। पाँच अंगों का समवेत स्वरूप ही पंचांग है। उन पाँच अंगों के नाम क्रमश: इस प्रकार हैं – तिथि, वार, नक्षत्र योग एवं करण। इन पाँचों अंगों के आधार पर किसी भी शुभकार्य हेतु शुभ समय का निर्णय किया जाता है। जहाँ ये अंग हमें शुभाशुभ समय का ज्ञान करातें हैं वहीं हमें आकाश दर्शन में भी सहायक होते हैं। इन अंगों के निरूपण के साथ-साथ ग्रहों की गति, स्थिति एवं चार का ज्ञान पंचांग के माध्यम से अत्यन्त सरल ढंग से किया जाता है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि आकाशीय घटनाओं के साथ-साथ उनके परिणामों का भी उल्लेख कर अधिकाधिक लोगों को अवगत कराया जा सके। इस दृष्टि से ज्योतिष के सिद्धान्त, संहिता एवं होरा स्कन्धों के अनेक व्यावहारिक विषयों का समावेश आधुनिक भारतीय पंचांगों में होने लगा है। आज पंचांग ज्योतिष सम्बन्धी अनेक विषयों का महत्वपूर्ण संकलन भी है। यदि कोई व्यक्ति केवल पंचांगों का ही अध्ययन कर ले तो वह अनेक व्यावहारिक विषयों का ज्ञाता हो सकता है। यही कारण है कि आज पंचांग हमारी जीवन पद्धति के अंग बन चुके हैं।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

पंचांग – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण रूपी पाँच अंगों के समाहार को पंचांग कहते है।

तिथि – सूर्य एवं चन्द्रमा के द्वादश अंशात्मक गत्यन्तर को तिथि कहते है।

वार – रव्यादित: शनिवार पर्यन्त सप्त वार होते हैं।

भगण – १२ राशियों का एक भगण होता है।

नक्षत्र – न क्षरतीति नक्षत्रम्। अश्विनी से रेवती पर्यन्त २७ नक्षत्र होते हैं।

योग – सूर्य एवं चन्द्र के योग से योगों की उत्पत्ति होती है। आनन्दादि एवं विष्कुम्भादि दो प्रकार के योग होते हैं।

करण – एक तिथि में दो करण होते हैं।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 का उत्तर

1. घ
2. क
3. ख
4. घ

5. ख

6. क

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारतीय ज्योतिष – श्री शंकरबालकृष्णदीक्षित

2. आधुनिक पंचांग दर्शन – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

3. संवत्सरावली – टीका – पण्डित हीरालाल मिश्र:

4. शास्त्रशुद्ध दृष्टि से सूर्यसिद्धान्त की समीक्षा, कार्य परियोजना – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र

5. पंचांग विज्ञानम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

5.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. भारतीय ज्योतिष - डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री

2. पंचांग विज्ञानम् – प्रोफेसर भास्कर शर्मा

3. पंचांग समिति का प्रतिवेदन – पंडित दीनानाथ शास्त्री चुलैट

4. वैजयन्ती पंचांग गणितम् – डॉ0 भास्कर शर्मा

5. शास्त्रशुद्ध दृष्टि से सूर्यसिद्धान्त की समीक्षा, कार्य परियोजना – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पंचांग का विस्तृत वर्णन कीजिये।

2. मानव जीवन में पंचांग की उपयोगिता पर प्रकाश डालिये।

3. पंचांग का क्या महत्व है?

4. पंचांग से क्या-क्या ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है? स्पष्ट कीजिये

खण्ड - 2

पंचांग साधन एवं प्रकार

इकाई - 1 तिथि साधन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के द्वितीय खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – तिथि साधन। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने पंचांग के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप पंचांग के विभिन्न रूपों का अध्ययन करने जा रहे हैं।

तिथि पंचांग का प्रथम अंग के रूप में सर्वविदित है। तिथि की उत्पत्ति सूर्य एवं चन्द्रमा की गति के फलस्वरूप होता है। जब चन्द्रमा अधिक गति के कारण सूर्य से 12^0 आगे निकल जाता है, तभी तिथि का बोध होता होता है।

आइए इस इकाई में तिथि का ज्ञान करते हुए उसके गणितीय अवयवों को भी समझने का प्रयास करते है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान जायेगें कि –

- तिथि किसे कहते है।
- तिथि का मान कितना होता है।
- तिथि के गणितीय अवयव क्या है।
- तिथि का साधन कैसे किया जाता है।

1.3 तिथि परिचय

तिथि का अन्वेषण ऋषि परम्परा में ज्योतिष शास्त्र के लिए अपूर्व उपलब्धि मानी गयी। तिथि निर्धारण से ही सूर्य और चन्द्रमा के सभी प्रकार के सम्बन्ध सुव्यवस्थित हो सके। सूर्योदय के बाद सूर्यास्त तत्पश्चात् पुन: पुन: सूर्योदय एवं सूर्यास्त। इसमें कहीं ऐसा मानक नहीं था जिसे स्थिर बिन्दु मान कर सम्बन्धों का सत्यापन हो सके। वैदिक ऋषि प्राकृतिक यज्ञ को भी उतनी ही तन्मयता से समझता था जितनी तन्मयता से उपकरण वैध यज्ञ को जानता था। अरण्य या सरस्वती नदी के तट पर निरभ्र या साभ्र आकाश के नीचे प्रतिदिन सूर्य (दिनेश) का निकलना और ढलना (सूर्यास्त) ऋषिगण अपनी आँखों से देखते रहे। दिन में समस्त वातावरण प्रकाश स्नात होता रहा और रात्रियाँ अंधकारपूर्ण होती रहीं। इन रात्रियों की दो प्रकार की स्थितियाँ बनती रहीं – प्रकाश पूर्ण रात्रियाँ और अन्धकारपूर्ण रात्रियाँ। इन रात्रियों ने ही वैज्ञानिक मन को सोचने के लिए विवश किया। पूर्णिमा की सांध्यवेला में पूर्वी क्षितिज पर पूर्ण चन्द्र का दिखलायी देना और धीरे धीरे प्रतिदिन उसका क्षीण होना निरन्तर ध्यान में आता रहा। ऐसा प्रतीत होने लगा कि चन्द्रमा पूर्णता को पन्द्रहवें दिन प्राप्त कर रहा

है। इसीलिए उस तिथि या रात्रि को पूर्णा या पूर्णिमा कहा गया। क्या आकाश में पन्द्रह चन्द्रमा उगते हैं? अथवा एक ही चन्द्रमा पन्द्रह प्रकार का स्वरूप धारण करता है? ऋषि ने कहा नहीं, नहीं, एक ही चन्द्रमा पंचदशी की रात्रि में पूर्णता प्राप्त करता है और दूसरी पंचदशी की रात्रि में क्षीण हो जाता है। इस प्रकार से यह सुनिश्चित तथ्य सामने आ सका कि चन्द्रमा एक ही है –

चन्द्रमा वै पंचदश:। एष हि पंचदश्यामपक्षीयते। पंचदश्यामापूर्यते।

(तै0 ब्रा0 १/५/१०)

पूर्णिमा तिथि एक मानदण्ड बन सकी। पूर्णिमा से ठीक तीसवीं में चन्द्रमा पूर्ण आकार में आकाश में दिखलायी देता है ऐसा निश्चित हुआ। पूर्णिमा में शरद ऋतु से लेकर जाड़े तक सूर्यास्त के आसन्न ही पूर्ण बिम्ब दृश्य होते ही बहुवृच ब्राह्मण का ऋषि निर्धारित कर सका –

यां पर्यस्तमियादभ्युदियादिति सा तिथि:।

अनुमानत: तिथि की यह पहली परिभाषा, पहला लक्षण निर्धारित किया जा सका – चन्द्रमा जिसमें उगता और अस्त होता है उसे तिथि कहते हैं। यह प्राचीनतम युग की श्रेष्ठतम परिभाषा थी। तिथि की अन्य जितनी परिभाषायें हैं उनमें तब तक यह निश्चित हो चुका था कि सूर्य और चन्द्रमा की बारह अंश की दूरी एक तिथि को सृजित करती है।

वैदिक ऋषियों के सूक्ष्म निरीक्षण की प्रवृत्ति के कारण पूर्णिमा और अमावस्या के चन्द्रमा के स्थिति को नियत किया जा सका। जिस दिन चन्द्रमा पूर्ण बिम्ब के रूप में आकाश में दिखलाई देता है उस दिन वह आकाश में नियत मास के नियत नक्षत्र में स्थित रहता है। यह अनुवर्तन प्रत्येक चान्द्रमास की प्रत्येक पूर्णा तिथि में होता है यह गणित सत्य है। चन्द्रमा २७.३ दिनों में २७ नक्षत्रों का चक्कर लगा लेता है। एक चान्द्रमास २९.५३ दिनों का होता है। फलत: एक पूर्णिमा से दूसरी पूर्णिमा आने में दो नक्षत्र अधिक भोग कर जाता है चन्द्रमा। यह भी गणित सिद्ध होने के कारण महत्वपूर्ण है। मध्यवर्ती तिथियों में भी चन्द्रमा का तारतम्य बना रहता है।

निष्कर्षत: तिथि की खोज खगोल जगत् की एक विराट खोज थी। यह चन्द्रमा के दृश्यत्व से सम्बन्धित थी और पूर्णिमा और अमावस्या के द्वारा नियन्त्रित भी। चतुर्दशी, पूर्णिमा और कृष्णप्रतिपदा तथा चतुर्दशी, अमावस्या और शुक्ल प्रतिपदा इन तीन तिथियों में सूक्ष्म अन्तर होने के कारण इनका निर्धारण गणित द्वारा ही संभव था। वैसे आरम्भ में यह स्थूल रूप से निर्धारित हुआ कि मध्यम मान से रात्रिमान यदि ३० घटी का है और उसमें पन्द्रह कलाओं से पूर्णचन्द्र उदित होता है तो एक कला का दृश्यकाल २ घटी के आसन्न होगा। यद्यपि बाद में चन्द्रमा के प्रतिदिवसीय उदय के सम्बन्ध में सूक्ष्म गणित का आनयन होने लगा, पर उस प्रक्रिया को उदयास्त एवं चन्द्र श्रृंगोन्नति में

विचारार्थ लिया गया। निरन्तर अध्ययन के आधार पर निर्धारित हो सका कि शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि में रात्रि में चन्द्रमा का दर्शन नहीं होगा। हाँ, प्रतिपदा यदि सूर्यास्त से पूर्व समाप्त हो रही हो तो उसी रात्रि में चन्द्रदर्शन हो जायेगा। इस प्रकार से तिथि प्रधान धर्मशास्त्रीय जगत् में चान्द्रदिनों का महत्व इतना अधिक बढ़ा कि वार, नक्षत्र एवं योग आदि का महत्व उसके सामने गौण हो गया। आज धर्मशास्त्र और ज्योतिष के सम्बन्ध को निर्धारित करने में तिथि मेरूदण्ड के रूप में स्थित है।

तिथि आनयन की गणितीय प्रक्रिया ग्रहलाघवादि ग्रन्थों में स्पष्टता के साथ कही गयी है। गणित द्वारा भोग्य और भुक्त तिथि का आनयन आसान है। पंचांग निर्माण के समय पूर्णिमा तिथि में तीन चीजें एक साथ आकर उपस्थित हो जाती हैं – १. सूर्य और चन्द्र की स्पष्ट स्थिति छ: राशि की दूरी पर होती है, २. चित्रा आदि प्रधान नक्षत्र का पूर्णिमा से स्पर्श होता है और ३. पूर्णिमा का घटयादि मान जितना अधिक होता है सूर्य-चन्द्र का अंश मान उतना अधिक साम्य रखता है। इन तीनों परिस्थितियों को वैदिक युग में ही ऋषिगण समझ चुके थे। अमावस्या तिथि में तो गणितीय सौन्दर्य का दर्शन होता है, जब सूर्य और चन्द्रमा का राशि, अंश कला तक का साम्य हो जाता है। यही एक ऐसा स्तम्भ होता है जो बतलाता है कि आज चन्द्रमा ने अपना सारा तेज सूर्य को समर्पित कर दिया है। दोनों एक हो गये हैं। इसीलिए अमावस्या की परिभाषा बनी – 'दर्श: सूर्येन्दु संगम:' अर्थात् सूर्य और चन्द्र के संगम को दर्श (अमावस्या) कहते हैं।

वसिष्ठ संहिता में इसी बात को श्लोकबद्ध किया गया है –

सूर्यान्निर्गत्य यत्प्राचीं शशी याति दिने दिने।
लिप्तादिसाम्ये सूर्येन्दु तिथ्यन्तेऽर्कांशकैस्तिथि:।।

सूर्य से बाहर निकल कर पूर्व दिशा की ओर चन्द्रमा जैसे –जैसे बढ़ता है वैसे –वैसे तिथि बढ़ती है। अमावस्या तिथि में राशि,अंश और कला का साम्य होता है दोनों के बीच। अमावस्या से आगे यह अन्तर हमेशा १२ अंश का होता है। यानी एक तिथि १२ अंश की होती है।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कहा गया है कि सूर्य का पिण्ड अपनी ओर चन्द्रमा को खींचता है। चन्द्रमा में अमृतत्व ज्यादा होता है जिसे अमावस्या में सूर्य के साथ रहकर चन्द्रमा नष्ट कर लेता है। पुन: पूर्णिमा तक वह उसे प्राप्त करता है। यह आख्यान गूढ़ अर्थ रखता है।

तिथि की दूसरी उत्तम परिभाषा आयी – 'तन्यन्ते कलया यस्मात् तस्मात् तास्तिथय: स्मृता:' चन्द्रकला का विकास जिसमें हो उसे तिथि कहते हैं।

कतिपय अंग्रेज विद्वानों ने और उनके अन्धानुगामी भारतीय चिन्तकों ने कहा कि वेदों में तिथि शब्द और प्रतिपदादि तिथियाँ नहीं मिलतीं। पूर्णा को पंचदशी और अमा को भी पंचदशी वेदों में कहा गया

है। अत: एक एक दिन का चन्द्रमा अलग से अवश्य उक्त रहा होगा। वेद वैसे भी ज्योतिष के कोष ग्रन्थ नहीं हैं कि एक एक सूक्ष्म चीजें उनमें उक्त रहेंगी। यदि पौत्र का नाम आया है तो पिता का भी नाम अवश्य रहा होगा। तिथि शब्द का सीधा सम्बन्ध चन्द्रमा से है। तिथि का शरीर चन्द्रमा के ही कारण बढ़ता और घटता है। अत: अपने जन्मकाल में ये तिथियाँ रात्रि वाचक रहीं, परन्तु अविलम्ब ही जैसे जैसे इनका सूक्ष्मरूप और गणितागतरूप सामने आने लगा ये चान्द्रदिन वाचक हो गयीं। इस क्रम में अधिक वर्ष लगे होंगे ऐसा अनुमान करना उचित नहीं है।

प्रो. एम. एन. साहा और मि0 एन0सी0 लाहिड़ी ने पंचांग सुधार का प्रतिवेदन तैयार किया। इस ग्रन्थ में मिस्टर लाहिड़ी ने अध्याय तीन का आरम्भ इस प्रकार से किया है – प्राचीन काल में अकेले मिस्र निवासी ही सभ्य देशों में प्रतीत होते हैं जिन्होंने चन्द्रमा को समय निर्धारक के रूप में पूर्णत: उपेक्षित कर दिया। उस समय के दूसरे सभ्य देशों के निवासियों ने अर्थात् बेबीलोनिया के सुमेरो अकादियन तथा वैदिक भारतीयों ने चन्द्रमा तथा सूर्य दोनों को समय सूचक के रूप में स्थिर रखा। सूर्य को वर्ष के लिए तथा चन्द्रमा को मास के निर्धारण के लिए इन लोगों ने रखा। इस कथन से दो तथ्य उभर रहे हैं - १. काल (समय) निर्धारण में चन्द्रमा की उपेक्षा करने वाला देश सभ्य कहलाता है और २. प्राचीनकाल से इनका आशय है ईसा पूर्व एक हजार वर्ष। भारतीयों को नीचा दिखाने के लिए तथा बेबीलोनियन संस्कृति को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए अंग्रेजों और उनके समर्थक कम्युनिष्ट इतिहासकारों के पास ईसा पूर्व का एक हजार वर्ष हथियार के रूप में काम करता है। सत्यता यह है कि महाभारत ईसा पूर्व ३१०२ वर्ष पहले घटित हो चुका था। भारतीय वैदिक ज्योतिर्विदों ने महाभारत पूर्व (कई हजार वर्ष पहले) ही सौर –चान्द्र सावन आदि मानों से उत्पन्न परिणाम का आपसी सामंजस्य स्थापित कर लिया था, अन्यथा वेदकाल में सौरवर्षों के साथ सामंजस्य के लिए ढ़ाई वर्षों में एक अधिमास की कल्पना क्यों करनी पड़ती? ऋग्वेद में अधिमास की सूचना कैसे होती?

वेदो यो धृतव्रतो द्वादश प्रजावत:। वेदा य उपजायते। (ऋग्वेद १/२५/८)

इस तथ्य से हमारा मात्र इतना प्रतिपाद्य है कि तिथि की उत्पत्ति विश्व में वैदिक ऋषियों ने तब ज्ञात कर ली थी जब बेबीलोन, काल्डियन, मिस्र, सार्गन, सुमेरियन या अन्य किसी भी सभ्यता का अता – पता भी नहीं था।

एण्टन पेनकोक ने अप्रैल १९३० ई0 में जर्नल ऑफ दि रायल एस्ट्रोनामिकल सोसाइटी ऑफ कनाडा में एस्ट्रोलाजी एण्ड इट्स इन्फ्लूयेन्स अपान दि डेवलपमेंट ऑफ एस्ट्ार्नामी निबन्ध में लिखा है कि –प्राचीन काल में भारतीय, बेबीलोनियन, ग्रीक, यहूदी एवं अन्य सभी सभ्यताओं के ज्योतिर्विद

चान्द्रपंचांग ही प्रयोग में लाते थे। चन्द्रमा का समय, सायंकाल आकाश में प्रथम बार चन्द्रमा की सूक्ष्म कला का उदय, इसकी प्रथम चतुर्थांश तक वृद्धि, पुन: पूर्ण बिम्ब तक वृद्धि एवं सम्पूर्ण रात्रि में व्याप्ति एवं इसके बाद अन्तिम कला तक ह्रास तथा सूर्योदय के समय अन्तिम कला के दर्शन के बाद अस्त होना आदि को देखते हुए २९. १/२ दिन में चान्द्र समय को ३६५ दिन के सौर वर्ष के अनुकूल बनाने की व्यावहारिक आवश्यकता उत्पन्न हुई। प्राचीन समय गणना की यह मुख्य समस्या ज्योतिर्विद्या के अध्ययन में एक मुख्य प्रेरणा रही, क्योंकि इससे आकाश के सतत वेध की आवश्यकता उत्पन्न हुयी।

पेनकोक ने अपने इस निबन्ध में प्राचीन गवेषणाओं के महत्व को उद्घाटित किया है, जबकि भारत के एस्ट्रोनामीविद् लाहिड़ी आदि ने तिथि (चान्द्रवर्ष) और उसके प्रचलन को निकृष्ट सिद्ध करने की कोशिश की है। क्या तिथियों और चान्द्र वर्षों को फेंक दिया जाए? क्या सौर और चान्द्र के सामंजस्य का परित्याग कर केवल ३६५ दिन वाले वर्ष और अंग्रेजी दिनांकों को अंगीकार कर लिया जाए? क्या नौ प्रकार के कालमान और उनका परस्पर सामंजस्य निरर्थक है? ऐसा कुछ भी नहीं है। सारी प्राकृतिक घटनायें और गणनायें अपनी जगह पर महत्वपूर्ण हैं। उनका परस्पर सामंजस्य अत्यावश्यक है। इस कार्य को भारतीय ज्योतिर्विदों ने पूर्णता के साथ किया।

पंचांग के अवयवों पर विचार करते समय तिथि को शरीर माना गया है। शरीर शुद्ध और बलवान होने पर ही प्रबलता की कामना की जाती है। तिथि में दोष उत्पन्न हो जाने पर चन्द्र बल, लग्न बल और ग्रहबल काम नहीं देता। मुहूर्त्त के निर्धारण में तिथि की चर्चा सर्वप्रथम की जाती है –

सर्वत्र कार्येषु शुभाशुभेषु पृच्छन्ति लोके तिथिमेव पूर्वम्।
न क्वापि योगं करणं ग्रहं वा तस्मात् तिथेर्मुख्यतरत्वमुक्तम्।।

वस्तुत: यह एक विचार था जो मुहूर्त्तग्रन्थों में तिथि के महत्व को उद्घाटित करता था। मुहूर्त्त ग्रन्थों की वर्णन प्रक्रिया में कभी तिथि को श्रेष्ठ तो कभी चन्द्र और नक्षत्र को श्रेष्ठ माना गया है। यहाँ कहने का आशय यह है कि तिथि की खोज रात्रिगत चन्द्रस्थितियों से सम्बन्धित थी जो आँखों से दृश्य थी। नक्षत्रों का भी सीधा सम्बद्ध चन्द्र से है, बल्कि केवल चन्द्र से ही है पर अपेक्षाकृत जटिल और सूक्ष्म है। आरम्भिक स्थिति में ज्योतिष विषयक ज्ञान के अन्वेषण में यह सुनिश्चित है कि नक्षत्रज्ञान से बहुत पहले तिथि ज्ञान हो चुका था। तिथियों का स्पष्ट दर्शन चन्द्रमा के रात्रिगत अस्तित्व से होता था। अत: तिथियों ने पहले ध्यान आकृष्ट किया था। सूर्य चन्द्र का वियोगात्मक मान तिथि है। सूर्य चन्द्र का संयोगात्मक मान 'योग' है। चन्द्र का प्रविभागात्मक मान १३ अंश २० कला नक्षत्र है। सूर्य का प्रतिदिवसीय उदयात्मक मान वार है। सूर्यचन्द्र का परस्पर वियोगात्मक अर्धविभाग मान करण है।

इन्हें ही पंचांग कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न – 1

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिये -

1. दिनेश .... का पर्याय है।
2. सूर्यचन्द्रान्तरांश १२° होने पर .... की उत्पत्ति होती है।
3. चन्द्रमा और सूर्य का संगम .... तिथि को होता है।
4. एक तिथि में .... अंश होता है।
5. तिथि की गणना .... से आरम्भ होती है।
6. द्वादशी तिथि .... संज्ञक होता है।
7. तृतीया तिथि का स्वामी .... होता है।

कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि ने भी ऋषियों को तिथि समूह या तिथियों के मासों को नियंत्रित करने में मदद की। रात्र्यर्द्ध में चन्द्रमा का उदय कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि में होता है। यह आधा प्रकाशित और आधा विच्छाय, फीका दिखता है। इसे वेदों में अष्टका तिथि के नाम से कहा गया है। तिथि सम्बन्धी सभी सूक्ष्म विषयों पर गहन विचार वेदकाल में सम्पन्न हो गया था। आज जिन विषयों पर विचार नहीं हो रहा है उन विषयों पर भी वेदों में संकेत हैं। वैदिक ऋषि केवल इतना नहीं मानते कि चन्द्रमा का दृश्य होना या अदृश्य होना तिथि शरीर को निर्देशित करता है, बल्कि चन्द्रमा की किरणों में जो तत्व है वह सूर्य किरणों से सर्वथा भिन्न है। चन्द्र किरणें सृष्टि में शुष्कता के भीतर आर्द्रता का संचार करती है। चन्द्र किरणें सृष्टि में शुष्कता के भीतर आर्द्रता का संचार करती हैं। सूर्य और चन्द्र की किरणों के परस्पर आदान –प्रदान से सूर्य को भी उतनी ही संजीवनी शक्ति मिलती है जितनी चन्द्रमा को सूर्य से मिलती है।

इन तिथियों पर देवताओं का अधिकार होता है यह विषय उत्तरवर्ती युग में स्थापित किया गया। आज भी पूर्णिमा और अमावस्या को लेकर भारतीय ज्योतिष में दो प्रकार के स्पष्ट मत हैं – १. पूर्णिमा ही तिथि (चान्द्र) मास को पूर्णता देती है और २. अमावस्या तिथि (चान्द्र) मास को पूर्णता देती है। इन दोनों मान्यताओं को लेकर मासान्त के दो विभाग आज भी बने हुए हैं – पूर्णान्तमान और अमान्तमान। वस्तुत: पूर्णा और अमा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। लोक में आज भी यह मान्यता है कि मधुमक्खियाँ शुक्लपक्ष में मधु संचय करती हैं और कृष्णपक्ष में मधुपान करती हैं। यही पूर्यते – क्षीयते का सिद्धान्त है। वैसे ही प्रकृति में निरन्तर यह क्रम चलता है। ज्योतिषशास्त्र के अधिकांश

ग्रन्थों में पूर्णिमा को पन्द्रहवीं और अमावस्या को तीसवीं तिथि माना गया है।

1.3.1 तिथि साधन

तिथि को स्पष्ट जानने हेतु एक आसान और सीधी सूत्रात्मक विधि अपनायी गई। यदि स्पष्ट सूर्य ११/११/७/५२ हो और स्पष्ट चन्द्र १०/२७/३४/२ हो और सूर्य की गति ५९/२९ तथा चन्द्र गति १३/४२/१० हो तो **तिथि का आनयन** निम्नलिखित प्रकार से होगा –

व्यर्क विधु: अर्थात् चन्द्र – सूर्य

१०/२७/३४/२

\- ११/११/७/५२

११/१६/२६/१० (चन्द्र से सूर्य का मान अधिक होने पर उसमें १२

\- राशि जोड़ लेते हैं।)

इसे अंशात्मक बनाया जाता है –

११ × ३० + १६/२६/१० = ३४६ /२६/१०

एक तिथि १२ अंश की होती है। अत: इसमें १२ का भाग देने पर

$$\frac{३४६/२६/१०}{१२}$$

= २८ गत तिथि और शेष मान १०/२६/१०

शेष भुक्तमान है। इसे १२ अंश में से घटाने से भोग्य मान होगा।

१२/००/००

\- १०/ २६/१०

०१/३३/५० भोग्य मान

सूर्य चन्द्र का गत्यन्तर

१३/४२/१०

\- ००/५९/२९

१२/४२/४१ गत्यन्तर

$$\text{वर्तमान तिथि} = \frac{६० \times \text{भोग्य मान}}{\text{गत्यन्तर}}$$

$$= \frac{६० \times १/३३/५०}{१२/४२/४१} = ७/२२$$

इसे मिश्रमान ४६/६ में भोग्य होने से जोड़ा गया तो

४६/६
\+ ७/२२

५३/२८ कृष्ण चतुर्दशी तिथि का स्पष्ट मान प्राप्त हुआ। इसी प्रकार से पृथक् पृथक् ग्रन्थों से तिथि का आनयन किया जाता है।

तिथि की उपपत्ति – एक माह में कुल ३० तिथियाँ होती हैं। इनका परिभ्रमण काल ३६०° में पूर्ण होता है। अत: १ तिथि = ३६०° ÷ ३० = १२°। इससे तिथि का मान १२ अंश होता है। इसे कला में बदला जाए तो १२° × ६० = ७२० कला। इसे ही सूर्यसिद्धान्त नामक ग्रन्थ में 'खाश्विशैलास्तथा तिथे:' कहा गया है। ३६०° को कला में बदलने पर ३६० × ६० = २१६०० इसे चक्रकला कहते हैं। इसमें तिथि संख्या ३० से भाग देने पर

२१६०० ÷ ३० = ७२० कला।

अत: १ तिथि का मान १२° या ७२० कला होता है।

तिथि साधक सूत्र –

$$\frac{\text{चं.} - \text{र.}}{१२^\circ} = \frac{\text{अन्तरांश}}{१२^\circ} = \text{लब्धि} + \frac{\text{शे.अ.}}{१२^\circ}$$

शे.अ. = भुक्ततिथिकला।

लब्धि = गततिथि।

१२° – शे.अ. = तिथिभोग्यांश शेष।

तिथि के घटयात्मक मान के लिए अनुपात करने पर यदि चन्द्र सूर्य गत्यन्तर में ६० घटी हो तो भुक्तांश या भोग्यांश क्या?

$$\frac{\text{तिथिभुक्तांश} \times ६० \text{ घ.}}{\text{चन्द्रगति} - \text{सूर्यगति}} = \frac{\text{ति. भु.} \times ६० \text{ घ.}}{\text{चन्द्रगति} - \text{सूर्यगति}} = \text{भुक्त घटयात्मक मान।}$$

$$= \frac{\text{तिथिभोग्यांश} \times ६० \text{ घ.}}{\text{र.च. गत्यन्तर}} = \text{ल.} + \frac{\text{शे}}{\text{ग.अ.}} = \text{घटयात्मकभोग्यमान।}$$

भुक्तघटी + भोग्यघटी = पूर्ण तिथिभोग।

उदाहरण –

सूत्र के परिप्रेक्ष्य में ७ -१५° – २५ – ३५ स्पष्टचन्द्र -१-१५°-२५-३५ स्पष्ट सूर्य। दोनों का अन्तर = ६ राशि।

६ × ३०° = १८०° । १८०° ÷ १२ = १५वीं पूर्णिमान्तकाल। घटयादिमान पूर्वसूत्र से सुगमता से ज्ञात होता है।

1.3.2 तिथियों का नाम, स्वामी तथा संज्ञायें

प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी,दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पंचदशी ये १५ तिथियाँ दोनों पक्षों (कृष्ण व शुक्ल पक्ष) में नाम से समान होती है। शुक्लपक्ष में १५ वीं पूर्णिमा एवं कृष्णपक्ष में १५ वीं तिथि को अमावस्या ३० वीं तिथि कहते है। शुक्लप्रतिपदा से कृष्णपक्ष की अमावस्या तक कुल ३० तिथियाँ सूर्य चन्द्र की एक युति से अग्रिमयुति पर्यन्त कालगणना ही तिथिसाधन का मुख्य आधार है। सूर्य से चन्द्रमा का प्रतिदिन का अन्तर १२° होने पर एक तिथि होती है। यही अंशान्तर अंशात्मक तिथिभाग प्रतिदिवसीय गत्यन्तर से सम्पन्न होती है।

प्रतिपदा से पूर्णिमा तक क्रमशः १. अग्नि २. ब्रह्मा ३. गौरी ४. गणेश ५. सर्प ६. कार्तिकेय ७. सूर्य ८. शिव ९. दुर्गा १०. यम ११. विश्वदेव १२. विष्णु १३. कामदेव १४. शिव १५ के चन्द्रमा एवं ३० के पितर कहे गये हैं। चन्द्रमा को पंचदशी तिथि का स्वामी मानना वेद काल के विचारों का प्रभाव है। जैसे –जैसे तिथियों पर चिन्तन बढ़ा वैसे-वैसे सूक्ष्म अंश विचारों में उपनिबद्ध हुए। पूर्णिमा और अमावस्या की भी दो स्थितियाँ बनती हैं। पूर्णिमा तिथि में रात्रिपर्यन्त पूर्णिमा का घटयादिमान स्थित हो उसे 'राका' कहा गया। पूर्णिमा तिथि में प्रतिपदा का मान अधिकाधिक प्रविष्ट कर चुका हो उसे अनुमति कहा गया। यहाँ तक कि इसका साहित्य जगत् में भी प्रचार हुआ – 'राका सुधाकरमुखी तरलायताक्षी' आदि। अमावस्या में रात्रि में शुक्लप्रतिपदा का घटयादिमान अधिक हो तो उसे सिनीवाली कहा गया। प्राचीनकाल में में यही अच्छी तरह से ज्ञात था कि शुक्लप्रतिपदा में चन्द्र दिखे या न दिखे पर रात्रिपर उसका चन्द्रकला का प्रभाव रहता है। यह गणितागत मान का प्रभाव था।

तिथियों की संज्ञायें –

तिथियों का नाम	**संज्ञा**
प्रतिपदा, एकादशी, षष्ठी 1,11,6	नन्दा
द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी 2,7,12	भद्रा
तृतीया, अष्टमी, त्रयोदशी 3,8,13	जया
चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी 4,9,14	रिक्ता
पंचमी, दशमी, पूर्णिमा/ अमावस्या 5,10,15	पूर्णा

1.4 तिथि साधन में विशेष

तिथि साधन में सूर्य चन्द्र राश्यादि अन्तर की कलाओं से अनुपात द्वारा वर्तमान तिथि का भुक्त तथा भोग्य मान ज्ञात होता है। सूर्यगति एवं चन्द्रगति की अन्तर कलाओं से तिथि का घटी पलात्मक मान ज्ञात किया जाता है।

तिथिक्षय – जिस तिथि में दो सूर्योदय हो, उसे क्षयतिथि कहते हैं। क्षय तिथि पड़ने पर एक अहोरात्र में तीन तिथियों की सन्धियाँ होती हैं। इस प्रकार से पूर्वतिथि सूर्योदय के बाद ७ घटी के भीतर कभी भी समाप्त हो जाती है। सूर्योदय बिना द्वितीया तिथि का प्रारम्भ औदयिक तिथि के बाद होता है। द्वितीय सूर्योदय से कुछ देर पहले से ५ घटी पूर्व तक कभी भी वह समाप्त हो सकती है। तिथि का क्षय प्रमाण परम १० घटी तिथिमान परमाल्प ५० घटी तक पहुँच जाता है। तीसरी तिथि दूसरे सूर्योदय से कुछ पूर्व ही प्रारम्भ होती है। इस स्थिति को क्षय तिथि कहते हैं।

तिथि क्षय तथा वृद्धि का परिज्ञान –

शक १९२९, संवत् २०६४ श्रावणशुक्ल तृतीया बुध दिनांक १५ अगस्त २००७, ३ गुरू ६०घटी २ मंगल५८/३५ , ३ बृह. ०१/०७ है। ६० – ५८/३५ = ०१ घ.२५ प. द्वितीया के बाद तृतीया मंगल को पूर्ण एवं गुरू का तिथिवृद्धि के रूप में ०१/३५ घटी रहेगी। क्षय में इसी वर्ष भाद्रकृष्ण रविवार को षष्ठी का क्षय है। इसी दिनांक को पंचमी का मान ०/०७ है। अत: इस मान को ६०- ०/०७ = ५९/५३ रविवार को षष्ठी एवं सप्तमी के संयुक्त मान से ५९/५३२ -५३/५०षष्ठी का मान = ०६/०३ द्वितीय सूर्योदय सोमवार से पूर्व से ही सप्तमी का भोग षष्ठयन्त के बाद जानना चाहिए। यही तिथि क्षय है।

तिथि वृद्धि - जब एक तिथि में दो सूर्योदय हो तथा तिथि भोग तीन दिवस में पूर्व दिन का स्पर्श वर्तमान दिन पूर्ण अहोरात्र ६० घ. = २४ घं. तक तथा तीसरे दिन द्वितीय सूर्योदय के पश्चात् के बाद भी कुछ समय तक रहे तो उसे तिथिवृद्धि कहते है।

इस स्थिति में तिथिमान ६९ घटी = २७ घं. ३६ मि. तक पहुँच सकती है। प्रथम सूर्योदय से पूर्व ही तिथ्यारम्भ हो तथा द्वितीयसूर्योदय के बाद तक भी तिथि व्याप्त रहे तो तिथिवृद्धि कहते है।

उदाहरण –

संवत् २०६४, शक १९२९ श्रावणशुक्ल द्वितीया मंगल, दिनांक १४ अगस्त २००७ को घ. ५८ प. ३५ तक घं. ४ मि. ५६ A.M. (मध्यरात्रि के बाद तक) है।

६० घ. -५८ घ.३५ प. = १ घ. २५ पं. मात्र मंगलवार को तृतीया है। बुधवार को सूर्योदय से पूर्व मंगलवार को तृतीया तिथि प्रारम्भ है। बुधवार को तृतीया ६० घं. = २४ घंटा है। तत्पश्चात् गुरूवार

को सूर्योदय के पश्चात् केवल १ घ. १७ पल तृतीया है।

अत: ६० घ. + १ घ. २५ प. + १ घ. १७ प. = ६२ घ. ४३ प. तृतीया का मान प्रतीत होने से वृद्धि मानी जायेगी। तृतीया तीन दिवस तक व्याप्त रही। बुधवार तथा गुरूवार को एक तिथि में दो सूर्योदय हुए।

शुद्ध तिथि – जिस तिथि में केवल एक सूर्योदय हो। मध्यम तिथि ६० घटी से छोटी होती है। धर्मशास्त्रीयदृष्टि से तिथ्यारम्भ तथा अवसान के कालभेद से व्रतपर्व उत्सव जयन्ती प्रभृति के लिए अनेक प्रकार के विचार होते हैं।

अभ्यास प्रश्न – 2

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. चक्र कला का मान होता है –

   क. २१००० ख.२१६०० ग. २२००० घ. २३०००

2. १२° = ?

   क. १ तिथि ख. २ तिथि ग. ३ तिथि घ. कोई नहीं

3. षष्ठी तिथि का स्वामी कौन है ?

   क. अग्नि ख. ब्रह्मा ग. कार्तिकेय घ. गौरी

4. मधुमिक्खयाँ किस पक्ष में मधु संचय करती है –

   क. शुक्ल ख. कृष्ण ग. दोनों घ. कोई नहीं

5. तिथियों के क्रम में सप्तमी के पश्चात् कौन आता है –

   क. पंचमी ख. षष्ठी ग. अष्टमी घ. नवमी

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि तिथि का अन्वेषण ऋषि परम्परा में ज्योतिष शास्त्र के लिए अपूर्व उपलब्धि मानी गयी। तिथि निर्धारण से ही सूर्य और चन्द्रमा के सभी प्रकार के सम्बन्ध सुव्यवस्थित हो सके। सूर्योदय के बाद सूर्यास्त तत्पश्चात् पुन: पुन: सूर्योदय एवं सूर्यास्त। इसमें कहीं ऐसा मानक नहीं था जिसे स्थिर बिन्दु मान कर सम्बन्धों का सत्यापन हो सके। वैदिक ऋषि प्राकृतिक यज्ञ को भी उतनी ही तन्मयता से समझता था जितनी तन्मयता से उपकरण वैध यज्ञ को जानता था। अरण्य या सरस्वती नदी के तट पर निरभ्र या साभ्र आकाश के नीचे प्रतिदिन सूर्य (दिनेश) का निकलना और ढलना (सूर्यास्त) ऋषिगण अपनी आँखों से देखते रहे। दिन में समस्त

वातावरण प्रकाश स्नात होता रहा और रात्रियाँ अंधकारपूर्ण होती रहीं। इन रात्रियों की दो प्रकार की स्थितियाँ बनती रहीं – प्रकाश पूर्ण रात्रियाँ और अन्धकारपूर्ण रात्रियाँ। इन रात्रियों ने ही वैज्ञानिक मन को सोचने के लिए विवश किया। पूर्णिमा की सांध्यवेला में पूर्वी क्षितिज पर पूर्ण चन्द्र का दिखलायी देना और धीरे धीरे प्रतिदिन उसका क्षीण होना निरन्तर ध्यान में आता रहा। ऐसा प्रतीत होने लगा कि चन्द्रमा पूर्णता को पन्द्रहवें दिन प्राप्त कर रहा है। इसीलिए उस तिथि या रात्रि को पूर्णा या पूर्णिमा कहा गया। क्या आकाश में पन्द्रह चन्द्रमा उगते हैं? अथवा एक ही चन्द्रमा पन्द्रह प्रकार का स्वरूप धारण करता है? ऋषि ने कहा नहीं, नहीं, एक ही चन्द्रमा पंचदशी की रात्रि में पूर्णता प्राप्त करता है और दूसरी पंचदशी की रात्रि में क्षीण हो जाता है। इस प्रकार से यह सुनिश्चित तथ्य सामने आ सका कि चन्द्रमा एक ही है। प्रतिपदा से लेकर अमावस्या/ पूर्णिमा पर्यन्त पन्द्रह तिथियाँ होती है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

तिथि – सूर्य एवं चन्द्रमा का १२° का गत्यात्मक अन्तर तिथि कहलाता है। प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा व अमावस्या पर्यन्त पन्द्रह तिथियाँ होती है।

पूर्णिमा – शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि का नाम पूर्णिमा है। इस तिथि को चन्द्रमा पूर्ण कलाओं के साथ आकाश में उदित होता है।

अमावस्या – कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि का नाम अमावस्या है। इस तिथि को धरती पर रात्रि में अंधकार होता है। अमावस्या के दो भेद है – सीनि और कुहूवाली।

दिनेश – दिन के ईश अर्थात् स्वामी को दिनेश कहा जाता है। जिसे हम सूर्य के रूप में जानते है।

जया – यह तिथियों की संज्ञा है। तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथि को जया कहा जाता है।

भद्रा – तिथियों के अन्तर्गत भद्रा भी संज्ञा है। द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशी को 'भद्रा' कहा जाता है। विष्टि नामक करण को भी भद्रा कहा जाता है, जो प्राय: अशुभकारक माना जाता है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 की उत्तरमाला

1. सूर्य 2. तिथि 3. अमावस्या 4. १२ 5. प्रतिपदा 6. भद्रा 7. गौरी

अभ्यास प्रश्न -2 की उत्तरमाला

1. ख 2. क 3. ग 4. क 5. ग

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ग्रहलाघवम् - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

2. तैतरीय ब्राह्मण

3. पंचांग साधन – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र

4. ज्योतिष शास्त्र – डॉ0 कामेश्वर उपाध्याय

5. भारतीय ज्योतिष – डॉ0 शंकरबालकृष्ण दीक्षित

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. केशवीय जातक पद्धति

2. ज्योतिष सर्वस्व

3. भारतीय कुण्डली विज्ञान

4. भारतीय ज्योतिष

5. ग्रहलाघवम्

6. सूर्यसिद्धान्त

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. तिथि का विस्तृत वर्णन कीजिये।

2. स्वकल्पित तिथि साधन कीजिये।

3. तिथियों का उल्लेख करते हुए उनका महत्व निरूपण कीजिये।

4. ज्योतिषशास्त्र में तिथियों का क्या योगदान है? स्पष्ट कीजिये।

5. तिथि साधक सूत्र लिखिये।

इकाई – 2 वार साधन

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के द्वितीय खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – वार साधन। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने तिथि के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप पंचांग के और एक रूप **वार** के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

सर्वविदित है कि वार सात होते है। रविवार से शनिवार पर्यन्त। किन्तु ये कम लोगों को ज्ञात होगा कि दुनिया को वार का ज्ञान भारतवर्ष ने सर्वप्रथम कराया था। वारक्रम ज्योतिषशास्त्र की देन है।

आइए इस इकाई में वार का ज्ञान करते हुए उसके गणितीय अवयवों को भी समझने का प्रयास करते है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि वार किसे कहते है।
- को ज्ञात हो जायेगा कि वार का मान कितना होता है।
- वार के गणितीय अवयव को समझ लेंगे।
- अच्छी तरह से वार का साधन कैसे किया जाता है, जान जायेंगे।

2.3 वार परिचय

सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक जैसे क्रम में स्थित सात वारों का प्रचलन है। ये हैं रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार एवं शनिवार। जिन देशों और सभ्यताओं में दस दिनों के वार थे अथवा तीस दिनों के नाम थे उन्होंने भी अपने व्यवहार में संशोधन करके वारक्रम को ठीक कर लिया। आज पूरे विश्व में ऋषियों द्वारा स्थापित वारक्रम को स्वीकृत कर लिया गया है। यह वारक्रम भूकेन्द्रीय कक्षाक्रम के युग में निर्धारित कर लिया गया था। केप्लर के सूर्यकेन्द्रीय कक्षाक्रम को वैज्ञानिकी स्वीकृति मिलने के बाद भी वारों के क्रम को वैसे ही रहने दिया गया। विज्ञानवाद के इस युग में 'रविवार' के स्थान पर 'भूवार' या पृथ्वीवार नहीं लाया गया अन्यथा सोमवार चन्द्रमा के उपग्रह होने के कारण वारक्रमों से बाहर हो जाता। वारों के नामकरण की प्राचीन भारतीय उपपत्ति पर विचार करने से पूर्व 'वार' पर विचार करते है।

वार – एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय के मध्यवर्ती काल को 'वार' कहते हैं। सूर्य के अर्धबिम्ब दर्शन से वार की प्रवृत्ति मानी गयी है। सूर्योदय से वारप्रवृत्ति मानने की स्वीकृति अनेक ग्रन्थों में हैं, जैसे –

ते चार्कोदयोरेव विवरे तु समा: स्मृता:। (पुलस्त सिद्धान्त:)

अर्कोदय अर्थात् सूर्योदय से ही वार प्रवृत्ति और वर्षप्रवृत्ति होनी चाहिए। शून्य अक्षांश पर बसी रावणराजधानी लंका नगरी को वारप्रवृत्ति का मानबिन्दु माना गया –

प्रभाकरस्योदयनात् पुरे स्याद् वारप्रवृत्तिर्दशकन्धरस्य।

वसिष्ठसंहिता के आधार पर यह नियत किया जा सका कि वासर आरम्भ सूर्योदय से माना जाना चाहिए। भास्कराचार्य ने इस विषय को और अधिक स्पष्ट कर दिया –

लंकानगर्यामुदयाच्चभानो-
स्तस्यैव वारे प्रथमं बभूव।
मधो: सितादेर्दिनमानसवर्ष
युगादिकानां युगपत् प्रवृत्ति:।।

भारतीय मान्यता के अनुसार शून्याक्षांश स्थित लंका नगरी में चैत्र शुक्ल प्रतिपदा, रविवार के दिन से वार, सप्ताह, मास, वर्ष, युग आदि की प्रवृत्ति हुई। यहाँ प्रवृत्ति का अर्थ है आरम्भ। ज्योतिर्निबन्ध परवर्ती निबन्धग्रन्थ है। इसमें युगीन मान्यताओं और स्वीकृति को ही सिद्धान्तों में लिया गया है। इसमें भी वार प्रवृत्ति सूर्योदयकालिकी ही है –

वारप्रवृत्तिं मुनयो वदन्ति सूर्योदयाद् रावणराजधान्याम्।

शून्य अक्षांश पर स्थित लंका नगरी भारतवर्ष के लिए खगोलीय महत्व की नगरी है। यद्यपि आज यह समुद्र में डूब गयी है, पर प्राचीनकाल में इसका सद्भाव था। द्वारकापुरी की तरह यह भी समुद्र के गर्भ में चली गयी। आज द्वारकापुरी समुद्रविज्ञानियों द्वारा ढूँढ़ ली गयी है। अत: यह संदेह करना कि लंका काल्पनिक नगरी है भारतीय साहित्य और ज्योतिष को झुठलाना होगा। पृथ्वी का स्वरूप बनता बिगड़ता रहता है। यूरोप के लिए जिस तरह से 'ग्रीनवीच' भौगोलिक महत्व का है उससे अधिक महत्त्व की है 'लंका' भारतीयों के लिए। वर्तमान लंका ६ और ८ अक्षांश के बीच है। लंका की प्राचीन भौगोलिक स्थिति शून्य अक्षांश से १० अक्षांश तक समुद्र में भारत के समानान्तर उत्तर दक्षिण की ओर फैली हुयी थी। इसके छोटे-छोटे भूभाग (त्रिकूट, द्विकूट) आदि धीरे-धीरे समुद्र गर्भ में समा गये।

सूर्यसिद्धान्त वारप्रवृत्ति अर्द्धरात्रि से मानता है। आज कम्प्यूटर कुण्डलियों में भी वारप्रवृत्ति आधी रात से ही मानी जा रही है। सूर्यसिद्धान्त द्वारा रात्र्यर्द्ध से वारप्रवृत्ति की स्वीकृति ने एक व्यापक गणितीय सरलता को जन्म दिया –

'वारप्रवृत्ति: प्राग्देशे क्षपार्द्धेऽभ्यधिके भवेत्।। (सूर्यसिद्धान्त, १/६६)

अर्द्धरात्रि और मध्याह्न की प्रवृत्ति उत्तर दक्षिण रेखा पर बसे सभी स्थानों, नगरों में एक ही समय में होती है। अत: रात्र्यर्द्ध से वार प्रवृत्ति मानने का प्रचलन तेजी से बढ़ा। सूर्योदय एक वर्ष में मात्र दो बार ही (मार्च, सितम्बर) एक रेखा पर भी बराबर होता है। सूर्योदय के लिए प्रतिदविसीय क्रान्ति और अक्षांश द्वारा गणित करने पर अन्तर आता रहता है। यद्यपि देशान्तर रात्र्यर्द्ध और सूर्योदय दोनों को स्थान भेद से प्रभावित करता है।

वारप्रवृत्ति के इन दोनों उदाहरणों रात्र्यर्द्ध और सूर्योदय कालिक ने भारतीय ज्योतिष की गणना की ऊँचाई को प्रदर्शित किया है। लोक जीवन में इन दोनों प्रवृत्तियों का उपयोग आज भी हो रहा है। उदाहरण के लिए सूर्योदय के पूर्व संकल्प में सूर्योदय कालिक वार का प्रयोग करना। धर्मसिन्धु में दिया गया है कि सूर्योदय से तीन घटी पूर्व अग्रिम दिन वाली प्रात: संध्या होती है – 'सूर्योदयात् प्राक् घटिकात्रयं प्रात: सन्ध्या।' इसमें सन्ध्या वन्दन किया जाता है। यह अर्द्धरात्रिक वार प्रवृत्ति के प्रभाव का प्रमाण है। जयन्ती तिथियों में सूर्योदय कालिकी तिथियों का महत्व होता है।

वार प्रवृत्ति के मामले में रात्र्यर्द्ध कालिक प्रचलन को यूरोपीय प्रभाव समझना अज्ञानता है। कुछ अंग्रेज इतिहासकार इस प्रवृत्ति को पश्चिम का प्रभाव मानते हैं जो औचित्यहीन और ऐतिहासिक दृष्टि से विभ्रमपूर्ण है।

वार संख्या – सावन मान अर्थात् पृथ्वी के दिन के अनुसार सात वार होते हैं – 'अथ सावनमानेन वारा: सप्तप्रकीर्तिता:।' (पुलस्तसिद्धान्त:)
सावन दिन का अर्थ है अपने क्षितिज का दिन – 'उदयादुदयं भानोर्भूमि सावन वासर:'(सूर्यसिद्धान्त:)
ये सप्तवार हैं – रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार और शनिवार।

वार क्रम का सिद्धान्त – यद्यपि यह ब्रह्माण्ड अनन्तकाल परिमाण तक फैला है फिर भी हम जिस सौरमण्डल में हैं उसमें प्रमुखरूप से सातवार पठित हैं। ब्रह्माण्ड को महाबिलम्, महाछिद्र या सुषिर भी कहते हैं। हमारे सौर मण्डल में प्राचीन मत के अनुसार पृथ्वी, चन्द्र, बुध, सूर्य, मंगल, गुरू, शनि स्थित हैं। इनके ऊपर नक्षत्र मण्डल हैं। आधुनिक मत के अनुसार पृथ्वी के स्थान पर केन्द्र में सूर्य स्थित है। प्राचीन कक्षा क्रम में शनि से नीचे की ओर चौथे पिण्ड को वार का अधिपति माना गया – आगे आप क्षेत्र द्वारा समझ सकते है –
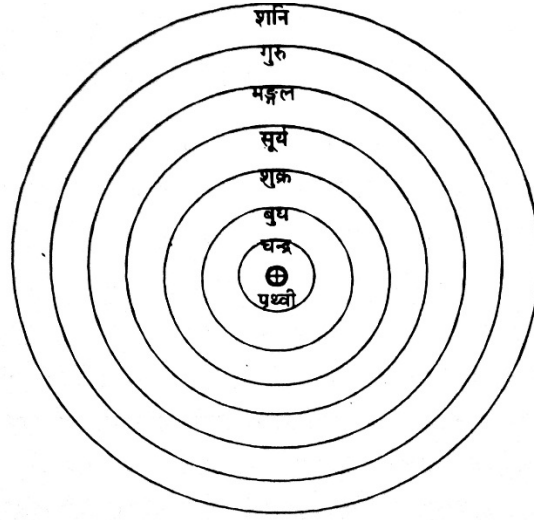
इस क्रम से स्पष्ट है कि शनि से चौथा सूर्य, सूर्य से चौथा चन्द्र, चन्द्र से चौथा मंगल, मंगल से चौथा बुध, बुध से चौथा गुरू, गुरू से चौथा शुक्र, शुक्र से चौथा शनि वार का अधिपति होने से यही वार क्रम निर्मित हुआ। प्राचीनकाल में पृथ्वी को केन्द्र मानकर अन्य समीपवर्ती ग्रहों के कक्षा क्रम को निर्धारित किया जाता था। आधुनिक युग में सूर्य को केन्द्र मानकर गणितकर्म किया जा रहा है। मनुष्य का कर्म क्षेत्र पृथ्वी है और सौरमण्डल का कर्मबिन्दु सूर्य है। प्राचीन आचार्य भी सूर्य के केन्द्रत्व रहस्य से परिचित थे। इसीलिए सूर्य को उन्होंने आत्मा ग्रह कहा।

सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ का भूगोलाध्याय वारप्रवृत्ति के वैज्ञानिक पक्ष को सामने रखता है –

मन्दादध: क्रमेण स्युश्चतुर्धा दिवसाधिपा:।
वर्षाधिपतयस्तद्वत्तृतीयाश्च प्रकीर्तिता:।।
उर्ध्वक्रमेण शशिनो मासानामधिपा: स्मृता:।
होरेशा: सूर्यतनयादधोऽध: क्रमशस्तथा।।

ग्रहों के प्राचीनकक्षाक्रम (भारतीय आचार्यों द्वारा प्रदत्त) से वारों का क्रम निर्धारित हो सका। ऐसा वैज्ञानिक क्रम अन्यत्र कहीं दिखलाई नहीं देता।

इन दो श्लोकों में ग्रन्थकार ने वार क्रम, वर्षपति, मासपति और होरेश का ज्ञान कराया है। पहले मास का अधिपति ग्रह जो होगा वारों के क्रम से तीसरा वार आने वाले सावनमास का पहला दिन होगा तथा उसका स्वामी मासपति होगा। मासपतियों का क्रम वारक्रम से एक अन्तर पर होता है – सूर्य, मंगल, गुरू, शनि, सोम, बुध एवं शुक्र।

वर्षपतियों में वारक्रम चतुर्थ अन्तर से निम्नलिखित रूप में बनता है – रवि, बुध, शनि, मंगल, शुक्र, सोम तथा गुरू। इन्हीं का अनुवर्तन होता रहता है। ध्येय है यह क्रम चान्द्रमासों या चान्द्रवर्षों का नहीं है। यह क्रम सावन मासों एवं वर्षो का है। आज व्यवहार में यह नहीं चलता है। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा के दिन जो वार होता है उसी का ग्रह वर्षेश होता है। इन दिनों वर्षेश और वर्षमन्त्री जानने के लिए संवत्सरग्रन्थों का आश्रय लिया जाता है।

वारप्रवृत्ति में होरा का महत्व – वारों का नाम सूर्यादि सात ग्रहों के नाम पर रखा हुआ है। जिस दिन जो वार होता है उस दिन उस ग्रह की प्रथम होरा होती है। होराक्रम भी वार क्रम की तरह होता है। प्रतिदिन सात घण्टे के बाद होरा का क्रम आवर्तित होने लगता है।

इस प्रकार से सूर्यसिद्धान्त ग्रन्थ के द्वारा वार क्रम जानने की दो विधियाँ सामने आती हैं –

१. ग्रहकक्षाक्रमविधि
२. होराक्रमविधि

दोनों विधियों में पूरकता भी है। होराक्रम और अधिक सूक्ष्मता को प्रदर्शित करता है। ऐसा विवेचन विश्व के अन्य किसी भी स्थान में नहीं प्राप्त हुआ है।

एक होरा एक घंटा या ढ़ाई घटी की होती है। अपने वार में पहली होरा अपने वार ग्रह की होती है। बाद की होराओं का क्रम निम्नलिखित होता है – सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र, शनि, गुरू एवं मंगल। होरा सारिणी से यह स्थिति समझ में आ जायेगी –

काल होरा सारिणी –

घंटा	रविवार	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरूवार	शुक्रवार	शनिवार
१	सू.	चं.	मं.	बु.	वृ.	शु.	श.
२	शु.	श	सू	चं.	मं.	बु.	बृ.
३	बु.	बृ.	शु.	श.	सू.	चं.	मं.
४	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	सू.
५	श.	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.
६	वृ.	शु.	श.	सू.	चं.	मं.	बु.
७	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	सू.	चं.
८	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
९	शु	श.	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.
१०	बु.	बृ.	शु.	श.	सू.	चं.	मं.
११	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	सू.

१२	श.	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.
१३	बृ.	शु.	श.	सू.	चं.	मं.	बु.
१४	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	सू.	चं.
१५	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
१६	शु.	श.	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.
१७	बु.	बृ.	शु.	श.	सू.	चं.	मं.
१८	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	सू.
१९	श.	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.
२०	बृ.	शु.	श.	सू.	चं.	मं.	बु.
२१	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.	सू.	चं.
२२	सू.	चं.	मं.	बु.	बृ.	शु.	श.
२३	शु.	श.	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.
२४	बु.	बृ.	शु.	श.	सू.	चं.	मं.

अभ्यास प्रश्न -1

1. लंका का अक्षांश है –

   क. १०° ख. 0° ग. २०° घ. ३०°
2. आचार्य भास्कराचार्यानुसार वार प्रवृत्ति कहाँ से आरम्भ हुई?

   क. लंका ख. चीन ग. ग्रीनह्वीच घ. अमेरिका
3. एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय के मध्यवर्ती काल को क्या कहते है?

   क. वार ख. तिथि ग. नक्षत्र घ. योग
4. सूर्यसिद्धान्त वारप्रवृत्ति कब से मानता है?

   क. मध्याह्न से ख. अर्द्धरात्रि से ग. सूर्योदय से घ. सूर्यास्त से
5. 'मन्दादध: क्रमेण स्यु: चतुर्थ दिवसाधिपा:' कहाँ की उक्ति है –

   क. सूर्यसिद्धान्त ख. सिद्धान्तशिरोमणि ग. ग्रहलाघवम् घ. कोई नहीं

काल होरा की उपयोगिता –

जैसे किसी को नौकरी आरम्भ करनी है और उस दिन शनिवार हो तो ऐसी स्थिति में सूर्य की होरा आने पर वह व्यक्ति सेवा आरम्भ कर सकता है। शनिवार के दिन सूर्योदय के ठीक तीन घण्टे

बाद सूर्य की होरा आयेगी जो एक घंटा तक रहेगी। यदि कार्य दिवस और कार्य समय पकड़ में न आये तो शुक्र या बुध की होरा में भी व्यक्ति सेवा आरम्भ कर सकता है। ऐसे समय में अर्थात् अभीष्टवार की काल होरा में आरम्भ किया हुआ कार्य नष्ट नहीं होता। इस प्रक्रिया को अवश्य ही व्यवहार में लाना चाहिए। दिक् शुल, यात्रा, परिघ, दण्ड आदि त्याज्य कर्म में वार होरा बहुत महत्वपूर्ण मानी गयी है। इस सारिणी के अनुसार व्यवहार में शुभ होरा को लाया जा सकता है।

काल होरा का महत्त्व -

कभी कभी किसी भी वार में किसी अन्य वार विशेष का काम करना पड़ जाता है। ऐसी अवस्था में काल होरा का आश्रय लिया जाता है। प्रत्येक वार में सात वार भ्रमण करते रहते हैं। ऐसी स्थिति में यदि व्यक्ति को ज्ञान हो तो किसी वार विशेष में भी वह किसी विशिष्टवार का शुभ या अशुभ कर्म कर सकता है –

तस्य ग्रहस्यवारे यत्किंचित् कर्मप्रकीर्तितम्।
तत् तस्य कालहोरायां सर्वमेवविधीयते।। (वृहद्दैवज्ञरंजन २३/३३)

इस प्रमाणवचन से यह सिद्ध होता है कि अभीष्टवार की काल होरा आने पर किसी भी वार में अभीष्ट कार्य किया जा सकता है। ज्योतिषशास्त्र में सात ग्रहों की प्रकृति और उनमें सम्पादित होने वाले कार्यों का उल्लेख मिलता है। अत: किसी ग्रह विशेष का काम भी उसकी काल होरा में किसी भी दिन किया जा सकता है –

यस्य खेटस्य यत्कर्म वारे प्रोक्तं विधीयते।
ग्रहस्य क्षणवारेऽपि तस्य तत्कर्म सर्वदा ।।(मुहूर्त्तचिन्तामणि, पीयूषधारा टीका,५४)

वारों की शुभ, अशुभ संज्ञा –

चन्द्रमा, बुध, वृहस्पति, शुक्र ये शुभ वार हैं। सूर्य, मंगल एवं शनि अशुभ या क्रूर वार हैं। आज विश्व के वैज्ञानिकों और तार्किकों के द्वारा यह स्थापित किया जाता है कि सूर्य के परिभ्रमण क्रम में पृथ्वी का प्रतिदिवसीय घूर्णन दिन और रात्रि को बनाता है। अत: वारों की शुभता या अशुभता एक व्यर्थ कल्पना है। ध्येय है ज्योतिषशास्त्र द्वारा वारों की शुभता-अशुभता का प्रतिपादन जीवन के व्यावहारिक पक्ष और परिणाम को लेकर है। किसी देश का स्वातन्त्रय दिवस, किसी परिवार में बच्चे का जन्म शुभ माना जाता है। उसी तरह मृत्यु दिवस या परतंत्रता दिवस अशुभ माना जाता है। यौगिक प्रक्रिया द्वारा भी इसकी परीक्षा हुई है।

वारों में विहित कर्म – प्रत्येक वार की प्रकृति अलग-अलग होने से उनके दिनों में करणीय कार्यो का वर्गीकरण पृथक्-पृथक् किया गया है।

रविवार में करणीय – जिस दिन रविवार हो राज्याभिषेक, उत्सव, वाहन क्रय-विक्रय, सेवा नौकरी, गो, अग्नि, मन्त्र से सम्बन्धित कर्म, औषध, शास्त्र, स्वर्ण, ताँबा, ऊन, चमड़ा, काष्ठ, युद्ध और व्यापारादि से सम्बन्धित कार्य किया जाता है।

राजाभिषेकोत्सवयानसेवागोवह्निमन्त्रौषधिशस्त्रकर्म।
सुवर्णताम्रोर्णिकचर्मकाष्ठसंग्रामपण्यादि रवौ विदध्यात्।।

चित्रकला, धातुकला, आभूषण निर्माण, लाह, बाजार सम्बन्धी,कार्य भी रविवार को होता है।

सोमवार में करणीय – सोमवार के दिन शंख,कमल, मोती, चाँदी, ईख, भोजन सम्बन्धी कार्य, स्त्री, वृक्ष, कृषि-कर्म, जल, आभूषण, गीत, यज्ञ, दुग्ध, पुष्प, विद्यारम्भ से सम्बन्धित सभी कार्य को किया जा सकता है – वास्तुकर्म, नृत्यारम्भ आदि भी सोमवार को आरम्भ किया जा सकता है –

शंखाब्जमुक्तारजतेक्षुभोज्यस्त्रीवृक्षकृष्यम्बुविभूषणाद्यम्।
गीतक्रतुक्षीरविकारश्रृंगीपुष्पाक्षरारम्भणमिन्दुवारे।।

मंगलवार में करणीय –

मंगल के दिन भेद नीति, झूठ, चोरी, आरोप, जहर, अग्नि,शस्त्र, बंधन, अभिघात, युद्ध, कपट, दंभ, सैन्यकर्म, खनिज कर्म, स्वर्ण, धातु, मूँगा, रक्त एवं लाल वस्तु से सम्बन्धित कार्य किया जा सकता है। इन कार्यों के लिए मंगल बहुत सफलतादायी होता है।

भेदानृतस्तेयविषाग्निशस्त्रबन्धाभिघाताहवशाठयदम्भान्।
सेनानिवेशाकरधातुहेमप्रवालकार्यादि कुजेऽह्निकुर्यात्।।

बुधवार में करणीय – बुधवार के दिन विद्या, चातुर्य, पुण्य, कल्प, शिल्पविद्या, नौकरी, लेखन लिपि, धातुकर्म, स्वर्ण, युक्ति, मित्रता, व्यायाम, वाद- विवाद, गणितविद्या, वेदाध्ययन, नैपुण्य कर्म आदि से सम्बन्धित कार्य को करना चाहिए –

नैपुण्यपुण्याध्ययनं कलाश्च शिल्पादिसेवालिपिलेखनानि।
धातुक्रियाकांचनयुक्तिसन्धिव्यायामवादाश्चबुधे विधेया:।।

गुरूवार में करणीय –

गुरूवार के दिन धार्मिक, पौष्टिक, यंत्र, विद्या, मांगल्य सुवर्ण, वस्त्र, घर, यात्रा, रथ, घोड़ा, औषध, आभूषण, उद्यान आदि से सम्बन्धित क्रिया की जा सकती है। अत्यन्त शुभ कर्म वृहस्पतिवार को सम्पन्न किये जाते हैं –

धर्मक्रियापौष्टिकयज्ञविद्यामांगल्यहेमाम्बरवेश्मयात्रा।
रथाश्वभैषज्यविभूषणाद्यं कार्यं विदध्यात्सुरमंत्रिणोह्नि।।

शुक्रवार में करणीय – शुक्रवार के दिन स्त्री संगीत, शय्या, मणि, रत्न, गंध, वस्र, उत्सव, अलंकार, भूमि, व्यापार, गो, द्रव्य, कोष, कृषिकर्म, हीरा, मोती, चाँदी, सुगन्धद्रव्य, उद्यान, पुष्परचना, अश्वकर्म आदि अनेक शुभ कार्य किये जाते हैं-

स्त्रीगीतशय्यामणिरत्नगन्धं वस्रोत्सवालंकरणादि कर्म।

भूपण्यगोकोशकृषिक्रियाश्च सिध्यन्ति शुक्रस्य दिने समस्तम्॥

शनिवार में करणीय – शनिवार के दिन लोहा, पत्थर, जस्ता, शीशा, पीतल, नौकर, शस्त्र, झूठ, पाप, चोरी, विष, निंद्यकर्म, शराब, निर्माणादि, हाथीक्रय, गृहप्रवेश, हाथी बन्धन, दीक्षा और स्थिर कर्म से सम्बन्धित प्रत्येक कार्य को किया जा सकता है। गदहा, ऊँट, तुलादान, शनिदान आदि से सम्बन्धितकर्म को भी शनि के दिन किया जा सकता है।

लोहश्मसीसत्रपुरस्रदास पापानृतस्तेयविषासवाद्यम्।

गृहप्रवेशो द्विपबन्धदीक्षा स्थिरं च कर्मार्कसुतेऽह्नि कुर्यात्॥

स्थिरादि संज्ञा – रविवार को स्थिर, चन्द्र को चर, मंगल को उग्र, बुध को मिश्र, गुरू को लघु, शुक्र को मृदु और शनि को तीक्ष्ण कहते हैं। इन वारों में इनकी संज्ञा के अनुरूप कार्य किया जाता है।

वारों की वैश्विक समीक्षा –

भारतीय आचार्यों के अनुसार सृष्टि का समारम्भ रविवार के दिन हुआ था, क्योंकि वार की प्रवृत्ति पृथ्वी ही नहीं किसी दूसरे पिण्ड पर भी सूर्योदय के ही कारण होगी। सूर्य सौरमण्डल का प्रथम ग्रह होने के कारण आत्मा ग्रह के रूप में भारत में स्वीकृत था। उसमें स्वशक्ति उत्पादन क्षमता और पर शक्ति वृद्धि क्षमता दोनों होने से आत्मा ग्रह माना गया। अत: सूर्य किरणों का अपने –अपने स्थान से सम्पर्क के कारण दिन होता है। इसलिए प्रथम दिन रविवार ही होगा। वारों की प्रथम होरा पर उस ग्रह का अधिकार होता है। भारतीयों के पास इस आशय का पुष्ट प्रमाण होने से वारों का ग्रहों और देवता से सम्बन्ध बना। भारतीय संस्कृति में विश्राम की अवधारणा नहीं रही है। अत: वारों का प्रयोग यहाँ विश्राम या सेवा कार्य के लिए नहीं किया गया। रविवार से सेवा कार्य शुरू करने का मुहूर्त्त ज्योतिष में उपलब्ध है।

प्राचीन भारतीय ज्योतिष में तीन प्रकार के वारों का उल्लेख प्राप्त होता है – १. ग्रह वार २. नक्षत्र वार और ३. करण वार। वार और दिन में अभेद होने से कहीं 'दिन' तो कहीं 'वार' का प्रयोग हुआ है। 'अथर्वज्योतिष' में वारों का प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है। 'अथर्वज्योतिष' 'आर्चज्योतिष' के बाद की रचना है। आर्चज्योतिष में महात्मा शब्द का प्रयोग हुआ है, जबकि अथर्वज्योतिष के बीच के कालखण्ड में भारतीय ज्योतिष का व्यापक विकास हुआ है।

अथर्वज्योतिष में ‘करण’ और वार का महत्व स्पष्ट है। श्राद्ध से करण जुड़ा है और वार शुभकर्मों से जुड़े हैं। अथर्वज्योतिष का काल ईसा से २८००० वर्ष पूर्व का है। अथर्वज्योतिष का मूल रूप महाभारत से काफी पहले का है। अथर्व ज्योतिष में वारों की चर्चा निम्नलिखित रूप में है –

पंचमी दशमी पूर्णा तथा पंचदशीति च।
तिथयो ह्येषु वारेषु सिद्धार्थास्तत्र तच्छृणु।।
नन्दा भृगौ सोमसुते च भद्रा भौमे जया सूर्यसुते च रिक्ता।
पूर्णा गुरौ पंचसु पंच एते जयावहा: सर्वफलप्रदाश्च।।

इनमें वार और वारनाम आये हैं। अथर्व-ज्योतिष को बहुत बाद की रचना नहीं बतलाया जा सकता। इसमें पूर्णिमा के लिए पंचदशी तथा शुक्र के लिए ‘भृगु’ का प्रयोग हुआ है। ‘पंचदशी’ शब्द वेदकाल में प्रियता के शिखर पर था। ‘भृगु’ शब्द ‘शुक्र’ से प्राचीन है। काल की दृष्टि से और व्युत्पत्ति की भी दृष्टि से। महाकाल के छिद्र में से गिरने के पश्चात् भृगु का नाम शुक्र पड़ा। यह व्युत्पत्तिलभ्य इतिहास है। अत: भारतीय ज्योतिष और सनातन संस्कृति की परम्परा में वारों का प्रयोग बेबीलोनिया संस्कृति के गर्भ में आने से हजारों हजार वर्ष पूर्व से होता चला आया है।

ईसाई मतावलम्बियों के अनुसार सृष्टि का प्रथम दिवस सोमवार है। सर्वशक्तिमान ‘गॉड’ ने सृष्टि की रचना छ: दिनों में की और रविवार के दिन विश्राम किया। तब से आज तक रविवार ‘विश्रामवार’ बना हुआ है। छ: दिनों तक निरन्तर कार्य करने पर गॉड भी थकता है तो मनुष्य क्यों नहीं थकेगा? अत: ‘सन डे’ के दिन या तो विश्राम करना श्रेष्ठ है अथवा ‘सेवा कर्म’ करना। यहाँ सेवा से अर्थ है ईसाई धर्म या चर्च की सेवा।

‘न्यू टेस्टामेंट’ के लेखकों को ‘ईसा मसीह’ का सूली दिवस स्मरण नहीं रहा। वे किस दिन सूली पर लटकाये गये अथवा किस दिन स्वर्ग प्रस्थान किय उन्हें अज्ञात था। प्रायश: इतिहासकारों का मानना है कि पाँचवीं शताब्दी में यह निर्णय हुआ कि उनको शुक्रवार अथवा रविवार को शूली पर चढ़ाया गया था। अत: शूली चढ़ाने का त्योहार ‘निसान मास’ की पूर्णिमा को मनाया जाता है। यूरोपीय इतिहासकारों का अनुमान है कि वारों का विकसित क्रम ईसा की प्रथम शताब्दी के बाद प्रचलित हुआ है। उनका यह भी मानना है कि बेबीलोनियन ज्योतिषियों के कारण वार का ज्ञान प्रचार प्रसार में आया। जिसका स्वयं का इतिहास भ्रान्त रहता है वे दूसरों को भ्रमित करते हैं।

ईसाई धर्म के लोगों में रोमन शासक कान्सटैन्टाइन (कंस्तुताइन) ने एक घोषणा पत्र द्वारा ४२३ ई0 में सब्बाथ (अंतिम दिन) को ईश्वरीय दिन रविवार में बदल दिया। कम्युनिस्ट इतिहासकारों और एन.सी. लाहिड़ी आदि का मानना है कि यहीं से भारत में वारों का प्रवेश हुआ। यहाँ वे दो तथ्यों

को छुपा ले जाते हैं – १. कंस्तुताइन राजा अपने आधे जीवन में मूर्तिपूजक (पेंगन) था। वह ४२२ ई0 में हजारों वर्ष पूर्व अहर्गण साधन और वारों की सैक –निरेक विधि का प्रचलन हो चुका था।

भारतीयों के कक्षाक्रम को बेबीलोन के ज्योतिषी उसी रूप में लेते हैं। काल होरा का जो क्रम सूर्यसिद्धान्त में कहा गया है वही क्रम बेबीलोनियन ज्योतिष में भी है। ये सारी जानकारियाँ अंग्रेज इतिहासकारों के लेखों में मिलती है। उनके लेखों में यह भी नहीं बताया गया है कि वे बेबीलोन के किन ग्रन्थों से अपना मत उद्धृत कर रहे हैं या उनके आधार ग्रन्थ का नाम क्या है? यह धूर्तता भारतीय इतिहास के निर्धारण में अंग्रेज इतिहासकारों ने पग-पग पर की है। वे यह भी नहीं बतलाते कि ईसाई धर्म की उत्पत्ति से पूर्व पृथ्वी पर मूर्तिपूजक धर्मावलम्बियों का राज्य था जिन्हें आज यूरोपीय लोग 'पेंगन' कहते हैं। यही तथ्य सिद्ध कर देता है कि सनातन या वैदिक धर्म का प्रभाव विश्व में सर्वत्र था।

भारतीय पंचांगों, ज्योतिष ग्रन्थों और व्यावहारिक जीवन में सूर्यादि वार, नक्षत्र पुष्य आदि वार और करण वार का प्रयोग प्राचीनकाल से होता आया है –

राजद्वारिकमारम्भं कारयेत् तैतिले दिने। (अथर्वज्योतिष)

यह क्रम इतना प्राचीन है जितना प्राचीन हिन्दु संस्कृति और समाज।

अभ्यास प्रश्न – 2

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. भारतीय ऋषियों के अनुसार वार का समारम्भ किस वार से हुआ था।
   क. सोमवार   ख. रविवार   ग. मंगलवार   घ. बुधवार
2. प्रतिदिन कितने घण्टे के बाद होरा का क्रम आवर्तित होने लगता है?
   क. 5   ख. 6   ग. 7   घ. 8
3. वारों के क्रम में मंगल के पश्चात् क्या आता है?
   क. शनि   ख. रवि   ग. बुध   घ. गुरु
4. निम्न में सूर्य को किसका कारक कहा गया है?
   क. मन का   ख. आत्मा का   ग. सत्व का   घ. वाणी
5. भारतीय ज्योतिष में कितने प्रकार के वारों का उल्लेख मिलता है?
   क. तीन   ख. चार   ग. पाँच   घ. छ:

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक जैसे क्रम में स्थित सात वारों का प्रचलन है। ये हैं रविवार, सोमवार, मंगलवार, बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार एवं शनिवार। जिन देशों और सभ्यताओं में दस दिनों के वार थे अथवा तीस दिनों के नाम थे उन्होंने भी अपने व्यवहार में संशोधन करके वारक्रम को ठीक कर लिया। आज पूरे विश्व में ऋषियों द्वारा स्थापित वारक्रम को स्वीकृत कर लिया गया है। यह वारक्रम भूकेन्द्रीय कक्षाक्रम के युग में निर्धारित कर लिया गया था। केप्लर के सूर्यकेन्द्रीय कक्षाक्रम को वैज्ञानिकी स्वीकृति मिलने के बाद भी वारों के क्रम को वैसे ही रहने दिया गया। विज्ञानवाद के इस युग में 'रविवार' के स्थान पर 'भूवार' या पृथ्वीवार नहीं लाया गया अन्यथा सोमवार चन्द्रमा के उपग्रह होने के कारण वारक्रमों से बाहर हो जाता। वारों के नामकरण की प्राचीन भारतीय उपपत्ति पर विचार करने से पूर्व 'वार' पर विचार करते है। एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय के मध्यवर्ती काल को वार कहते हैं। सूर्य के अर्धबिम्ब दर्शन से वार की प्रवृत्ति मानी गयी है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

वार – एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय के मध्यवर्ती काल को वार कहते हैं। रविवार से शनिवार पर्यन्त सप्त वार होते हैं।

वार प्रवृत्ति – सूर्य के अर्धबिम्ब दर्शन से वार की प्रवृत्ति मानी गयी है। सूर्यसिद्धान्त अर्धरात्रि से वार की प्रवृत्ति मानता है।

भृगु – शुक्रवार को भृगु वार भी कहते है।

आत्म कारक – ज्योतिषशास्त्र में सूर्य को आत्मा का कारक माना गया है।

सूर्यसिद्धान्त – सूर्य से सम्बन्धित सिद्धान्त को सूर्यसिद्धान्त कहा जाता है। इसे आर्षग्रन्थ भी कहा जाता है। वस्तुत: यह सूर्यांशपुरूष एवं दानवराज मय का परस्पर संवादरूपी ग्रन्थ है।

भूकेन्द्रिक – भू अर्थात् पृथ्वी। पृथ्वी को केन्द्र मानकर की जाने वाली गणना भूकेन्द्रिक कहलाती है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 की उत्तरमाला

1. ख 2. क 3. क 4. ख 5. ख

अभ्यास प्रश्न -2 की उत्तरमाला

1. ख 2. ग 3. ग 4. ख 5. क

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ग्रहलाघवम् - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

2. पंचांग साधन – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र

3. ज्योतिष शास्त्र – डॉ0 कामेश्वर उपाध्याय

4. भारतीय ज्योतिष – डॉ0 शंकरबालकृष्ण दीक्षित

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. केशवीय जातक पद्धति

2. ज्योतिष सर्वस्व

3. भारतीय कुण्डली विज्ञान

4. भारतीय ज्योतिष

5. ग्रहलाघवम्

6. सूर्यसिद्धान्त

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वार किसे कहते है? स्पष्ट रूप से वर्णन कीजिये।

2. वार-क्रम का विस्तृत वर्णन कीजिये।

3. वारों में कृत्याकृत्य का उल्लेख कीजिये।

4. वारों की शुभाशुभ संज्ञा का वर्णन कीजिये।

5. काल होरा से आप क्या समझते है?

इकाई - 3 नक्षत्र साधन

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई MAJY-103 के द्वितीय खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – नक्षत्र साधन। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने 'वार' के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप पंचांग के और एक रूप **'नक्षत्र'** के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

राशियों के समूह को नक्षत्र कहते हैं। ज्योतिष शास्त्रानुसार २७ नक्षत्र होते हैं। अश्विन्यादि से लेकर रेवती पर्यन्त प्रत्येक नक्षत्र का मान १३ अंश २० कला होता है। नक्षत्र आकाशीय पिण्ड होता है।

आइए इस इकाई में नक्षत्र का ज्ञान करते हुए उसके गणितीय अवयवों को भी समझने का प्रयास करते है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि नक्षत्र किसे कहते है।
- को ज्ञात हो जायेगा कि नक्षत्र का मान कितना होता है।
- नक्षत्र के गणितीय अवयव को समझ लेंगे।
- अच्छी तरह से नक्षत्र का साधन कैसे किया जाता है, जान जायेंगे।

3.3 नक्षत्र परिचय

ग्रह और तारों के साथ-साथ नक्षत्रों पर भी भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीनकाल से ही अन्वेषण किया जाता रहा है। यह सत्य है कि नक्षत्रों के ऊपर प्राचीनकाल में जो कार्य हुआ, वही आज तक अध्ययन क्रम में बना हुआ है। फलत: आगे चलकर विश्व में अन्यत्र; नक्षत्रों पर जितना शोध कार्य हुआ उतना भारतवर्ष की पारम्परिक विद्या में नहीं। अत्यन्त प्राचीन काल में कम से कम नक्षत्रों की पहचान की प्रक्रिया तो चलती रही परन्तु आधुनिक युग में अत्यल्प ज्योतिषी हैं, जिनसे यह उम्मीद की जा सकती कि वह राशियों में विद्यमान नक्षत्रों एवं उनके योग-तारों को पहचान पायें। प्राचीनकाल में नक्षत्रों के आधार पर फलादेश की सूक्ष्म प्रक्रिया को बाद में गम्भीर धक्का लगा। आज तो केवल ग्रहयोगों एवं राशियों के ही आधार पर सब कुछ बतलाया जाता है। नक्षत्रों के माध्यम से यदि फलादेश किया जाए और नये- नये शोध कार्य कर इनके प्रभाव को स्थिर किया जाय तो निश्चित तौर से फलादेश में सूक्ष्मता बढ़ेगी। इस कार्य के लिए आधुनिक पद्धतियों और वैज्ञानिक स्थापनाओं का भी आश्रय लिया जा सकता है। भारतीय ज्योतिष में नक्षत्रों की संख्या अभिजित् को लेकर अठाइस

मानी गयी है। बाद में अभिजित् को उत्तराषाढ़ा और श्रवण में अन्तर्निहित कर दिया गया। प्राचीन ग्रन्थों में कई स्थलों पर नक्षत्रारम्भ कृत्तिका से है जो बाद में व्यवहार में अश्विनी से मान लिया गया। भारतीय गणित ग्रन्थों में 'भग्रहयुति' नामक अध्याय में नक्षत्रों पर विशद प्रकाश डाला गया है। अट्ठाइस नक्षत्रों के अतिरिक्त भी कुछ नक्षत्रों की चर्चा गणित ग्रन्थों में उपलब्ध है, जैसे – अगस्त्य, व्याध, अग्नि, ब्रह्मा, प्रजापति, अपांवतस, आप:, लुब्धक आदि।

प्राचीन ज्योतिर्विदों ने अन्वेषण के दौरान यह देखा कि नक्षत्रों के पुंज में अनेक तारे समाहित हैं। कृत्तिका नक्षत्र की छ: ताराओं की चर्चा तो महाभारत और पुराणों में भी आयी है। नक्षत्रों के सम्बन्ध में गणितीय ज्ञान का स्थिर मानदण्ड ध्रुव नक्षत्र को माना गया है। यहाँ तक कि नक्षत्रों के भोग को प्राचीन गणितीय ग्रन्थों में ध्रुव नाम से अभिहित किया गया है। प्राचीन गणित प्रक्रिया में नक्षत्रों के भोग आयनदृक्कर्म से संस्कारित कर निकाले जाते थे। अभीष्ट तारे से नाड़ीवृत पर डाला हुआ लम्ब जहाँ क्रान्ति वृत्त को काटता है; उस बिन्दु से आरम्भ स्थान तक के अन्तर को 'भोग या ध्रुव' कहा गया। तारे से उस बिन्दु तक का अन्तर 'शर' कहलाता है। नक्षत्रों के भोग को निकालने की दो पद्धतियाँ प्राचीनकाल में प्रसिद्ध थीं। प्रथम ध्रुवाभिमुख और द्वितीय कदम्बाभिमुख। आकाश में नक्षत्रों के जो तारे दिखलायी पड़ते हैं; उनके योग तारों को पहचानने में ग्रन्थकारों में मतभेद भी है। प्रसिद्ध नक्षत्रों में तारों के पुंज होते हैं या कहा जा सकता है कि तारों के पुंज से अश्विन्यादि नक्षत्र पहचाने जाते हैं। इनमें से जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण, चमकता और पृथक् पहचान वाला तारा होता है उसे योगतारा कहते हैं। योगतारा के माध्यम से ही कोई भी विशिष्ट नक्षत्र पहचाना जाता है।

3.3.1 नक्षत्र गणना का मूलाधार –

भारतीय ज्योतिष ने नक्षत्र गणना की पद्धति को स्वतन्त्र रूप से खोज निकाला या चीनी, पारसी या अरबी लोगों से प्राप्त किया इस पर यूरोपियन इतिहासकार विशेष सतर्क दृष्टि रखते हुए चर्चा करते हैं। विशेष रूप से जर्मन विद्वान बेबर का मानना है कि नक्षत्र पद्धति हिन्दुओं का नहीं है। इतना ही नहीं बेबर ने तो वेदों के सन्दर्भ में भी बहुत सी अनुपयुक्त बातें लिखी हैं। चीनी लोगों को नक्षत्र का ज्ञान था, परन्तु वे ग्रहगति और अयन चलन जैसे महत्वपूर्ण विषयों को नहीं जानते थे। फलत: नक्षत्र पद्धति से आगे उनका ज्योतिषीय ज्ञान रूक सा गया था। 'ह्विटने और बायो' नामक विद्वान ज्योतिषियों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया है। ह्विटने ने निष्कर्ष निकाल कर रखा कि चीनी, अरबी और हिन्दुस्तानी पद्धतियों में किसी एक को अन्य दो पद्धतियों का मूल नहीं कहा जा सकता। फिर भी ई0पूर्व ११०० वर्ष चीनी पद्धति भारत पहुँची और तत्पश्चात् सेमिटिक, ईरानी और

अरब लोगों के पास। हमारे महान् ज्योतिष इतिहासकार श्री शंकर बालकृष्ण दीक्षित का कहना है कि भारतीय नक्षत्र पद्धति दृष्टि सिद्ध है जबकि चीनी नक्षत्र पद्धति यन्त्रसिद्ध है। फलत: रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, पू0फा0, उ0फा0, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, अभिजित् और श्रवण का योगतारा भारतीयों ने स्पष्ट लिखा जो देखने में चमकदार और स्पष्ट लगे, जबकि चीनी योगतारे हतप्रभ होने के कारण वेध की मांग रखते थे। ह्विटने, बायो आदि इस बात को जबरदस्ती सिद्ध करते हैं कि नक्षत्र पद्धति सेमिटिक या खाल्डियन है। फिर भी बेबर कम से कम इतना अवश्य कहता है कि यह मान्य नहीं है कि हिन्दुओं ने चीनीयों से नक्षत्र पद्धति सीखी थी।

वस्तुत: नक्षत्र पद्धति भारतीय ऋषि परम्परा की दिव्य अन्तर्दृष्टि से विकसित हुयी है जो आज भी अपने मूल से कटे बिना चली आ रही है।

जब हम सूर्यास्त के पश्चात् आकाश की ओर देखते हैं तो टिमटिमाते नन्हें-नन्हें प्रकाश पुंजों का दर्शन होता है। उन्हें 'नक्षत्र' कहते है। नंगी आँखों से लगभग दोनों गोलार्धों में २५०० × २ = ५००० नक्षत्र दिखलाई पड़ते हैं। क्रान्तिवृत्त अर्थात् राशिचक्र के अन्तर्गत २७ पुंजात्मक नक्षत्रों को मुख्य मानकर ज्योतिष शास्त्र में विभिन्न रूपक विचार किया जाता है। तैत्तरीय संहितोक्त अनन्त नक्षत्रों में से मुख्य रूप से सूर्य-चन्द्र तथा तारा ग्रहों के संचरण मार्ग में पड़ने वाले नक्षत्रों का ही मुख्य विचार किया जाता है। चन्द्रमार्ग के अन्तर्गत २७ नक्षत्रों के नाम निम्नलिखित है-

१. अश्विनी	२. भरणी	३. कृत्तिका	४. रोहिणी	५. मृगशिरा	६. आर्द्रा
७. पुनर्वसु	८. पुष्य	९. आश्लेषा	१०. मघा	११. पू0फा0	१२. उ0फा0
१३. हस्त	१४. चित्रा	१५. स्वाती	१६. विशाखा	१७. अनुराध	१८. ज्येष्ठा
१९. मूल	२०. पू0षा0	२१. उ0षा0	२२. श्रवण	२३.धनिष्ठा	२४. शतभिषा
२५. पू0भा0	२६. उ0भा0	२७. रेवती			

इस प्रकार अश्विनी से रेवती तक स्थिर निरयण नक्षत्र पुंजविभाग २७ है। इसे राशिमण्डल कहते हैं। स्थूल नक्षत्रगणना में व्यवहार सिद्धि के लिए ३६०° /२७ = १३°/२०। (१३° × ६०) + २० = ८०० कला का एक नक्षत्र होता है। एक नक्षत्र का चतुर्थांश ८००/४ = २०० कला का एक नक्षत्र चरण होता है।

चन्द्र सौर नक्षत्र भोग भेद – १३°।२० अर्थात् ८०० को पार करने में सूर्य, चन्द्र तथा ग्रहों को पार करने में जितना समय लगता है, उसे 'नक्षत्रभोग काल' या 'नक्षत्रमान' कहते है। चन्द्रमा एक दिन में एक नक्षत्र का भोग पूर्ण करता है। सभी ग्रहों के गति भेद से नक्षत्रभोग काल अलग-अलग होता है।

पंचांग में दैनिक चान्द्रनक्षत्र दिया जाता है। २०० कला का एक नक्षत्र चरण है। ० से लेकर २०० कला तक प्रथम चरण। २०० कला से ४०० कला तक द्वितीय चरण। ४०० से ६०० कला तृतीय चरण और ६०० से ८०० कला पर्यन्त चतुर्थ चरण होता है। इसीलिए २७ नक्षत्र × ४ = १०८ चरणात्मक नक्षत्रपुंज कहा गया है।

विशेष – सूक्ष्म नाक्षत्रपद्धति में अभिजित नक्षत्र सहित २८ नक्षत्र ग्रहण किये जाते हैं। एक नाक्षत्र अहोरात्र ६० घटी = २४ घंटे का होता है। ३० अहोरात्र = १ मास, १२ मास = १ वर्ष। अहोरात्र का घटयात्मक विभाग नाक्षत्रमान ६० घटी का स्थिर मान है। ग्रहों की तरह नक्षत्रों में पूर्व-पूर्व गति नहीं होती। ये भूपृष्ठ से अचलवत् दृश्य होते हैं।

3.3.2 ध्रुवादि संज्ञायें, चरणों के आधार पर नामकरण, अध:, उर्ध्व तथा तिर्यक संज्ञायें तथा क्षय-वृद्धि विचार

नक्षत्रों की ध्रुवादि संज्ञायें –

दिन (ग्रह) के योग से इनकी मृदु ध्रुवादि संज्ञायें मुहूर्त्त ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं। आप इस प्रकार जान सकते हैं –

क्रम संख्या	नक्षत्र तथा दिन (ग्रह)	संज्ञायें	नक्षत्र तथा दिन (ग्रह)	संज्ञायें
1.	अश्विनी + गुरु	क्षिप्र, लघुसंज्ञक	भरणी + मंगल	उग्र, क्रूरसंज्ञक
2.	कृत्तिका + बुध	मिश्र, मिश्रितसंज्ञक	रोहिणी + सूर्य	ध्रुवस्थिरसंज्ञक
3.	मृगशिरा + शुक्र	मृदु, सौम्यसंज्ञक	आर्द्रा + शनि	तीक्ष्ण, तीव्रसंज्ञक
4.	पुनर्वसु + चन्द्र	चर, चंचलसंज्ञक	पुष्य + गुरु	लघु, क्षिप्र0
5.	आश्लेषा+ शनि	तीक्ष्ण, तीव्र	मघा + शनि	तीक्षण,तीव्र
6.	पू0फा0 +मंगल	उग्रसंज्ञक	उ0फा0 +सू0	ध्रुवसंज्ञक
7.	हस्त + गुरु	क्षिप्र,लघु	चित्रा + शु	मृदु
8.	स्वाती+ सोम	चरसंज्ञक	विशाखा+ बु	मिश्र
9.	अनुराधा+ शुक्र	मृदु	ज्येष्ठा+शनि	तीक्ष्णसंज्ञक
10.	मूल+ शनि	तीक्ष्ण	पू0षा0+ मंगल	उग्रसंज्ञक
11.	उ0षा0 + रवि	ध्रुवसंज्ञक	अभि0+ गुरु	क्षिप्र
12.	श्र0+ सोम	चरसंज्ञक	ध0 + सोम	चरसंज्ञक
13.	शत0 + सोम	चरसंज्ञक	पू0भा0 + मं0	उग्र
14.	उ0भा0 + सू0	ध्रुवसंज्ञक	रे0 + शु0	मृदुसंज्ञक

चन्द्रमा २७ नक्षत्रों का भोग २७.३२ दिनों में मध्यम मान से पूर्ण करता है। १.११८ दिवस में मध्यमान से एक नक्षत्र का चारों चरण का भोग पूर्ण करना है। ग्रहों के सूक्ष्म निरयण भोगांश से उसका नक्षत्र उपर्युक्त कोष्ठक से सुगमता से जान सकते हैं। यथा – १-१५°-२५ पर यदि सूर्य या कोई ग्रह है तो वह वृष के १६ पर है, तथा रोहिणी नक्षत्रपुंज के द्वितीय चरणान्त के समीप है, यह जान पाते है। इस प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये।

चरणों के आधार पर नामकरण एवं नक्षत्र –

एक नक्षत्र का भोग १३°।२० = ८०० कला। ये नक्षत्र चरण का भोग ३°/२०= २०० कला =१ राशि = ९ चरण। ३६०° = १२ राशि = १२× ९ = १०८ चरण। १ नक्षत्र १३°/२० = ३°/२० = ४ चरण।
नक्षत्र भभोग/४ = १ चरण घटयात्मक

जन्मेष्ट काल नक्षत्र के जिस चरण में पड़ा है, उसे नक्षत्र चरण मानकर जातक का नामकरण तथा चन्द्रराशि निर्धारण किया जाता है। वर्णाक्षर तथा स्वर ज्ञान नक्षत्र चरण तथा राशि का ज्ञान कोष्ठक की सहायता से सुगमता से जान सकते है। यथा अश्विनी का प्रथम चरण उकार स्वर युक्त चकार वर्ण, चु, द्वितीय चरण एकार स्वर युक्त चकार वर्ण चे, तृतीय चरण ओंकार स्वर युक्त चकार वर्ण चो तथा चतुर्थ चरण आकार स्वर युक्त लकाराद्य अक्षर ला है। इस नक्षत्र का अश्वयोनि, देवगण, आद्य नाड़ी, क्षत्रिय वर्ण, चतुष्पद वश्य, योनि शत्रु महिष, मेषराशि तथा राशिस्वामी मंगल है। नक्षत्र चरणाक्षर से बालक के जन्म का नामकरण करते हैं।

नक्षत्रों के घटयादि तथा घण्टात्मक मान –

उदाहरण के लिए – माना कि किसी तिथि को शतभिषा नक्षत्र का मान २९ घटी २७ पल है, सूर्योदय ५ घण्टा ११ मिनट है। इसका घण्टात्मक प्रमाण क्या है?

सूत्रानुसार – २९/२७ × २/५ = ५८-५४/५ = ११ घंटा ४७ मिनट।

सूर्योदय ५ घंटा ११ मिनट + शतभिषा ११ घंटा ४७ मिनट = १६ घण्टा ५८ मिनट तक शतभिषा नक्षत्र तत्पश्चात् पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र जानना चाहिये।

नक्षत्रों की अध:, उर्ध्व तथा तिर्यक मुख संज्ञा –

अधोमुखी नक्षत्र	**उर्ध्वमुखी नक्षत्र**	**तिर्यक मुखी नक्षत्र**
मूल	आर्द्रा	मृगशिरा
आश्लेषा	पुष्य	रेवती
कृत्तिका	श्रवण	चित्रा
विशाखा	धनिष्ठा	अनुराधा
पू0फा0	शतभिषा	हस्त

पू0षा0	उत्तराफाल्गुनी	स्वाती
पू0भा0	उत्तराषाढ़ा	पुनर्वसु
मघा	उत्तराभाद्रपद	ज्येष्ठा
भरणी	रोहिणी	अश्विनी

नक्षत्र क्षय-वृद्धि -

१. तिथि के समान नक्षत्रों के भी क्षय तथा वृद्धि उसी तरह जाना जाता है। चन्द्रमा जब उच्च के पास होता है तो गति की न्यूनता से नक्षत्रमान अधिक तथा नीचासन्न में गति की अधिकता से नक्षत्रमान (समयात्मक) कम होता है।

२. जिस नक्षत्र में सूर्योदय न हो उसे क्षयसंज्ञक नक्षत्र कहते है। नक्षत्रमान पंचांग में पार्श्व में लिखे रहते हैं। परमाल्प नक्षत्रमान से सूर्योदय काल में अप्राप्त नक्षत्र क्षयसंज्ञक होता है।

३. जिस नक्षत्र में दो सूर्योदय हो उस नक्षत्र की वृद्धि संज्ञा होती है। नक्षत्रमान ६० घटी से अधिक तथा तीन दिवस को स्पर्श करता है तथा दो सूर्योदय से सम्बद्ध होता है।

४. नक्षत्रमान स्वान्त समय के अुनसार प्रतिदिन चान्द्र नक्षत्र पंचांग में दिया जाता है।

अभ्यास प्रश्न -1

1. प्राचीनकाल में नक्षत्रों के भोग को निकालने की कितनी पद्धतियाँ प्रसिद्ध थीं?
   क. दो ख. चार ग. छ: घ. 8
2. शंकरबालकृष्ण दीक्षित के अनुसार भारतीय नक्षत्र पद्धति है-
   क. दृष्टिसिद्ध ख. यन्त्रसिद्ध ग. वेधसिद्ध घ. कोई नहीं
3. चीनी नक्षत्र पद्धति है?
   क. वेधसिद्ध ख. नलिकासिद्ध ग. यन्त्रसिद्ध घ.दृष्टिसिद्ध
4. अभिजित सहित नक्षत्रों की संख्या कितनी हैं?
   क. २५ ख. २६ ग. २७ घ. २८
5. नक्षत्र का एक चरण कितने कलाओं का होता हैं?
   क. १०० कला ख. ६० कला ग. २०० कला घ. १३ अंश २० कला
6. १ अंश में कितनी कलायें होती हैं?
   क. १०० कला ख. २०० कला ग.६० कला घ. ३० कला

3.4 नक्षत्र साधन –

आकाश में निरयण मेषादि बिन्दु से राशिवृत्त (क्रान्तिवृत्त) के तुल्य २७ नक्षत्रों में यदि १२ राशिकला = १२ × ३०×६० = २१६०० कला मिलती है, तो एक नक्षत्र में कितनी कला अनुपात से ८०० कला = एक नक्षत्र की भोगकला।

पंचांग साधनोपयोगी चान्द्र नक्षत्र ज्ञान के लिए अनुपात करना होगा कि, यदि भ (नक्षत्र) भोग ८०० कलाओं में एक नक्षत्र मिलता है तो चन्द्र कलाओं में क्या?

$$\frac{\text{१ नक्षत्र चन्द्रकला}}{\text{८००}} = \text{लब्धि} + \frac{\text{शे.कला}}{\text{८००}} \quad \text{लब्धि} = \text{गतचान्द्रनक्षत्र}$$

यहाँ शेष = वर्तमान नक्षत्र का भुक्तमान (कलात्मक)। नक्षत्र से घटीपलात्मक मान ज्ञात करने के लिए पुन: अनुपात करना होगा कि – यदि चन्द्रगति कलाओं में एक दिन में ६० घटी पाते हैं तो चन्द्र की भुक्त एवं भोग्यकलाओं में क्या?

$$\frac{\text{६० घटी} \times \text{भुक्तकला}}{\text{चन्द्रगतिकला}} = \text{वर्तमान नक्षत्र का भुक्तमान (घटी, पल में)}$$

$$\frac{\text{६० घटी} \times \text{भोग्यकला}}{\text{चन्द्रगतिकला}} = \text{वर्तमाननक्षत्र का भोग्यमान (घटी, पल में)}$$

भुक्त + भोग्य = नक्षत्र का पूर्ण भोग्यमान (घटीपलात्मक)।

नक्षत्रमान पंचांग में चान्द्रनक्षत्र कहलाता है। चन्द्रमा के नक्षत्र का दैनिकसाधन उपर्युक्त प्रकार से करना चाहिए। अन्य ग्रहों तथा सूर्य के नक्षत्रसंचार ग्रहगति तथा ग्रहभुक्तकला की निष्पत्ति से पूर्ववत् लाया जाता है। यथा – ग्रहराश्यादि को {(ग्रहराशि × ३०°) + अंशादि} × ६० + कलादि = ग्रहकला।

ग्रहराश्यादिकला ÷ ग्रहगति = लब्धि + शेष/ग्रहगति।

यहाँ लब्धि गतनक्षत्र होता है। शेषकला ग्रहाधिष्ठित नक्षत्र की भुक्तकला होती है। नक्षत्र प्रवेश तथा संचारकाल में घटयादि ज्ञान उपर्युक्त प्रकार से करना चाहिए।

जब किसी नक्षत्र में दो सूर्योदय हो तो, उसे नक्षत्रवृद्धि कहते है। इस प्रकार का चान्द्रनक्षत्र तीन दिनों का स्पर्श करता है। अर्थात् पूर्वदिन के अन्त से प्रारम्भ होकर द्वितीय दिन ६० घटी पूर्णकर तृतीय दिवस में भी कुछ समय तक रहता है। उदाहरण के लिए -

माना कि सप्तमी तिथि, सोमवार को विशाखा नक्षत्र की घटयादि समाप्तिकाल ५४/२६ है। तत्पश्चात् ६० घटी – ५४ घ. २६ प. = ५ घटी ३४ पल, उसी दिन अनुराधा नक्षत्र है। अष्टमी मंगल को अनुराधा का घटयादिमान ६० घटी है। नवमी बुधवार को इसका मान ० घटी ८ पल है। इस प्रकार की स्थिति को नक्षत्रवृद्धि कहते हैं। नक्षत्रमान ६० घटी से अधिक होता है।

जिस नक्षत्र में सूर्योदय नहीं हो उसे 'नक्षत्रक्षय' कहते हैं। इस स्थिति में सूर्योदय के पश्चात् पूर्वनक्षत्र समाप्त होता है। द्वितीय सूर्योदय से पूर्व ही तृतीय नक्षत्र का आरम्भ होता है। मध्य में नक्षत्र क्षय का मान दिया जाता है। उदाहरण के लिए –

यथा भाद्रकृष्ण तृतीया, शुक्रवार को उत्तराभाद्रपद २ घटी ५४ पल पर समाप्त होकर इसी दिन रेवती नक्षत्र ५६ घटी ४ पल है। तत्पश्चात् अश्विनी नक्षत्र ५८ घटी ५८ पल के बाद प्रारम्भ होगा। अत: सूर्योदय रहित चान्द्रनक्षत्र को 'नक्षत्रक्षय' कहते है। इस स्थिति में पूर्वनक्षत्रमान में क्षयनक्षत्रमान जोड़ने पर तृतीयनक्षत्र का प्रारम्भकाल घण्टादि वा घटयादि काल पूर्व प्रदत्त रीति से प्राप्त होता है।

3.4.1 नक्षत्र फल –

आश्विन्यामतिबुद्धिवित्तविनयप्रज्ञायशस्वी सुखी
याम्यर्क्षे विकलोऽन्यदारनिरत: क्रूर: कृतघ्नी धनी।
तेजस्वी बहुलोद्भव: प्रभुसमोऽमूर्खश्च विद्याधनी
रोहिण्यां पररन्ध्रवित्कृशतनुर्बोधी परस्त्रीरत:॥

अश्विनी नक्षत्र में जन्म हो तो जातक अतिबुद्धिमान, धनिक, विनयी, बुद्धिमान, यशस्वी और सुखी होता है। **भरणी** नक्षत्रोत्पन्न जातक विकल, पराई स्त्री में अनुरक्त, क्रूरमना, कृतघ्न और धनाढय होता है। जिसका जन्मर्क्ष **कृत्तिका** हो वह तेजस्वी, राजा के समान बुद्धिमान और विद्वान होता है। **रोहिणी** नक्षत्र में जन्म लेने वाला व्यक्ति परछिद्रान्वेषी, कृशांग और परस्त्रीगामी होता है।

चान्द्रे सौम्यमनोऽटन: कुटिलदृक् कामातुरो रोगवान्
आर्द्रायामधनश्चलोऽधिकबल: क्षुद्रक्रियाशीलवान्।

मूढात्मा च पुनर्वसौ धनबलख्यात: कवि: कामुक-

स्तिष्ये विप्रसुरप्रिय: सघनधी राजप्रियो बन्धुमान्।

मृगशिरा नक्षत्रोत्पन्न व्यक्ति सौम्य स्वभाव का, यायावर, वक्रदृष्टि, कामातुर और रोगी, **आर्द्रा** नक्षत्र में जन्मा जातक निर्धन, चंचलमति,बलवान्, नीचकर्मी, **पुनर्वसु** नक्षत्र में जन्मा व्यक्ति मूढ जडमति , धन - बलसम्पन्न , वित्व शक्तियुक्त, कामातुर, **पुष्य** जन्मर्क्ष हो तो जातक देव - द्विज का भक्त, अतिबुद्धिमान, राजा का प्रिय और स्वजनों एवं बन्धु - बान्धवों से युक्त होता है।

सार्पे मूढमति: कृतघ्नवचन: कोपी दुराचारवान्।

गर्वी पुण्यरत: कलत्रवशगो मानी मघायां धनी ।।

फल्गुन्यां चपल: कुकर्मचरितस्त्यागी दृढ: कामुको।

भोगी चोत्तरफल्गुनीभजनितो मानी कृतज्ञ: सुधी: ।।

आश्लेषा नक्षत्रोत्पन्न व्यक्ति मूर्ख, कृतघ्न, क्रोधी और दुराचारी होता है। **मघा** नक्षत्रोद्भव जातक अभिमानी, पुण्यात्मा, स्त्री के वशीभूत, मान और धन से युक्त होता है। **पूर्वाफाल्गुनी** नक्षत्र में जन्मा जातक चंचलमन, दुष्कर्मरत, त्यागी और अतिकामी होता है। **उत्तराफाल्गुनी** नक्षत्र में जन्म लेने वाला व्यक्ति भोगयुक्त, अभिमानी, कृतज्ञ और बुद्धिसम्पन्न होता है।

हस्तर्क्षे यदि कामधर्मनिरत: प्राज्ञोपकर्ता धनी।

चित्रायामतिगुप्तशीलनिरतो मानी परस्त्रीरत: ।।

स्वातयां देवमहीसुरप्रियकरो भोगी धनी मन्दधी।

गर्वी दारवशो जितारिरधिकक्रोधी विशाखोद्भव: ।।

हस्त नक्षत्र में जन्म हो तो जातक काम और धर्म में लीन, बुद्धिमान, परोपकारी और धनी होता है । जिसका जन्मर्क्ष **चित्रा** हो वह गोपनीयता रखने वाला, मानयुक्त और परस्त्रीरत होता है। **स्वाती** नक्षत्रोद्भव जातक देव – द्विज भक्त, सांसारिक भोगों से युक्त और मन्दबुद्धि होता है। **विशाखा** नक्षत्रोपन्न जातक घमण्डी, स्त्री के वश में रहने वाला, शत्रुञ्जयी और अत्यन्त क्रोधी होता है।

मैत्रे सुप्रियवाग् धनी: सुखरत: पूज्यो यशस्वी विभु –

ज्येष्ठायामतिकोपवान् परवधूसक्तो विभुर्धार्मिक: ।

मूलर्क्षे पटुवाग्विधूतकुशलो धूर्त: कृतघ्नो धनी

पूर्वाषाढभवो विकारचरितो मानी सुखी शान्तधी: ।।

अनुराधा नक्षत्रोत्पन्न जातक प्रियभाषी, धनिक, सुखी, पूजनीय, यशस्वी और वैभवसम्पन्न होता

है। **ज्येष्ठा** नक्षत्र में जन्मा जातक अत्यन्त क्रोधी, परस्त्री में आसक्त, वैभवशाली और धार्मिक होता है। **मूल** नक्षत्रोत्पन्न जातक वाक्चतुर , अविश्वसनीय , धूर्त, कृतघ्न और धनवान् होता है। **पूर्वाषाढा** नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति विकृत चरित्र, मानयुक्त , सुखसम्पन्न और शान्त बुद्धि का व्यक्ति होता है।

मान्य: शान्तगुण: सुखी च धनवान् विश्वर्क्षज: पण्डित:।
श्रोणायां द्विजदेवभक्तिनिरतो राजा धनी धर्मवान् ।।
आशालुर्वसुमान वसूडुजनित: पीनोरूकण्ठ: सुखी।
कालज्ञ: शततारकोद्भवनर: शान्तोऽल्पभुक् साहसी ।।

उत्तराषाढा नक्षत्र में उत्पन्न व्यक्ति मान्य, शान्त, गुणवान, सुखी, धनिक और विद्वान होता है। **श्रवणर्क्षोत्पन्न** जातक द्विज – देवभक्त, राजा, धनी और धर्मानुरागी होता है। **धनिष्ठा** नक्षत्र में जन्मा व्यक्ति आशावान्, धनिक होता है और उसके कण्ठ एवं उरू प्रदेश स्थूल होते हैं। **शतभिषा** नक्षत्रोद्भव व्यक्ति काल को जानने वाला, शान्तचित्त, अलपभोजी और साहसी होता है।

पूर्वप्रोष्ठपदि प्रगल्भवचनो धूर्तो भयार्तो मृदु
श्चाहिर्बुध्न्यजमानवो मृदुगुणस्त्यागी धनी पण्डित:।
रेवत्यामुरूलाञ्छनोपगतनु: कामातुर: सुन्दरो
मन्त्री पुत्रकलत्रमित्रसहितो जात: स्थिर: श्रीरत: ।।

पूर्वाभाद्रपद नक्षत्रोपन्न जातक शौर्ययुक्त वचन वक्ता, धूर्त, भीरू और मृदु स्वभाव का होता है। **उत्तराभाद्रपद** नक्षत्र में जन्म लेने वाला व्यक्ति सात्विक वृत्ति का, त्यागी, धनवान और विद्वान होता है। **रेवती** नक्षत्र में जन्म लेने वाले व्यक्ति की जंघाऍ लाञ्छन युक्त होती हैं, वह कामातुर, सुदर्शन, राजमन्त्री, स्त्री और पुत्रों से युक्त, धीर और वैभव सम्पन्न होता है।
चन्द्रमा और सूर्य के योग से विष्कम्भादि कुल २७ योग होते हैं। इनका फल इस प्रकार है –

अभ्यास प्रश्न – 2

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. भचक्र कला का मान होता है –

   क. २१००० ख.२१६०० ग. २२००० घ. २३०००

2. १३°।२० = ?

   क. १ तिथि ख. १ नवमांश ग. १ नक्षत्र घ. १ राशि

3. जब किसी नक्षत्र में दो सूर्योदय हो तो, उसे क्या कहते है?

क. नक्षत्रवृद्धि ख. नक्षत्रक्षय ग. क्षयतिथि घ. तिथिवृद्धि

4. जिस नक्षत्र में सूर्योदय नहीं हो उसे क्या कहते हैं?

   क. शुक्ल ख. नक्षत्रक्षय ग. दोनों घ. कोई नहीं

5. नक्षत्रों के क्रम में पुष्य के पश्चात् कौन आता है?

   क.आश्लेषा ख. मघा ग. पू0फा0 घ. उ0फा0

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ग्रह और तारों के साथ-साथ नक्षत्रों पर भी भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीनकाल से ही अन्वेषण किया जाता रहा है। यह सत्य है कि नक्षत्रों के ऊपर प्राचीनकाल में जो कार्य हुआ, वही आज तक अध्ययन क्रम में बना हुआ है। फलत: आगे चलकर विश्व में अन्यत्र; नक्षत्रों पर जितना शोध कार्य हुआ उतना भारतवर्ष की पारम्परिक विद्या में नहीं। अत्यन्त प्राचीन काल में कम से कम नक्षत्रों की पहचान की प्रक्रिया तो चलती रही परन्तु आधुनिक युग में अत्यल्प ज्योतिषी हैं, जिनसे यह उम्मीद की जा सकती कि वह राशियों में विद्यमान नक्षत्रों एवं उनके योग-तारों को पहचान पायें। प्राचीनकाल में नक्षत्रों के आधार पर फलादेश की सूक्ष्म प्रक्रिया को बाद में गम्भीर धक्का लगा। आज तो केवल ग्रहयोगों एवं राशियों के ही आधार पर सब कुछ बतलाया जाता है। नक्षत्रों के माध्यम से यदि फलादेश किया जाए और नये- नये शोध कार्य कर इनके प्रभाव को स्थिर किया जाय तो निश्चित तौर से फलादेश में सूक्ष्मता बढ़ेगी। इस कार्य के लिए आधुनिक पद्धतियों और वैज्ञानिक स्थापनाओं का भी आश्रय लिया जा सकता है। भारतीय ज्योतिष में नक्षत्रों की संख्या अभिजित् को लेकर अठाइस मानी गयी है। बाद में अभिजित् को उत्तराषाढ़ा और श्रवण में अन्तर्निहित कर दिया गया। प्राचीन ग्रन्थों में कई स्थलों पर नक्षत्रारम्भ कृत्तिका से है जो बाद में व्यवहार में अश्विनी से मान लिया गया। भारतीय गणित ग्रन्थों में 'भग्रहयुति' नामक अध्याय में नक्षत्रों पर विशद प्रकाश डाला गया है। अट्ठाइस नक्षत्रों के अतिरिक्त भी कुछ नक्षत्रों की चर्चा गणित ग्रन्थों में उपलब्ध है, जैसे – अगस्त्य, व्याध, अग्नि, ब्रह्मा, प्रजापति, अपांवतस, आप:, लुब्धक आदि। वस्तुत: नक्षत्र पद्धति भारतीय ऋषि परम्परा की दिव्य अन्तर्दृष्टि से विकसित हुयी है जो आज भी अपने मूल से कटे बिना चली आ रही है।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

नक्षत्र – न क्षरतीति नक्षत्रम्। जिसमें गति न हो, जो स्थिर हो उसे नक्षत्र कहते है। राशियों के समूह को भी नक्षत्र कहा जाता है।

भचक्र – 'भ' का अर्थ राशि होता है। राशिचक्र को 'भचक्र' कहते हैं। इसका सम्पूर्ण मान ३६०° होता है।

नक्षत्रवृद्धि – जब किसी नक्षत्र में दो सूर्योदय हो तो, उसे नक्षत्रवृद्धि कहते हैं।

नक्षत्रक्षय – जिस नक्षत्र में सूर्योदय नहीं हो उसे नक्षत्रक्षय कहा जाता हैं।

नाक्षत्रमान – नक्षत्र सम्बन्धित मान नाक्षत्रमान कहलाता है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 की उत्तरमाला

1. क 2. क 3. ग 4. घ 5. ग 6. ग

अभ्यास प्रश्न -2 की उत्तरमाला

1. ख 2. ग 3. क 4. ख 5. क

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शास्त्रशुद्ध पंचांग निर्माण की दृष्टि से सूर्यसिद्धान्त की समीक्षा - प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र
2. पंचांग साधन – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र
3. ज्योतिष शास्त्र – डॉ0 कामेश्वर उपाध्याय
4. भारतीय ज्योतिष – डॉ0 शंकरबालकृष्ण दीक्षित

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. पंचांग परिचय – प्रोफेसर भास्कर शर्मा
2. संवत्सरावली – टिकाकार, पं. हीरालाल मिश्र
3. भारतीय ज्योतिष – आचार्य शंकरबालकृष्ण दीक्षित
4. भारतीय ज्योतिष – डॉ0 नेमिचन्द शास्त्री
5. ज्योतिष शास्त्र – डॉ0 कामेश्वर उपाध्याय

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नक्षत्र को परिभाषित करते हुए विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. स्वकल्पित नक्षत्र साधन कीजिये।
3. नक्षत्रों की ध्रुवादि संज्ञा का उल्लेख कीजिये।
4. अश्विन्यादि नक्षत्रों में उत्पन्न जातक का फल लिखिये।
5. नक्षत्रों का सैद्धान्तिक विवेचन कीजिये।

इकाई – 4 योग साधन

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के द्वितीय खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – योग साधन। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने नक्षत्र के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप पंचांग के और एक रूप **योग** के बारे अध्ययन करने जा रहे हैं।

ज्योतिष में मुख्यत: दो प्रकार के योग कहे गये है। एक आनन्दादि योग एवं दूसरा विष्कुम्भादि योग। विष्कुम्भादि योग चलायमान एवं आनन्दादि योग स्थिर कहे गये हैं।
आइए इस इकाई में योग का ज्ञान करते हुए उसके गणितीय अवयवों को भी समझने का प्रयास करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि योग किसे कहते है।
- को ज्ञात हो जायेगा कि योग का मान कितना होता है।
- योग के गणितीय अवयव को समझ लेंगे।
- अच्छी तरह से योग का साधन कैसे किया जाता है, जान जायेंगे।

4.3 योग परिचय

ज्योतिषशास्त्र में तिथि, नक्षत्र की अपेक्षा योगों का समावेश कब हुआ यह कहना अत्यन्त जटिलता से पूर्ण विषय है। तिथि और नक्षत्र की उपस्थिति का ज्ञान खगोलीय कारणों से स्पष्ट और गणित साध्य था, पर योगों की परिकल्पना अपेक्षाकृत दुरूह थी। चन्द्र-सूर्य का अन्तरात्मक मान तिथि थी तो वहाँ उसे मूर्तरूप देने के लिए चन्द्रकलायें भी थीं। चन्द्र सूर्य का संयोगात्मक मान एक वर्ष में कितना भगण पैदा कर सकता है और एक वृत्तात्मक परिभ्रमण में उसका कितना प्रतिदिवसीय मान उत्पन्न हो सकता है यह शोध और परिकल्पना का विषय था। यद्यपि आचार्यों के मन में यह विषय गणितीय दृष्टि से शीघ्र ही कौंध गया होगा कि यदि चन्द्र-सूर्य का वियोगात्मक मान तिथि जैसे महत्वपूर्ण तत्व को उत्पन्न कर सकता है तो उन दोनों का संयोगात्मक मान भी अवश्य ही सद्भाव में होगा। फलत: इन्हें 'योग' नाम से ही अभिहित किया गया।

अथर्वज्योतिष में योगों के नाम नहीं आये हैं, पर दो स्थानों पर योग के सन्दर्भ में उल्लेख हुआ है –

वारश्चाष्ट गुण: प्रोक्त: करणं षोडशान्वितम्।
द्वात्रिंशत् गुणयोगश्च ताराषष्टि समन्विता।।

वार का आठ गुना, करण का सोलह गुना, योग का बत्तीस गुना, तारा का साठ गुना फल होता है।

एवं नक्षत्रयोगेषु त्रिषु कर्म समारभेत्।
धर्मार्थकर्मणामर्थे स्वकर्म फलमश्नुते।।

अथर्वज्योतिष का आदेश है कि – धर्म, अर्थ, काम के विषय में शुभ नक्षत्र योग में कार्यारम्भ करना चाहिए। त्रिवर्ग साधन में व्यक्ति अपने कर्मों का फल प्राप्त करता है।
आर्चज्योतिष और महात्मा लगध के काल से अथर्वज्योतिष दो सौ वर्षों से अधिक अर्वाचीन नहीं हो सकता। अत: ई0पू0 २८००० वर्ष में योगों का प्रवेश भारतीय ज्योतिष में हो चुका था। इन योगों का नाम और क्रम यहाँ उपलब्ध नहीं है। भारतीय ज्योतिष के इतिहास में संहिता ग्रन्थों का विचार, काल प्रमाण आदि छोड़ दिया गया है। इसीलिए बहुत कठिन समस्या तब खड़ी होती है जब तारतम्य -बद्ध विषयगत विचार आरम्भ होता है।

'वसिष्ठ संहिता' प्राचीनतम संहिता ग्रन्थों में गिना जाता है। इसमें सत्ताइस योगों का वर्णन इस प्रकार से है –

विष्कम्भ: प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्य: शोभनाह्वय:।
अतिगण्ड: सुकर्माख्यो धृति: शूलोऽथ गण्डक:।।
वृद्धिर्ध्रुवाख्यो व्याघातो हर्षणो वज्रसंज्ञक:।
सिद्धियोगो व्यतीपातो वरीयान् परिघ: शिव:।।
सिद्धि: साध्य: शुभ: शुक्लो ब्रह्मन्द्रो वैधृति: स्मृत:।
सप्तविंशतियोगोस्ते स्वनामफलदा: स्मृता:।।

ये सत्ताइस योग निम्नलिखित क्रम में हैं – विष्कम्भ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन,अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धियोग, व्यतीपात, वरीयान, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र और वैधृति। वसिष्ठ संहिता में सिद्धियोग एवं सिद्धि का वर्णन है। बाद के आचार्यो ने सिद्धि और सिद्ध- साध्य क्रम का वर्णन किया है। सिद्धि योग का दो बार आना उपयुक्त नहीं है। अत: एक सिद्धि और दूसरा सिद्ध योग होना चाहिए।

पंचांगों में दो प्रकार के योग दिये जाते हैं – पहला विष्कम्भादि योग और दूसरा आनन्दादि योग। विष्कम्भ आदि योगों की परिकल्पना गणितीय है। यह सूर्य चन्द्र के स्पष्ट योग पर आश्रित है। ज्योतिषशास्त्र के विकासक्रम में तिथि और नक्षत्र का गणित सर्वप्रथम आया। योग का गणित बाद में

आया है। अत: विष्कम्भादि योगों की परिकल्पना गणितीय है। यह सूर्य चन्द्र के स्पष्ट योग पर आश्रित है। ज्योतिषशास्त्र के विकासक्रम में तिथि और नक्षत्र का गणित सबसे पहले आया। योग का गणित बाद में आया है। अत: विष्कम्भादि योग मौलिक योग कहे जायेंगे, जबकि आनन्दादि योग वार और नक्षत्र के संयोग से कल्पित हैं। आनन्दादि योगों की उत्पत्ति फलितविकास की बाद की उपलब्धि है, जबकि विष्कम्भादि योग तिथि की तरह सूर्य चन्द्र के संयोग की उपलब्धि है। इन योगों का ज्योतिषशास्त्र के विकास की आरम्भिक स्थिति को सुदृढ़ करने में स्थान है।

योगों के देवता या स्वामी का निर्धारण फलित ज्योतिष की स्थापना है। नारद ऋषि के अनुसार ये देवता निम्नलिखत क्रम में हैं –

विष्कम्भ = यम, प्रीति= विष्णु, आयुष्मान = चन्द्र, सौभाग्य = ब्रह्मा, शोभन= वृहस्पति, अतिगण्ड = चन्द्र, सुकर्मा = इन्द्र, धृति = जल, शूल = सर्प, गण्ड = अग्नि, वृद्धि = सूर्य, ध्रुव= भूमि, व्याघात= वायु, हर्षण= भग, वज्र= वरूण, सिद्धि= गणेश, व्यतीपात= रूद्र, वरीयान्= कुबेर, परिघ = विश्वकर्मा, शिव = मित्र, सिद्ध= कार्तिकेय, साध्य = सावित्री, शुभ = लक्ष्मी, शुक्ल = पार्वती, ब्रह्म= अश्विनी, ऐन्द्र = पितर और वैधृति = दिति।

इन योगों में वैधृति और व्यतीपात विवाह आदि शुभकर्मों में त्याज्य हैं। ज्योतिषशास्त्र के संहिता ग्रन्थों में योगों को पर्याप्त महत्व प्राप्त है।

शुभ योग – उक्त विष्कुम्भादि सत्ताइस योगों में प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, सुकर्मा, धृति, वृद्धि, ध्रुव, हर्षण, सिद्धि, वरियान, शिव, सिद्धि, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म एवं ऐन्द्र नामक योग शुभ योग कहे गये हैं।

अशुभ योग – उक्त योगों में विष्कुम्भ, अतिगण्ड, शूल, गण्ड, व्याघात, वज्र, व्यतिपात, परिघ एवं वैधृति नामक योग अशुभ कहे गये हैं।

4.3.1 योग साधक सूत्र-

(सूर्यांशकला + चन्द्रांशकला) ÷ ८०० कला = गतयोग + शेषकला/८००। ८०० कला – शेषकला = योग भोग्यकला। (शेषकला × ६० घटी) ÷ ८०० = वर्तमान योगभुक्त घटयादि। भोग्यकला × ६० घटी ÷ ८०० = वर्तमान योग भोग्य घटयादि। {(राशि × ३०°) + अंश} × ६० = भुक्तांश कलादि। इस सूत्र से योग साधन सुगमता से ज्ञात हो जाता है।

रविचन्द्र गत्यन्तर से भाग देने पर तिथि के घटयादि मान तथा गति योग से भाग देने पर योग के घटयादि मान तथा जिस ग्रह के गति से भाग देंगे, उस ग्रह का नक्षत्रभोग काल आता है। सूर्यचन्द्र का गति योग लगभग ८०० कला होता है, लेकिन स्फुटमान किंचित् अलग आता है।

4.3.2 योग साधन

योग आनयन के लिए सूर्यसिद्धान्त की गणितीय प्रक्रिया निम्नलिखित है –

$$\frac{\text{स्पष्टसूर्य} + \text{स्पष्टचन्द्र}}{८००} = \text{गत योग}$$

८०० – शेष = भोग्य मान

$$\frac{६० \times \text{भोग्यमान}}{\text{गतियोग}} = \text{भोग्य गणितीय योग।}$$

सूर्यगति + चन्द्रगति = गतियोग

मिश्रमान ± भोग्य गणितीय योग

= योगमान

उदाहरणार्थ –

स्पष्टसूर्य = ३/२३/५३/४४

स्पष्ट चन्द्र = ७/७/३५/२२

सूर्य गति = ०/५७/२२

चन्द्र गति = १२/१२/२

मिश्रमान = ४७/१७

सूत्रानुसार = ३/२३/ ५३/४४ (सूर्य)

+ ७/७/३५/२२ (चन्द्र)

११/१/२९/६

०/५७/२२ (सूर्य गति)

+१२/१२/२ (चन्द्र गति)

१३/९/२४ गतियोग

११ राशि × ३० = ३३० अंश + १ = ३३१ अंश

३३१ × ६० = १९८६० + २९ = १९८८९/ ६

$$\frac{१९८८९}{८००} = २४ \text{ गतयोग (शुक्ल)}$$

८००) १९८८९(२४

१९२००

६८९/६

यहाँ ८०० स्थिरांक है जो योग के स्थिरमध्यम मान १३ अंश २० कला का कलात्मक मान है।

८०० – ६८९/६

= ११० / ५४

६० × ११०/५४

१३/९/२४ गतियोग

= ३९९२४० एक जातीय करने पर

७८९/२४

४७३६४)३९९२४०(८/२५

३७८९१२

२०३२८

× ६०

१२१९६८०

११८४१००

३५५८०

४७/१७ मिश्रमान

\+ ८/२५ भोग्य

५५/४२

ब्रह्म योग = ५५/४२

इस प्रकार से सिद्धान्त ग्रन्थ या करण ग्रन्थ या आधुनिक पंचांगों से आनीत स्पष्टसूर्य एवं स्पष्टचन्द्र के माध्यम से योग का आनयन किया जा सकता है।

योग की उपपत्ति –

३६०° की चक्रकला २१६०० होती है। अर्थात् ३६० × ६० = २१६००

योगों की संख्या २७ है। अत: चक्रकला ÷ २७ = ८०० कला।

यही ८०० कला स्थिरांक के रूप में है।

अभ्यास प्रश्न -1

1. अथर्वज्योतिष के अनुसार योग का कितना गुणा फल मिलता है?

   क. 8 ख. 16 ग. 32 घ. 60

2. वसिष्ठ संहिता के अनुसार योगों की संख्या है –
   क. 27 ख. 28 ग. 29 घ. 30
3. पंचांग में योग के कितने प्रकार का उल्लेख मिलता है?
   क. 2 ख. 3 ग. 4 घ.5
4. शोभन नामक योग के स्वामी है –
   क. यम ख. ब्रह्मा ग. अग्नि घ. वृहस्पति
5. भचक्रकला ÷ 27 =?
   क. 500 कला ख. 600 कला ग. 700 कला घ.800 कला

4.4 योग क्षय तथा वृद्धि एवं योग फल

जिस योग में सूर्य का उदय न हो, उस योग को 'क्षय संज्ञक योग' कहते है। नक्षत्र तथा तिथि की तरह योग का आरम्भ सूर्योदय के कुछ समय बाद में हो तथा द्वितीय सूर्योदय से पूर्व यदि योगमान समाप्त हो तो योग क्षयाख्य कहते हैं। योग की वृद्धि भी तिथि तथा नक्षत्र की तरह होता है।
उदाहरण के लिए माना लिया कि आषाढ़ शुक्ल अष्टमी बुधवार को सिद्धि योग का मान ५२ घटी ३१ पल है। इसी दिनांक को सूर्योदय से ३ घटी ८ पल तक शिव योग है। चूँकि शिव योग ३ घटी ८पल पर समाप्त होकर सिद्धियोग प्रारम्भ हुआ। इसका मान ५२ घटी ३१ पल है। चूँकि ३ घटी ८ पल + ५२ घटी ३१ पल = ५५ घटी ३९ पल तक सिद्ध योग का घटयात्मक समय ज्ञात होता है। तत्पश्चात् साध्य योग का आरम्भ भी होता है।

योग फल –

विष्कम्भे जितशत्रुरर्थपशुमान् प्रीतौ परस्त्रीवश
श्चायुष्मत्प्रभवश्चिरायुरगदः सौभाग्यजातः सुखी।
भोगी शोभनश्योगजो वधरूचिर्जातोऽतिगण्डे धनी
धर्माचाररतः सुकर्मजनितो धृत्यां परस्त्रीधनः।।

यदि व्यक्ति का जन्म विष्कम्भ योग में हो तो वह शत्रुञ्जयी, धन और पशुधन सम्पन्न होता है, प्रीती योग में जन्म हो तो पराई स्त्री के वशीभूत, आयुष्मान योग में जन्म हो तो नैरूज्यता और दीर्घायु प्राप्त, सौभाग्य योग में जन्म हो तो सुखी, शोभन योग में जन्म हो तो हत्या की प्रवृत्ति से युक्त , भोगी, अतिगण्ड योग में जन्म हो तो धनवान, सुकर्मा योग में जन्म हो तो धर्माचारी, धृति योग में जन्म हो तो परस्त्री से धन प्राप्त करने वाला होता है।

शूले कोपवशानुग: कलहकृद्गण्डे दुराचारवान्।
वृद्धौ पण्डितवाग् ध्रुवेऽतिधनवान् व्याघातजो घातक:।।
ज्ञानी हर्षणयोगज: पृथुयशा वज्रे धनी कामुक:।
सिद्धौ सर्वजनाश्रित: प्रभुसमो मायी व्यतीपातज:।।

शूल योग में जन्म हो तो जातक क्रोधी, कलही, गण्ड योग में जन्म हो तो दुराचारी, वृद्धियोग में जन्म हो तो विद्वान वक्ता, ध्रुव योग में जन्म हो तो अतिधनी, व्याघात योग में जन्म हो तो घातक , हर्षण योग में जन्म हो तो यशस्वी और ज्ञानसम्पन्न, वज्र योग में जन्म हो तो धनिक और कामासक्त, सिद्धि योग में जन्म हो तो बहुजनों का आश्रयदाता, राजा के सदृश, व्यतीपात योग में जन्म हो तो जातक मायावी होता है।

दुष्कामी च वरीयजस्तु परिघे विद्वेषको वित्तवान्
शास्त्रज्ञ: शिवयोगजनश्च धनवान् शान्तोऽवनीशप्रिय:।
सिद्धे धर्मपरायण: क्रतुपर: साध्ये शुभाचारवान्
चार्वङ्ग: शुभयोगजश्च धनवान् कामातुर: श्लेष्मक:।।

वरीयान योगोत्पन्न जातक अतिकामासक्त होता है, परिघ योग में जन्म हो तो जातक विद्वेषक किन्तु विद्वान होता है, शिव योग में शास्त्रज्ञ, शान्तचित्त और राजा का प्रियपात्र होता है, सिद्ध योगोत्पन्न जातक धार्मिक और यज्ञकर्ता होता है, साध्य योग में जनम लेने वाला आचारवान, शुभ योग में उत्पन्न जातक सुन्दर देहयष्टि, धनसम्पन्न, कामातुर और कफ प्रधान प्रकृति का होता है।

शुक्ले धर्मरत: पटुत्ववचन: कोपी चल: पण्डितो
मानी ब्रह्मभवोऽतिगुप्तधनिकस्त्यागी विवेकप्रभु:।
ऐन्द्रे सर्वजनोपकारचरित: सर्वज्ञधीतिर्वत्तवान्
मायावी परदूषकश्च बलवान् त्यागी धनी वैधृतौ।।

शुक्ल योगोत्पन्न जातक धर्माचारी, वाक्पटु, क्रोधी, चंचल और विद्वान होता है, ब्रह्म योग में जन्मा व्यक्ति मानी, गुप्तधन का स्वामी, त्यागी और विवेकी होता है, ऐन्द्र योग में जन्म लेने वाला जातक परोपकारी, सर्वज्ञ, बुद्धि और धन से सम्पन्न होता है, वैधृति योग में जन्म हो तो जातक मायावी, परनिन्दक, बलशाली , त्यागी और धनवान् होता है ।

अभ्यास प्रश्न – 2

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. जिस योग में सूर्य का उदय न हो, उस योग को क्या कहते है।

क. वृद्धिसंज्ञक योग ख. क्षयसंज्ञक योग ग. आनन्दादि योग घ. विष्कुम्भादि योग

2. यदि किसी जातक का जन्म सौभाग्य योग में होता है तो वह क्या होता है ?

क. सुखी ख. दु:खी ग. कामी घ. आलसी

3. योगों के क्रम में प्रीति के बाद क्या आता है?

क. आयुष्मान ख. सौभाग्य ग. शोभन घ. अतिगण्ड

4. शुक्ले .... ?

क. वाक्पटु ख. धर्मप्रिय: ग. दानवीर: घ. सत्यभाषी

5. आनन्दादि योग में कालदण्ड के पश्चात् क्या आता है?

क. धाता ख. आनन्द ग. ध्वांक्ष घ. धूम्र

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि ज्योतिषशास्त्र में तिथि, नक्षत्र की अपेक्षा योगों का समावेश कब हुआ यह कहना अत्यन्त जटिलता से पूर्ण विषय है। तिथि और नक्षत्र की उपस्थिति का ज्ञान खगोलीय कारणों से स्पष्ट और गणित साध्य था, पर योगों की परिकल्पना अपेक्षाकृत दुरूह थी। चन्द्र-सूर्य का अन्तरात्मक मान तिथि थी तो वहाँ उसे मूर्तरूप देने के लिए चन्द्रकलायें भी थीं। चन्द्र सूर्य का संयोगात्मक मान एक वर्ष में कितना भगण पैदा कर सकता है और एक वृत्तात्मक परिभ्रमण में उसका कितना प्रतिदिवसीय मान उत्पन्न हो सकता है यह शोध और परिकल्पना का विषय था। यद्यपि आचार्यों के मन में यह विषय गणितीय दृष्टि से शीघ्र ही कौंध गया होगा कि यदि चन्द्र-सूर्य का वियोगात्मक मान तिथि जैसे महत्वपूर्ण तत्व को उत्पन्न कर सकता है तो उन दोनों का संयोगात्मक मान भी अवश्य ही सद्भाव में होगा। फलत: इन्हें 'योग' नाम से ही अभिहित किया गया।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

योग – पंचांग का एक प्रमुख अंग है – योग। सैद्धान्तिक दृष्टि से सूर्य एवं चन्द्रमा के गति योग 'योग' कहलाता है। योग दो प्रकार के होते हैं –एक स्थिरात्मक और दूसरा चलायमान। विष्कुम्भादि योग

चलायमान हैं, और आनन्दादि योग स्थिर।

आयुष्मान – विष्कुम्भादि सत्ताइस योगों में एक योग का नाम है – आयुष्मान।

कालदण्ड – आनन्दादि योगों में एक योग का नाम है - कालदण्ड। यह स्थिर होता है।

युति – मिलना

गणित – गण्यते संख्यायते तद् गणितम्।

भगण – १२ राशियों का एक भगण होता है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 की उत्तरमाला

1. ग 2. क 3. क 4. घ 5. घ

अभ्यास प्रश्न -2 की उत्तरमाला

1. ख 2. क 3. क 4. ख 5. घ

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ग्रहलाघवम् - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय

2. सूर्यसिद्धान्तीय परियोजना – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र

3. पंचांग साधन – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र

4. ज्योतिष शास्त्र – डॉ0 कामेश्वर उपाध्याय

5. भारतीय ज्योतिष – डॉ0 शंकरबालकृष्ण दीक्षित

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. केशवीय जातक पद्धति

2. ज्योतिष सर्वस्व

3. भारतीय कुण्डली विज्ञान

4. भारतीय ज्योतिष

5. ग्रहलाघवम्

6. सूर्यसिद्धान्त

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. योग का विस्तृत वर्णन कीजिये।

2. स्वकल्पित योग साधन कीजिये।

3. योग का उल्लेख करते हुए उनका महत्व निरूपण कीजिये।

4. योग का सैद्धान्तिक विवेचन कीजिये।

5. योग में उत्पन्न जातक का फल लिखिये।

इकाई - 5 करण साधन

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई MAJY-103 के द्वितीय खण्ड की पाँचवी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – करण साधन। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने योग के बारे में अध्ययन कर लिया है। अब आप पंचांग के और एक रूप '**करण**' के बारे में अध्ययन करने जा रहे हैं।

तिथ्यर्धं करणम्। अर्थात् तिथि का आधा करण होता है। करण दो प्रकार के होते है। एक स्थिर द्वितीय चलायमान। स्थिर करणों की संख्या ४ तथा चलायमान करणों की संख्या ७ है।
आइए इस इकाई में करण का ज्ञान करते हुए उसके गणितीय अवयवों को भी समझने का प्रयास करते हैं।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि करण किसे कहते है।
- को ज्ञात हो जायेगा कि करण का मान कितना होता है।
- करण के गणितीय अवयव को समझ लेंगे।
- अच्छी तरह से करण का साधन कैसे किया जाता है, जान जायेंगे।

5.3 करण परिचय

भारतवर्ष में पंचांगों का प्रयोग भविष्यज्ञान तथा धर्मशास्त्र विषयक ज्ञान के लिए होता चला आ रहा है। पंचांग में पाँच अंग होते हैं, अथवा यह कहना समुचित होगा कि पाँच अंगों के कारण पंचांग नाम पड़ा। ये पाँच अंग हैं - तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण।

तिथ्यर्धं करणं प्रोक्तम् सूत्र के अनुसार एक तिथि का आधा भाग एक करण होता है। इस प्रकार से एक तिथि में दो करण होते हैं। लुप्ततिथि में श्राद्ध का निर्णय करने में करण नियामक होता है। अत: करण का धार्मिक तथा अदृश्य महत्व है। श्राद्ध, होलिका दाह, यात्रा और अन्यान्य शुभकर्मो एवं संस्कारों में करण नियन्त्रण ही शुभत्व को स्थिर करता है। तिथि चौबीस घण्टे की स्थिति बतलाती है, नक्षत्र, योग और वार भी चौबीस घण्टे को प्रभावित करते हैं, पर करण बारह घण्टे में ही अपनी स्थिति से काल को प्रभावित कर डालता है। विष्टि करण ही लोक में 'भद्रा' के नाम से विख्यात है। प्रायश: सम्पूर्ण भारतवर्ष में ज्योतिष शास्त्र को मानने एवं जानने वाले लोग भद्रा में कोई भी शुभ कार्य नहीं करते। विष्टिकरण का अदृश्य दुष्प्रभाव जीवन में प्रत्यक्ष देखा गया है।

एक चान्द्र मास में कुल ३० तिथियाँ होती हैं। इन्हीं तिथियों में करण का निवास एवं अनुवर्तन होता रहता है। ये करण कुल ११ हैं। ४ स्थिर करण तथा ७ चल करण। ७ चल करणों में वव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि ख्यात हैं। इनकी संख्या तथा क्रम नियत है। चार स्थिर करणों में शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न हैं। ७ करणों का एक पक्ष में ४ बार अनुवर्तन होता है – ७ × ४ = २८ या तिथियाँ। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि के द्वितीय अर्ध भाग में शकुनि, अमावस्या के प्रथमार्ध भाग में चतुष्पद करण तथा अमावस्या के द्वितीयार्ध भाग में नाग करण होता है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि के प्रथमार्ध भाग में किंस्तुघ्न करण होता है। ये स्थिर करण चल करणों के ८ अनुवर्तन को संतुलित करते हैं। ७ × ८ = ५६ करण अर्थात् २८ तिथियाँ हुई, क्योंकि एक तिथि में दो करण होते हैं। शेष दो तिथियों में चार स्थिर करण होते हैं। यही क्रम सूर्यसिद्धान्त में दिया गया है।

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध भाग में शकुनि तथा अमावस्या के प्रथमार्ध भाग में चतुष्पद, द्वितीयार्ध में नाग एवं शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के प्रथमार्ध में किंस्तुघ्न ये नियामक करण हैं। इनका स्थान निर्धारित है और ये चान्द्रमास में एक ही बार आते हैं। चर या चल करण के रूप में सात करणों के सन्दर्भ में तथा चार ध्रुव (स्थिर) करणों के सन्दर्भ में सूर्यसिद्धान्त में इस प्रकार से उल्लेख प्राप्त होता है –

ध्रुवाणि शकुनिर्नागः तृतीयं तु चतुष्पदम्।
किंस्तुघ्नं च चतुर्दश्याः कृष्णाया अपरार्धतः।।
ववादीनि तथा सप्त चराख्यकरणानि तु।
मासेऽष्टकृत्व एकैकं करणं परिवर्तते।
तिथ्यर्धभोगं सर्वेषां करणानां प्रचक्षते।।

सूर्यसिद्धान्त में जिन चार स्थिर करणों का नाम है वही नाम अन्यत्र भी प्राप्त है, परन्तु इस समय व्यवहार में क्रम बदला हुआ है। अन्य ग्रन्थों में शकुनि, चतुष्पद, नाग तथा किंस्तुघ्न का क्रम पठित है और आज यही व्यवहार में भी है। इन चारों करणों में चन्द्रबल क्षीण रहता है, क्योंकि कृष्णपक्ष की चतुर्दशी से लेकर शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तक चन्द्र दर्शन नहीं होता। फलत: इनमें कोई भी शुभकार्य नहीं किया जाता है।

नीचे यहाँ करण को समझने के लिए तालिका दी जा रही है –

	शुक्ल पक्ष		कृष्ण पक्ष	
क्रम	**प्रथमार्ध**	**उत्तरार्ध**	**प्रथमार्ध**	**उत्तरार्ध**
१	किंस्तुघ्न	वव	बालव	कौलव
२	बालव	कौलव	तैतिल	गर
३	तैतिल	गर	वणिज	विष्टि
४	वणिज	विष्टि	वव	वालव
५	वव	वालव	कौलव	तैतिल
६	कौलव	तैतिल	गर	वणिज
७	गर	वणिज	विष्टि	वव
८	विष्टि	वव	वालव	कौलव
९	वालव	कौलव	तैतिल	गर
१०	तैतिल	गर	वणिज	विष्टि
११	वणिज	विष्टि	वव	वालव
१२	वव	वालव	कौलव	तैतिल
१३	कौलव	तैतिल	गर	वणिज
१४	गर	वणिज	विष्टि	शकुनि
१५	विष्टि	वव	चतुष्पद	नाग

इस तालिका में स्पष्ट है कि शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के उत्तरार्ध में, अष्टमी के पूर्वार्ध में, एकादशी के उत्तरार्ध में तथा पूर्णिमा के पूर्वार्धभाग में विष्टि भ्रदा रहती है। ठीक इसी तरह कृष्णपक्ष की तृतीया के उत्तरार्ध भाग में सप्तमी के पूर्वार्द्ध भाग में, दशमी के उत्तरार्ध भाग में तथा चतुर्दशी के पूर्वार्द्ध भाग में विष्टि भ्रदा नियत है। इसी स्थिति को सुस्थिर करके श्लोक निर्मित किया गया है –

शुक्ले पूर्वार्द्धेऽष्टमीपंचदश्यो

भेंद्रैकादश्यां चतुर्थ्यां परार्द्धे।

कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात्तृतीयादशम्योः।

पूर्वे भागे सप्तमीशम्भुतिथ्योः।।

अथर्वज्योतिष में न केवल विष्टि भ्रदा करण की स्थिर आवृत्ति का प्रतिपादनप है, बल्कि वहाँ वव आदि करणों की आवृत्ति का भी उल्लेख है –

शुक्लप्रतिपदि रात्रौ दिवि पंचम्यां तथाष्टम्यां रात्रौ।

द्वादश्यामपि दिवा प्रथमं प्रतिपद्यते करणम्।।

पौर्णमास्यां ववं रात्रौ तच्चतुर्थ्यां पुनर्दिवा।
तद्धि तत्सप्तम्यां रात्रौ तच्चैवैकादश्यां दिवा।।

अथर्वज्योतिष में न केवल विष्टि भ्रदा करण की स्थिर आवृत्ति का प्रतिपादन है, बल्कि वहाँ वव आदि करणों की आवृत्ति का भी उल्लेख है –

शुक्लप्रतिपदि रात्रौ दिवि पंचम्यां तथाष्टम्यां रात्रौ।
द्वादश्यामपि दिवा प्रथमं प्रतिपद्यते करणम्।।
पौर्णमास्यां ववं रात्रौ तच्चतुर्थ्यां पुनर्दिवा।
तद्धि तत्सप्तम्यां रात्रौ तच्चैवैकादश्यां दिवा।।

वव करण शुक्लपक्ष प्रतिपदा एवं अष्टमी की रात्रि में आता है। पंचमी और द्वादशी के दिन में वव करण आता है। इसी तरह पूर्णिमा और सप्तमी और की रात्रि में तथा चतुर्थी और एकादशी के दिन में वव का आगमन होता रहता है। इसमें पूर्णिमा के बाद कृष्णपक्ष की तिथियाँ ली गई हैं। अथर्वज्योतिष में 'कौस्तुभ' करण कहा गया है जिसे बाद के ग्रन्थों में किंस्तुघ्न नाम से कहा गया है। 'गराजि' करण बाद में केवल 'गर' नाम से पुकारा जाने लगा। कौस्तुभ यानी हीरकमणि, किंस्तुघ्न अर्थात् ध्वंसक, गराजि: अर्थात् विषघ्न केवल गर अर्थात् विष। इन दोनों करणों का अर्थ दुष्ट हो गया बाद के ग्रन्थों में।

करणों का प्रयोजन –

प्रश्नशास्त्र, केरल, यात्रा तथा शुभाशुभ कार्य में शुभाशुभ समय निर्धारण तथा सूक्ष्म गणना में इसका प्रयोजन है। कर्मकाण्ड तथा धार्मिक अनुष्ठान भी इससे सम्बद्ध हैं।

करण स्वामी –

वव के स्वामी इन्द्र, बालव के ब्रह्मा, कौलव के मित्र (सूर्य), तैतिल के अर्यमा, गर की अधिपति पृथ्वी, वणिज की अधिपति लक्ष्मी तथा विष्टि के स्वामी यम हैं। शकुनि के कलि, चतुष्पद के सांड (वृषभ), नाग के सर्प तथा किंस्तुघ्न के स्वामी वायु हैं।

अथर्वज्योतिष में करणों के देवता वैदिक युग से प्रभावित हैं। बाद के देवता मानव ज्योतिष द्वारा निर्धारित हैं। अथर्वज्योतिष में करण स्वामी इस प्रकार हैं –

ववस्य देवता विष्णुर्वालवस्य प्रजापति:।
कौलवस्य भवेत् सोमस्तैतिलस्य शतक्रतु:।।
गराजिर्वसुदेवत्यो मणिभ्रदोऽथ वाणिजे।
विष्टेस्तु दैवतं मृत्युर्देवता परिकीर्तिता:।।

शकुनस्य गरूत्मान्वै वृषभो वै चतुष्पदे।
नागस्य देवता नागा: कौस्तुभस्य धनाधिप:।।

5.3.1 करणों में विहित कर्म –

वव - इसमें शुभकर्म, पशुकर्म, धान्यकर्म, स्थिर कर्म, पुष्टिकर्म, धातु सम्बन्धी कर्म करना चाहिए। प्रस्थान, प्रवेश कर्म शुभ होता है।

बालव – इसमें धार्मिक कार्य, मांगलिक कार्य, उत्सव कार्य, वास्तुकर्म, राज्याभिषेक तथा संग्रामकार्य करना चाहिए। यज्ञ, उपनयन, विवाह शुभ होता है।

कौलव – इसमें हाथी, अश्व, ऊँट का संग्रह, हथियार, उद्यान, वृक्षारोपण कर्म करना चाहिए। वालव में प्रतिपादित कर्म भी कौलव में करना चाहिए।

तैतिल – इसमें सौभाग्यवर्धक कर्म, वेदाध्ययन, संधि विग्रहकर्म, यात्रा, क्रय-विक्रय, तडाग-वापी-कूप खनन कर्म करना चाहिए। राजसेवकों के लिए शुभ है।

गर – इसमें कृषि कर्म, बीजवपन, गृहनिर्माण कर्म करना चाहिए।

वणिज – इसमें स्थिरकार्य, व्यवसाय सम्बन्धी कर्म, योग-संयोग सम्बन्धी कर्म करना चाहिए। विक्रेता रिध्यते तत्र क्रेता तत्र न रिध्यते।

विष्टि – इस विष्टि (भ्रदा) में शुभ कर्म न करके अशुभ कर्म करना चाहिए, जैसे – वध, बन्धन, घात, षट्कर्म, विषकर्म आदि।

शकुनि – इसमें औषधि कर्म, पुष्टि कर्म, मूलकर्म एवं मंत्रकर्म करना चाहिए।

चतुष्पद – इसमें गोक्रय-विक्रय, पितृकर्म तथा राज्यकर्म करना चाहिए।

नाग – इसमें स्थिरकर्म, कठिनकर्म, हरण एवं अवरोध सम्बन्धी कर्म करना चाहिए।

किंस्तुघ्न – इसमें शुभकर्म, वृद्धिकर्म, पुष्टिकर्म, मांगलिकर्म तथा सिद्धि कर्म करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न -1

1. एक करण होता है?
   क. तिथि का आधा भाग ख. नक्षत्र का आधा भाग ग. योगार्ध घ. वारार्ध
2. एक चान्द्रमास में कुल कितनी तिथियाँ होती हैं?
   क. २० ख.३० ग.४० घ. ५०
3. चल करणों की संख्या है?
   क. ५ ख.६ ग.७ घ.४

4. स्थिर करणों की संख्या है?

   क. ५ ख.४ ग.७ घ. ८

5. ७ करणों का एक पक्ष में कितने बार अनुवर्तन होता है?

   क. चार बार ख.पाँच बार ग. छ: बार घ. सात बार

5.3.2 भद्रा सम्बन्धी तथ्य –

भ्रदा की उत्पत्ति महाकाल के वक्ष से हुयी है। इससे सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण काल मान में कुछ क्षण ऐसे होते हैं जो भयावह एवं सर्वनाशक होते हैं। इन्हीं क्षणों को गणकों ने पहचानकर भद्रा की संज्ञा दी। देवासुर संग्राम के समय देवगणों की हार को देखकर क्रुद्ध भगवान् शंकर ने अपने ही हृदय को देखा तो उससे एक शक्ति की उत्पत्ति हुई। यही शक्ति विष्टि या भ्रदा कही गयी। इसकी मुख-आकृति गदहे के मुख की तरह थी, भुजाओं की संख्या सात, सिंह की तरह गर्दन वाली, पतले पेट वाली तथा प्रेतवाहना थी। गदहे की तरह पूँछ भी इसे थी। इसने राक्षसों का विनाश करना शुरू किया। प्रसन्न होकर सभी देवगणों ने इसे अपने कान के पास धारण किया। इससे सिद्ध होता है कि विष्टि काल पुरूष के हृदय से निकली है और ब्रह्माण्ड में स्थिर देवगणों के दोनों कानों के पास स्थित है। अत: करण देवभाग में कान के समीप स्थित है अथवा देवताओं के करणांग में निवास करने के कारण ये करण कहलाये। वसिष्ठ ऋषि ने कहा है –यह विष्टि रूद्र के तृतीय नेत्र से उत्पन्न हुई है। इसीलिए सब कुछ जला डालने की क्षमता है इसमें। फलत: विष्टि में किया हुआ शुभ कार्य भस्म हो जाता है। इसके दाँत भयानक हैं। स्वयं भी काले बादलों की तरह देखने में भयानक है। यह लम्बी नाक वाली तथा मोटी पिंडली व जांघों वाली है। इससे अग्नि की लपटें निकलती है। इसके शरीर के किसी भाग में पड़ने पर शुभत्व नाश होता है। मात्र पूँछ में किया हुआ कार्य शुभ होता है। इसीलिए पूर्णिमा में होलिका दाह के समय यदि भ्रदा हो तो पूँछ काल उपस्थित होने पर ही होली जलायी जाती है।

दिशा प्रहर ज्ञान –

भद्रा का मुख किस दिशा में और किस प्रहर में होता है। इसका ज्ञान करने के बाद ही अत्यावश्यक यात्रायें या अन्य शुभ कर्म करना चाहिए। कुल आठ प्रहर की दिनरात्रि होती है। अर्थात् एक प्रहर तीन घंटे के तुल्य होता है। चतुर्दशी तिथि में भद्रा पूर्व दिशा में प्रारम्भ में एक प्रहर रहती है। अष्टमी में अग्निकोण में द्वितीय प्रहर में रहती है। सप्तमी तिथि में दक्षिण में तृतीय प्रहर में तथा पूर्णिमा में नैर्ऋत्य कोण में चतुर्थ प्रहर में रहती है। चतुर्थी तिथि में पंचम प्रहर में पश्चिम में, दशमी

तिथि में सातवें प्रहर में तथा तृतीया तिथि में ईशान कोण में आठवें प्रहर में रहती है।

यहाँ ध्येय है कि कोई भी करण तिथ्यर्ध से ज्यादा नहीं होता और एक तिथि स्थूलत: चौबीस घण्टे की होती है।

इस प्रकार से १२ घंटे से ज्यादा भ्रदा नहीं रहती। वैसी स्थिति में आठवें प्रहर का अर्थ भद्रा के अन्तिम प्रहर में अर्थात् अंतिम तीन घण्टे में तृतीया तिथि में ईशान कोण में भद्रा रहेगी।
राशियों के आधार पर भी भ्रदा का ज्ञान होता है, जैसे मेष, मकर, वृष एवं कर्क राशि में भ्रदा स्वर्ग में रहती है, कन्या तुला, मकर तथा धनु राशि में पाताल लोक में रहती है। कुम्भ, मीन, वृश्चिक तथा सिंह राशि में भद्रा मृत्युलोक (पृथ्वी) में रहती है। इस प्रकार भ्रदा सतत तीनों लोकों (स्वर्ग, पाताल, मर्त्य) में विचरण करती रहती है। मर्त्यलोक की भद्रा विनाशक मानी गयी है।

यद्यपि भ्रदा के निवास का स्थान, दिशा, प्रहर, काल, घटी आदि का विचार विस्तृत रूप से हुआ है, परन्तु लोक में व्यवहार पक्ष में इसे कोई स्वीकार नहीं करता। भ्रदा का नाम सुनते ही लोग प्रायश: शुभ कर्म स्थगित कर देते हैं। फिर भी विकल्प की विधियों को जानते रहने से अत्यावश्यक होने पर समाधान निकाल लिया जाता है।

भद्रा के नाम –

कुल ग्यारह करणों में भद्रा या विष्टि एक करण है, पर इस एक करण के अकेले आठ नाम आचार्यों ने कहे हैं, जैसे – कराली, नन्दिनी, रौद्री, सुमुखी, दुर्मुखी, त्रिशिरा, वैष्णवी तथा हंसी। इन आठ प्रकार की भद्राओं को भी मुख्यरूप से दो वर्ग में रखा गया है। प्रथम वर्ग को सर्पिणी कहा गया तथा द्वितीय वर्ग को वृश्चिकी। सर्पिणी भ्रदा का मुख महा अशुभ माना गया है और वृश्चिकी भद्रा का पुच्छ भाग खतरनाक होता है।

नारद ऋषि के अनुसार भद्रा की पूँछ में तीन घटी ही आती है, अर्थात् सम्पूर्ण भद्राकाल में मात्र ७२ मिनट का समय काम चलाऊ या आवश्यक शुभकर्म करने लायक होता है। नारद ऋषि के मत को मान्यता प्राप्त है।

धर्मसिन्धु में भद्रा का जो विचार आया है उसी के अनुसार होलिका दाह के समय भद्रा रहने पर परिहार किया जाता है। यह मत सम्पूर्ण देश में मान्य है। उदाहरण के लिए जिस तिथि में वणिज करण का मान २/८ घटी पल हो और विष्टि करण का मान ३४/१९ हो तो भद्रा का सम्पूर्ण मान ३२/११ घटी पल होगा। इसका चतुर्थांश निकालने पर ८ घटी २ पल ४५ विपल होगा। यही भ्रदा की पूँछ होती है और चतुर्थपाद के आरम्भ की पाँच घटी मुख कहलाती है। फलत: ८/२/५४ को तीन से गुणा करने पर २४ घटी ८ पल और १५ विपल होगा। इसमें तीन घटी घटाने से २१ घटी ८ पल १५

विपल से लेकर २४ घटी ८पल १५ विपल तक पूँछ होगी। इसी में होलिका दाह या अन्य आवश्यक कर्म किया जा सकता है। अत: धर्मसिन्धु के अनुसार भ्रदा पूँछ = भद्रा सम्पूर्ण मान – एकपाद चतुर्थांश – ३ घटी।

भ्रदा की विफलता –

पूर्वार्द्ध में लगनेवाली भद्रा यदि उत्तरार्द्ध में लगे तो उसका दुष्प्रभाव निष्फल हो जाता है। ऐसा मत वृहस्पति का है। इस मत का समर्थन ब्रह्मयामल ग्रन्थ, पीयूषधाराटीका, ब्रह्मसिद्धान्तादि ग्रन्थों ने भी किया है। वृहस्पति का मत इस प्रकार से है –

विष्टिस्तु सर्वथा त्याज्या क्रमेणैवागता तु या।
अक्रमेणागता भद्रा सर्वकार्येषु शोभना।।

गणक कालिदास ने कहा है कि महामृत्युंजय मन्त्र जप या शिव जी के जप में, मीन तथा मेष राशि के चन्द्रमा के समय पूजन करने में, कालरात्रि या शिवा रात्रि में हवन करने में भ्रदा अशुभ फल नहीं देती है –

स्यादभ्रदाय भद्रा न शम्भोर्जये
मीनराशौ न योगस्तथाप्यर्चने।
होमकाले शिवायास्तमी: तद्भव:।
साधने सर्वकाले न मेषेऽनयो:।।

भद्रावास –

यदि चन्द्रमा कर्क, सिंह कुम्भ तथा मीन राशि में हो, तो भद्रा का वास पृथ्वी पर मानते हैं। मेष, वृष, मिथुन तथा कर्क में राशियों में हो तो स्वर्ग में तथा कन्या, तुला, धनु तथा मकर में हो तो पाताल में भद्रा का वास होता है। स्वस्थान स्थिति के अनुसार अपना प्रभाव दिखाता है। स्वर्गस्थ भद्रा में अन्तरिक्षजन्य कार्य तथा भूमि के उपर का कार्य भूपृष्ठस्थ भद्रा में भूसंयुक्त कार्य तथा पातालस्थ भ्रदा में भू खनन, गृहारम्भ, बीजवपन प्रभृति कार्य त्याज्य है। इसका विशेष विचार मुहूर्त्त ग्रन्थ गम्य तथ्य है। कृष्णपक्ष प्रतिपदा के पूर्वार्ध में बालव करण है। बालव करण का प्रारम्भ ५३ घटी २५ पल पर पूर्णिमान्त के बाद होना तथा कृष्ण प्रतिपदा पूर्वार्धान्त २३ घटी ४ पल ३० विपल पर होना उपर्युक्त गणित से पंचांग प्रमाण सिद्ध है। प्रतिपदा तिथ्यन्त ५२ घटी २५ पल पर कौलक करणान्त सिद्ध है। पंचांग में औदायिक करण लिखा जाता है। द्वितीय करण तिथ्यन्त प्रमाण से संकेतित है।

5.4 करण ज्ञापक सूत्र एवं साधन

चन्द्रभोगांश – सूर्यभोगांश / ६° = गतकरण + शेष / ६/६° - शेष = भोग्य।

शेष × ६० घटी / चन्द्ररविगत्यन्तर कला = भुक्तघटयादि एवं = शेष × ६० घटी / चन्दगति-रविगति = भोग्य घटयादि।

करणों का आरम्भ तथा समाप्ति काल -

माना कि आषाढ़ कृष्ण पक्ष प्रतिपदा मंगलवार को ५२ घटी २५ पल

द्वितीया तिथि बुधवार को ५२ घटी ११ पल

तृतीया तिथि गुरुवार को ५३ घटी १७ पल

इस प्रकार पंचांग प्रमाण के करण का प्रारम्भ तथा अन्त जानना है।

एतदर्थ सूत्र –

६० – पूर्व तिथिभोग + वर्तमान तिथिभोग = पूर्णतिथिभोग।

प्रथम पूर्णतिथ्यन्त + पूर्णतिथिभोगार्ध = प्रथम करणान्त।

प्रथम करणान्त + तिथि उत्तरार्ध = द्वितीय करणान्त।

पक्षारम्भ से गणना करने पर सभी करण घटयात्मक प्रमाण से आते हैं। तिथि को घण्टात्मक बनाकर ६० घटी के बदले २४ घण्टा प्रमाण से उपर्युक्त सूत्रानुरोधेन से, प्रयोग करने पर घण्टा मिनट प्रमाण से सभी करणों का प्रारम्भ तथा अन्त सुगमता से जान सकते हैं।

सूत्र के प्रयोग से प्राप्त पक्ष-

६० घटी – ५३ घटी ५२ ज्येष्ठ पूर्णिमा = ६ घटी ८ पल गतदिवसीय पूर्णिमा की समाप्ति के पश्चात् प्रतिपदा का भोग। ६ घटी ८ पल + ५२ घटी २५ पल = ५८ घटी ३३ पल। प्रतिपदा का पूर्ण भोग। तिथ्यर्धं करण ५८ घटी ३३ पल ५८ घटी ३३ पल / २ = २९ घटी ८१. ५पल तक प्रथमकरणान्त

करण फल -

बवकरणभव: स्याद्बालकृत्य: प्रतापी

विनयचरितवेषो बालवे राजपूज्य: ।

गजतुरगसमेत: कौलवे चारूकर्मा

मृदुपटुवचनः स्यात्तैतिले पुण्यशीलः ।।

बव करण में उत्पन्न व्यक्ति बालकके समान आचरण करने वाला प्रतापी होता है। बालव करण में उत्पन्न जातक विनयी किन्तु राजपूज्य होता है, कौलव करण में जन्म हो तो जातक हाथी – घोड़े से युक्त, सत्कार्यकर्ता होता है, तैतिल करण में जन्म हो तो जातक मृदु वाक्पटु और पुण्यात्मा होता है।

गरजकरणजातो वीतशत्रुः प्रतापी
वणिजि निपुणवक्ता जारकान्ताविलोलः ।
निखिलजनविरोधी पापकर्माऽपवादी
परिजनपरिपूज्यो विष्टिजातः स्वतन्त्रः ।।

गर करण में उत्पन्न जातक शत्रुहीन, प्रतापी होता है, वणिज करण में उत्पन्न व्यक्ति कुशल वक्ता, वेश्यागामी होता है, विष्टि करण में उत्पन्न व्यक्ति जनविरोधी, पापात्मा, अपवादी और स्वजन एवं परिजनों द्वारा पूजित होता है।

शकुनि योग में उत्पन्न व्यक्ति काल को जानने वाला, चिरसुखी, किन्तु दूसरों के विपत्ति का कारण होता है। चतुष्पद करण में उत्पन्न जातक सर्वज्ञ, सुन्दर बुद्धिवाला, यश और धन से सम्पन्न होता है। नाग करण में जन्म लेने वाला व्यक्ति तेजस्वी, अतिधनसम्पन्न , बलशाली और वाचाल होता है। किंस्तुघ्न करणोत्पन्न जातक दूसरों का कार्य करने वाला,चपल, बुद्धिमान और हास्यप्रिय होता है।

अभ्यास प्रश्न – 2

बहुवैकल्पिक प्रश्न –

1. भद्रा की उत्पत्ति कहाँ से हुई है?
   क. देवता से   ख. समुद्र से   ग. महाकाल के वक्ष से   घ. विष्णु के नाभि से
2. तिथ्यर्धं किं भवति ?
   क. नक्षत्र   ख. वार   ग. करण   घ. तिथि
3. एक अहोरात्र में कुल कितने प्रहर होते हैं?
   क. ५   ख. ६   ग. ७   घ. ८
4. यदि चन्द्रमा का वास कर्क राशि पर हो तो भद्रा का निवास कहाँ होता है?
   क.पृथ्वी   ख. स्वर्ग   ग. पाताल   घ. अग्निकोण
5. करणों के क्रम में कौलव के पश्चात् क्या आता है?

क. गर   ख. तैतिल   ग. वणिज   घ. विष्टि

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि तिथ्यर्धं करणं प्रोक्तम् सूत्र के अनुसार एक तिथि का आधा भाग एक करण होता है। इस प्रकार से एक तिथि में दो करण होते हैं। लुप्ततिथि में श्राद्ध का निर्णय करने में करण नियामक होता है। अत: करण का धार्मिक तथा अदृश्य महत्व है। श्राद्ध, होलिका दाह, यात्रा और अन्यान्य शुभकर्मों एवं संस्कारों में करण नियन्त्रण ही शुभत्व को स्थिर करता है। तिथि चौबीस घण्टे की स्थिति बतलाती है, नक्षत्र, योग और वार भी चौबीस घण्टे को प्रभावित करते हैं, पर करण बारह घण्टे में ही अपनी स्थिति से काल को प्रभावित कर डालता है। विष्टि करण ही लोक में 'भद्रा' के नाम से विख्यात है। प्रायश: सम्पूर्ण भारतवर्ष में ज्योतिष शास्त्र को मानने एवं जानने वाले लोग भद्रा में कोई भी शुभ कार्य नहीं करते। विष्टिकरण का अदृश्य दुष्प्रभाव जीवन में प्रत्यक्ष देखा गया है। एक चान्द्र मास में कुल ३० तिथियाँ होती हैं। इन्हीं तिथियों में करण का निवास एवं अनुवर्तन होता रहता है। ये करण कुल ११ हैं। ४ स्थिर करण तथा ७ चल करण। ७ चल करणों में वव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज, विष्टि ख्यात हैं। इनकी संख्या तथा क्रम नियत है। चार स्थिर करणों में शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न हैं। ७ करणों का एक पक्ष में ४ बार अनुवर्तन होता है – ७ × ४ = २८ या तिथियाँ। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि के द्वितीय अर्ध भाग में शकुनि, अमावस्या के प्रथमार्ध भाग में चतुष्पद करण तथा अमावस्या के द्वितीयार्ध भाग में नाग करण होता है। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि के प्रथमार्ध भाग में किंस्तुघ्न करण होता है। ये स्थिर करण चल करणों के ८ अनुवर्तन को संतुलित करते हैं। ७ × ८ = ५६ करण अर्थात् २८ तिथियाँ हुई, क्योंकि एक तिथि में दो करण होते हैं। शेष दो तिथियों में चार स्थिर करण होते हैं। यही क्रम सूर्यसिद्धान्त में दिया गया है। कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के उत्तरार्ध भाग में शकुनि तथा अमावस्या के प्रथमार्ध भाग में चतुष्पद, द्वितीयार्ध में नाग एवं शुक्लपक्ष की प्रतिपदा के प्रथमार्ध में किंस्तुघ्न ये नियामक करण हैं। इनका स्थान निर्धारित है और ये चान्द्रमास में एक ही बार आते हैं

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

करण – तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं।

भद्रा – विष्टि नाम के करण को 'भद्रा' कहते हैं। इसकी उत्पत्ति महाकाल के 'वक्ष' से हुई है।

चल करण – बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज एवं विष्टि को चल करण कहते हैं।

स्थिर करण – इनकी संख्या 4 है। शकुनि, नाग, चतुष्पद एवं किंस्तुघ्न नामक करण को स्थिर करण के रूप में जानते हैं।

शुक्लपक्ष- जिस पक्ष में चन्द्रमा की कला दृष्ट हो, उसे शुक्लपक्ष कहते हैं।

कृष्णपक्ष – जिस पक्ष में चन्द्रमा की कला दृष्ट न हो, उसे कृष्णपक्ष कहते हैं।

पूर्णिमा – शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को पूर्णिमा कहते हैं।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 की उत्तरमाला

1. क 2. ख 3. ग 4. ख 5. क

अभ्यास प्रश्न -2 की उत्तरमाला

1. ग 2. ग 3. घ 4. क 5. ख

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ग्रहलाघवम् - प्रोफेसर रामचन्द्र पाण्डेय
2. तैतरीय ब्राह्मण
3. पंचांग साधन – प्रोफेसर सच्चिदानन्द मिश्र
4. ज्योतिष शास्त्र – डॉ0 कामेश्वर उपाध्याय
5. भारतीय ज्योतिष – डॉ0 शंकरबालकृष्ण दीक्षित

5.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. केशवीय जातक पद्धति
2. ज्योतिष सर्वस्व
3. भारतीय कुण्डली विज्ञान
4. भारतीय ज्योतिष
5. ग्रहलाघवम्
6. सूर्यसिद्धान्त

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. करण किसे कहते है। विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. करण का सैद्धान्तिक विवेचन कीजिये।

3. करण कितने प्रकार के होते है। समझाते हुए लिखिये।

4. भद्रा किसे कहते है? स्पष्ट रूप से लिखिये।

5. करण का पंचांग में उपयोगिता पर प्रकाश डालें।

खण्ड - 3
मुहूर्त्त विचार की आवश्यकता एवं संस्कार

इकाई - 1 मुहूर्त्त परिचय, पंचांग का शुभाशुभत्व विवेचन

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के तृतीय खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – मुहूर्त परिचय एवं पंचांग का शुभाशुभत्व विवेचन। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने पंचांग एवं उनके विभिन्न अंगों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में मुहूर्त्तों के बारे मे तथा पंचांग के शुभाशुभत्व का अध्ययन करने जा रहे हैं।

मुहूर्त्त ज्योतिष शास्त्र का अभिन्न अंग है। विशेष रूप से इसका सम्बन्ध सीधे तौर पर जनमानस से है, क्योंकि समस्त धर्मकार्य, पर्व तथा उत्सवादि मुहूर्त्तों पर ही आधारित होते हैं।

इस इकाई में हम मुहूर्त्त की परिभाषा, सामान्य परिचय के साथ-साथ पंचांगों से सम्बन्धित शुभाशुभ तथ्यों को भी जानने का प्रयास करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि

- मुहूर्त्त किसे कहते हैं।
- मुहूर्त्तों का ज्योतिषशास्त्र में क्या योगदान हैं।
- विभिन्न प्रकार के मुहूर्त्तों को समझा सकेंगे।
- पंचांग किसे कहते हैं।
- पंचांगों के शुभाशुभत्व को जान जायेंगे।

1.3 मुहूर्त्त परिचय

मुहूर्त्त विश्वोत्पादक काल भगवान के त्रुटि आदि कल्पान्त अनन्त अवयवों में एक महत्वपूर्ण अंग है। जिसके आधार पर ही विश्व के मानव समाज अपने-अपने कर्तव्य करते हैं तथा स्व-स्व प्रारब्ध और पुरूषार्थ के अनुसार उसका फल प्राप्त करते हैं। व्याकरणशास्त्रदृष्ट्या 'मुह' धातु मे उरट् प्रत्यय लगकर मुहूर्त्त शब्द की निष्पत्ति हुई है।
ज्योतिषशास्त्र (कालतन्त्र) में काल के अनेक अंग बताये गये हैं, जिनमें ५ अंगों की प्रधानता है। जैसा कि कहा गया है –

> वर्ष मासो दिनं लग्नं मुहूर्त्तश्चेति पंचकम्।
> कालस्यांगानि मुख्यानि प्रबलान्युत्तरोत्तरम्।।

पंचस्वेतेषु शुद्धेषु समय: शुद्ध उच्यते।
मासो वर्षभवं दोषं हन्ति मासभवं दिनम्।।
लग्नं दिनभवं हन्ति मुहूर्त: सर्वदूषणम्।
तस्मात् शुद्धिर्मुहूर्तस्य सर्वकार्येषु शस्यते।।

अर्थात् पहला वर्ष, दूसरा मास, तीसरा दिन, चौथा लग्न और पाँचवाँ मुहूर्त्त, ये ५ काल के अंगों में प्रधान माने गये हैं। ये उत्तरोत्तर बली है। इन्हीं पाँच की शुद्धि से समय शुद्ध समझा जाता है। यदि मास शुद्ध हो तो अशुद्ध वर्ष का दोष नष्ट हो जाता है एवं दिन शुद्ध हो तो अशुद्ध मास का दोष नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार लग्न शुद्धि से दिन का दोष तथा मुहूर्त्तशुद्धि से सभी दोष नष्ट हो जाते हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में दिवस और रात्रि दोनों के मुहूर्त्त संज्ञक १५ विभाग बताये हैं। अथ यदाह –

चित्र: केतुर्दाता प्रदाता सविता प्रसविताभिशास्तानुमन्तेति। एष एव तत्। एष ह्येव तेह्नो मुहूर्त्ता:। एष रात्रे:। (तै0ब्रा0 ३।१०।९)

उपर्युक्त अनुवाक उसी ब्राह्मण में एक ही अनुवाक में आये हैं। वे ये है –

चित्र: केतु: प्रभानाभात्संभान्। ज्योतिष्मा गूँ स्तेजस्वानातप गूँ स्तपन्निभिपतन्।
रोचनो रोचमान: शोभन: शोभमान: कल्याण:।।

यहाँ प्रत्येक वाक्य में पाँच और सब मिलाकर १५ मुहूर्त्त हैं। ये मुहूर्त्त शुक्लपक्ष के हैं और निम्नलिखित १५ मुहूर्त्त शुक्लपक्ष की रात्रि के हैं।

दाता प्रदाताऽनन्दो मोद: प्रमोद:। आवेशन्निवेशयन् संवेशन: स गूँ शान्त: शान्त:। आभवन् प्रभवन् सम्भवन् सम्भूतो भूत:।। (तै0 ब्रा0 ३।१०।१,२)

सविता प्रसविता दीप्तो दीपयन् दीप्यमान:। ज्वलन् ज्वलिता तपन् वितपन् सन्तपन्। रोचनो रोचमान: शुंभू: शुंभमानो वाम:।।

ये कृष्णपक्ष के दिन के १५ मुहूर्त्तों के नाम हैं।

अभिशास्तानुमन्तानन्दो मोद: प्रमोद:। आसादयन् निषादयन् स गूँ सादन: स सन्न: सन्न:। आभूर्विभू: प्रभू: शंभूर्भुव:।।

ये कृष्णपक्ष की रात्रि के १५ मुहूर्त्तों के नाम हैं।

मास में ३० दिवस की भाँति अहोरात्र में ३० मुहूर्त्त माने गये होंगे। वेदोत्तरकालीन ग्रन्थों में मुहूर्त्त नामक ये विभाग तो हैं पर उपर्युक्त नाम नहीं है। मुहूर्त्तों के भिन्न-भिन्न अन्य भी बहुत से नाम हैं। एक मुहूर्त्त में १५ सूक्ष्म मुहूर्त्त माने गये हैं। कहा गया है –

अथ यदाह। इदानीं तदानीमिति। एष एव तत्। एषह्येव ते मुहूर्तानां मुहूर्ता:। (तै0ब्रा0 ३।१०।९।९)

वे प्रतिमुहूर्त ये हैं –

इदानीं तदानीमेतर्हि क्षिप्रमजिरं। आशुर्निमेष फणोद्रवन्नतिद्रवन्। त्वर गूँ स्त्वरमाण आशुरशीयान् जव:।। (तै0 ब्रा0 ३।१०।१।४)

अहोरात्र को ६० घटी (२४ घण्टे) परिमित करके पूर्वाचार्यों ने विभिन्न देवताओं के द्वारा अधिकृत ३० मुहूर्त्तों की व्यवस्था की है। अत: प्रत्येक मुहूर्त्त २ घटयात्मक (४८ मिनट का) होता है। न्यूनाधिकत्व की स्थिति में दिनमान-रात्रिमान को पन्द्रह से विभाजित कर एक मुहूर्त्त काल ज्ञात किया जा सकता है।

मुहूर्त्त की परिभाषा –

'मुहूर्त्तस्तु घटिकाद्वयम्'। अर्थात् दो घटी का एक मुहूर्त्त होता है। जगत में समस्त कार्यों हेतु मुहूर्त्त का विधान बतलाया गया है।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने काल का सूक्ष्म निरीक्षण व परीक्षण करने पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्येक कार्य के लिये अलग–अलग काल खण्ड का अलग–अलग महत्व व गुण–धर्म है। अनुकूल समय पर कार्य करने पर सफलता होती है । यही दृष्टि व सूक्ष्म विचार मुहूर्त्तत्व का आधार स्तम्भ है। इसी कारण मुहूर्त्त की अनुकूलता का चयन कर लेने में भी आशा तो रहती ही है तथा हानि की सम्भावना भी नहीं है।

मुहूर्त्त की आवश्यकता –

मुहूर्त्तों का लोकव्यवहार में निकट का सम्बन्ध है। सम्प्रति भारतवर्ष में विवाहादि विभिन्न संस्कारों में मुहूर्त्तों की आवश्यकता होती हैं। भारतीय वैदिक सनातन परम्परा का निवर्हन करने वाले अथवा मानने वालों के लिए तो इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। उनके लिए तो गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त अथवा यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मानव जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक जीवन के प्रत्येक भाग में मुहूर्तों की आवश्यकता प्रतीत होती ही हैं। इसमें संशय नहीं। वर्तमान सामाजिक दृष्टि में केवल वैदिकधर्मी ही नहीं, लिंगायत और जैन भी पद-पद पर मुहूर्त्त पूछते हैं। पारसी और मुसलमानों के भी कुछ कार्य मुहूर्त्तानुसार सम्पन्न होते हैं।

मुहूर्त्त का आधार –

विवाहादि सभी कार्यों में, ग्रहों के गोचर में, यात्रा में, सभी संस्कारों में सदैव नियमत: जन्मराशि अर्थात् जन्म चन्द्र राशि व नक्षत्र से ही विचार करना चाहिये। यदि जन्म समय अज्ञात हो तो प्रसिद्ध नाम से मुहूर्त्त देखना चाहिये। इसके अतिरिक्त नौकरी सम्बन्धी बातों में, सामाजिक व्यवहार में, आपसी रीति रिवाजों में, सामाजिक या समूहगत कार्यों में यथा देश, ग्राम या जिले की

उन्नति आदि के लिये किये जाने वाले सम्मिलित प्रयासों में, गृह में, नाम राशि अर्थात् प्रसिद्ध नाम से विचार करना चाहिये।

मनुष्य के हृदय में नित्य नई भावनायें एवं कल्पनाएँ जागृत होती रहती है वह उनकी परिपूर्ति के लिये सतत – प्रयत्नशील रहता है। कभी वह सिद्धार्थ हो जाता है, कभी नहीं भी। काल व कर्म की सार्थकता का एकमात्र पक्षपाती ज्यौतिष शास्त्र ही है। अत: ज्योतिर्विज्ञान को इतरेतर शास्त्रों का दण्डनायक निर्णीत करना कोई अतिशयोक्ति न होगी। कहा भी गया है –

यथा शिखा मयूराणां नागानां मणयो यथा।
तद्वेदांगशास्त्राणां ज्यौतिषं मूर्धनि स्थितम्।।

पूर्वाचार्यों ने मानवजीवन के विभिन्न करिष्यमाण कर्मों को विशिष्ट काल वेलाओं में विधिवत् कार्यान्वित करने का यत्र – तत्र निर्देश किया है। इन काल नियमन वचनों का विस्तृत अध्याय **'मुहूर्त्त'** संज्ञक है।

अहोरात्र को 60 घटी परिमित ग्रहण करके यद्यपि पूर्वाचार्यों ने विभिन्न देवताओं के द्वारा अधिकृत 30 मुहूर्त्तों की व्यवस्था की है। अत: प्रत्येक मुहूर्त्त 2 घटयात्मक होता है। न्यूनाधिकत्व की स्थिति में दिनमान रात्रिमान को पन्द्रह से विभाजित कर एक मुहूर्त्त काल ज्ञात किया जा सकता है। विभिन्न मुहूर्त्तों के अधिष्ठाताओं के नाम निम्न चक्र में दिये गये है। साथ ही साथ चक्र में मुहूर्त्त स्वामियों के नक्षत्र भी वर्णित हैं। अत: जिस नक्षत्र में जो कार्य विहित है वह कार्य उसी नक्षत्र के मुहूर्त्त में करना विशेष फलदायक होता है।

दिवा मुहूर्त्त		**रात्रि मुहूर्त्त**	
मुहूर्त्त स्वामी	**नक्षत्र**	**मुहूर्त्त स्वामी**	**नक्षत्र**
शिव	आर्द्रा	शिव	आर्द्रा
सर्प	आश्लेषा	अजपाद	पूर्वाभाद्रपद
पितर	मघा	पू.षा.	रेवती
वसु	धनिष्ठा	अश्विनी कुमार	अश्विनी
जल	पूर्वाषाढा	यम	भरणी
विश्वेदेवा	उत्तराषाढा	अग्नि	कृत्तिका
ब्रह्मा	अभिजित	ब्रह्मा	रोहिणी
ब्रह्मा	रोहिणी	चन्द्र	मृग
इन्द्र	ज्येष्ठा	अदिति	पुनर्वसु

इन्द्राग्नि	विशाखा	वृहस्पति	पुष्य
राक्षस	मूल	विष्णु	श्रवण
वरूण	शतभिषा	सूर्य	हस्त
अर्यमा	उत्तराफाल्गुनी	विश्वकर्मा	चित्रा
भग	पूर्वाफाल्गुनी	पवन	स्वाती

अभिजिन्मुहूर्त - यह दिन का अष्टम मुहूर्त है जो कि विजय मुहूर्त के नाम से प्रसिद्ध है।

'अष्टमे दिवसस्यार्द्धे त्वभिजितसंज्ञक: क्षण:' ॥ (ज्योतिस्तत्व)

सूर्य जब ठीक खमध्य में हो वह काल अर्थात् मध्यान्ह में पौने बारह बजे से साढ़े बारह बजे तक का मध्यान्तर '**अभिजिन्मुहूर्त्त**' कहलाता है।

पंचांग ज्योतिष शास्त्र का मेरूदण्ड माना जाता है। पंचांग में पाँच अंग प्रधान होते हैं – तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण। पंचांग में ज्योतिष शास्त्र के समस्त सार तत्व विद्यमान हैं। यहाँ हम आपके ज्ञानार्थ पंचांग के शुभाशुभत्व का विवेचन करने जा रहे हैं -

1.3.1 तिथियों के शुभाशुभ स्वरूप

तिथि क्या है? इस पर विचार करते हुये आचार्यों ने कहा है कि सूर्यचन्द्रयो: द्वादश अंशात्मक गत्यन्तरं नाम तिथि:। अर्थात् सूर्य एवं चन्द्रमा की १२ अंशात्मक गत्यन्तर का नाम 'तिथि' है। अपरं च – ''एक- चन्द्रकलावृद्धिक्षयान्यतरावच्छिन्नः कालः तिथिः।'' अर्थात् चन्द्रमा के एक-एक कला वृद्धि के अवच्छिन्न काल को तिथि कहा जाता है। इसके बारे में वृहद् ज्ञान आप इससे पूर्व के प्रकरण में प्राप्त कर चुके हैं। तिथियों की संख्या पन्द्रह है, जिनका नाम प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा या अमावास्या है। ये दोनो तिथियां शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष की है। इनके शुभ एवं अशुभ के बारे में यह वचन मिलता है-

नन्दा च भद्रा च जया च रिक्ता पूर्णेति तिथ्यो अशुभमध्यशस्ता।

सितेऽसिते शस्तसमाधमाः स्युः सितज्ञभौमार्किगुरौ च सिद्धा।। (मुहूर्त्तचिन्तामणिः -शुभाशुभप्रकरण- 4)

इस श्लोक के अनुसार तिथियों को पांच भागों में बांटा गया है जिन्हें नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता एवं पूर्णा के नाम से जाना जाता है। नन्दा में प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी तिथियां, भद्रा में द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथियां, जया में तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथियां, रिक्ता में चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियां तथा पूर्णा में पंचमी, दशमी एवं अमावास्या या पूर्णिमा तिथियां आती है। प्रत्येक पक्ष में ये

नन्दादि तिथियां तीन बार आती है। उसी को व्यक्त करते हुये कहा गया है कि शुक्ल पक्ष में प्रथम नन्दा इत्यादि तिथियां अशुभ, द्वितीय नन्दा इत्यादि तिथियां मध्य एवं तृतीय नन्दा इत्यादि तिथियां शुभ होती है। उसी प्रकार कृष्ण पक्ष में प्रथम नन्दा इत्यादि तिथियां शुभ, द्वितीय नन्दा इत्यादि तिथियां मध्य एवं तृतीय नन्दा आदि तिथियां अशुभ होती है।

शुक्रवार को नन्दा तिथि यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी, बुधवार को भद्रा यानी द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथि, भौमवार को जया यानी तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथि, शनिवार को रिक्ता यानी चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथि तथा गुरुवार को पंचमी, दशमी, अमावास्या या पूर्णिमा तिथि सिद्ध योग प्रदान करती है अर्थात् इसमें कार्य का आरम्भ कार्य को सिद्धि दिलाने वाला होता है।

चन्द्रमा के पूर्ण या क्षीण होने से तिथियों में बलत्व या निर्बलत्व होता है। शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से पंचमी तक चन्द्रमा के क्षीण होने के कारण प्रथमावृति की नन्दा इत्यादि तिथियां अशुभ है। षष्ठी से दशमी तक चन्द्रमा के मध्य यानी न पूर्ण न क्षीण होने से द्वितीयावृति की नन्दा इत्यादि तिथियां मध्य मानी जाती है। ठीक इसी प्रकार तृतीयावृति की नन्दादि तिथियां चन्द्रमा के पूर्ण होने के कारण शुभ कही गयी है।

अभ्यास प्रश्न – अ

बहुवैकल्पिक प्रश्न

1. १ घटी बराबर होता है –

   क. २५ मिनट ख.२४ मिनट ग. ३० मिनट घ. १५ मिनट

2. काल के महत्वपूर्ण पाँच अंगों में नहीं है –

   क. दिन ख. लग्न ग. मुहूर्त्त घ. नक्षत्र

3. मुहूर्त्त शब्द में कौन सा धातु है?

   क. मुह ख. सम ग. दा घ. खर

4. निम्न में ‘पूर्णा संज्ञक’ तिथि है –

   क. दशमी ख. चतुर्थी ग. तृतीया घ. नवमी

5. मघा नक्षत्र के स्वामी कौन है?

   क. अग्नि ख. ब्रह्मा ग. पितर घ. विष्णु

6. एक मुहूर्त्त = ?

   क. १ घटी ख.२ घटी ग. ३ घटी घ. ४ घटी

1.3.2 तिथियों एवं वारों के संयोग से शुभ एवं अशुभ विचार -

अब हम रवि इत्यादि वारों, तिथियों एवं नक्षत्रों के संयोग से शुभ एवं अशुभ कालों का विचार इस प्रकार करेगें। अधोलिखित श्लोक को ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये।

नन्दा भद्रा नन्दिकाख्या जया च रिक्ता भद्रा चैव पूर्णा मृतार्कात्।

याम्यं त्वाष्ट्रं वैश्वदेवं धनिष्ठार्यम्णं ज्येष्ठान्त्यं रवेर्दग्धभं स्यात्।। मुहूर्त्तचिन्तामणिः शुभाशुभप्रकरणम्- 5

अर्थात् सूर्य आदि वारों में क्रम से नन्दा, भद्रा, नन्दा, जया, रिक्ता, भद्रा और पूर्णा तिथियां पड़ जाये तो अधम योग होता है। इसका मतलब रविवार को नन्दा यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी तिथियां हो, सोमवार को भद्रा यानी द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथियां हो, भौमवार को नन्दा यानी प्रतिपदा, षष्ठी एवं एकादशी तिथियां हो, बुधवार को जया यानी तृतीया, अष्टमी एवं त्रयोदशी तिथियां हों, गुरुवार को रिक्ता यानी चतुर्थी, नवमी एवं चतुर्दशी तिथियां हों, शुक्रवार को भद्रा यानी द्वितीया, सप्तमी एवं द्वादशी तिथियां हो और शनिवार को पूर्णा यानी पंचमी, दशमी एवं अमावास्या या पूर्णिमा तिथियां आती हो तो मृत योग बन जाता है।

इसी प्रकार सूर्यादि वारों में क्रमशः भरणी आदि नक्षत्र हो अर्थात् रविवार को भरणी, सोमवार को चित्रा, मंगलवार को उत्तराषाढ़ा, बुधवार को धनिष्ठा, बृहस्पतिवार को उत्तराफाल्गुनि, शुक्रवार को ज्येष्ठा और शनिवार को रेवती आ जाय तो दग्ध योग होता है। ये दोनों मृत्यु योग एवं दग्ध योग यात्रा में अत्यन्त निन्दित है। अन्य शुभ कार्य भी इनमें न किये जाय तो उत्तम होता है।

तिथियों और वारों से संबंधित शुभाशुभत्व पर विचार करते हुये ग्रन्थकार ने एक विचार और दिया है जिसका वर्णन मै यहां अत्यन्त उचित समझता हूँ जो इस प्रकार है-

षष्ठ्यादितिथयो मन्दाद्विलोमं प्रतिपद् बुधे।

सप्तम्यर्के धमाः षष्ठ्याद्यामाश्च रदधावने।।

इस श्लोक की व्याख्या करते हुये बतलाया गया है कि षष्ठी आदि क्रम से तिथियों और शनि आदि उलटे वारों के योग से क्रकच नामक अधम योग होता है। जैसे शनिवार को षष्ठी, शुक्रवार को सप्तमी, गुरुवार को अष्टमी, बुधवार को नवमी, भौमवार को दशमी, सोमवार को एकादशी और रविवार को द्वादशी हो जाय तो क्रकच नाम का कुयोग होता है। यह कुयोग दिन एवं तिथि के संयोग से तेरह बनने के कारण हो रहा है। जैसे शनिवार का मतलब सात एवं षष्ठी तिथि का मतलब छ, दोनों को जोड़ने से तेरह हो रहा है जिसके कारण क्रकच नामक योग बन रहा है। एक और उदाहरण समझ लेने से यह बात पूरी तरह दिमाग में बैठ जायेगी जैसे भौमवार और दशमी, इसमें भौमवार की संख्या तीन है,

दशमी की दश संख्या को इसमें जोड़ने से तेरह हो रहा है जिसके कारण यह योग लग रहा है। इसके साथ ही ज्यौतिष शास्त्र में यह बतलाया गया है कि बुधवार को प्रतिपदा तथा रविवार को सप्तमी हो तो संवर्तक नाम का कुयोग होता है। इसे शुभ नही माना गया है। इसके अतिरिक्त दग्धादि योगों की चर्चा करते हुये बतलाया गया है कि-

सूर्येशपंचाग्निरसाष्टनन्दा वेदांगसप्ताश्विगजांकशैलाः।
सूर्यांगसप्तोरगगोदिगीशा दग्धा विषाख्याश्च हुताशनश्च।।
सूर्यादिवारे तिथयोभवन्ति मघाविशाखाशिवमूलवन्हिः।
ब्राह्मं करोर्काद्यमघण्टकाश्च शुभे विवजर्या गमने त्ववश्यम्।।

अर्थात् रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, मंगलवार को पंचमी, बुधवार को तृतीया, बृहस्पतिवार को षष्ठी, शुक्रवार को अष्टमी एवं शनिवार को नवमी पड़ जाय तो दग्ध योग होता है।

रविवार को चतुर्थी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को द्वितीया, बृहस्पतिवार को अष्टमी, शुक्रवार को नवमी एवं शनिवार को सप्तमी पड़ जाय तो विष नामक योग होता है।

रविवार को द्वादशी, सोमवार को षष्ठी, मंगलवार को सप्तमी, बुधवार को अष्टमी, बृहस्पतिवार को नवमी, शुक्रवार को दशमी एवं शनिवार को एकादशी पड़ जाय तो हुताशन योग होता है।

रविवार को मघा, सोमवार को विशाखा, मंगलवार को आर्द्रा, बुधवार को मूल, बृहस्पतिवार को कृत्तिका, शुक्रवार को रोहिणी एवं शनिवार को हस्त नक्षत्र आ जाय तो यमघण्ट नामक योग होता है। उक्त चारों योग समस्त शुभ कार्यों में वर्जित बतलाये गये है। विशेष कर यात्रा में तो अवश्य ही त्याज्य है।

1.3.3 तिथियों एवं नक्षत्रों के संयोग से शुभ एवं अशुभ का विचार

तिथियों एवं नक्षत्रों के मिलन शुभ एवं अशुभ का विचार हम इस प्रकार करते है-

तथा निन्द्यं शुभे सार्पं द्वादश्यां वैश्वमादिमे।
अनुराधा तृतीयायां पंचम्यां पित्र्यभं तथा।
त्र्युत्तराश्च तृतीयायामेकादश्यां च रोहिणी।
स्वाती चित्रे त्र्योदश्यां सप्तम्यां हस्तराक्षसे।
नवम्यां कृतिकाष्टाम्यां पूभा षष्ठ्यां च रोहिणी।।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि द्वादशी तिथि में आश्लेषा, प्रतिपदा तिथि में उत्तराषाढ़ा, द्वितीया तिथि में अनुराधा, पंचमी मे मघा, तृतीया में तीनों उत्तरा यानी उत्तराफाल्गुनी,

उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, एकादशी में रोहिणी, त्रयोदशी में स्वाती और चित्रा, सप्तमी में हस्त एवं मूल, नवमी में कृत्तिका, अष्टमी में पूर्वाभाद्रपदा और षष्ठी में रोहिणी पड़े तो निन्द्य योग होता है। इनमें शुभ कार्य करना वर्जित माना गया है। नक्षत्रों का मासों से संबंध करके भी शुभ एवं अशुभ का विचार किया गया है-

कदास्रभे त्वाष्ट्रवायू विश्वेज्यौ भगवासवौ।
वैश्वस्रुति पाशिपौष्णे अजपादग्निपित्र्यभे।।
चित्राद्वीशौ शिवाश्व्यर्का: श्रुतिमूले यमेन्द्रभे।
चैत्रादिमासे शून्याख्यास्तारा वित्तविनाशदा:।।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि चैत्रमास में रोहिणी एवं अश्विनी नक्षत्र, वैशाख मास में चित्रा एवं स्वाती नक्षत्र, ज्येष्ठ मास में उत्तराषाढ़ा एवं पुष्य नक्षत्र, आषाढ़ में पूर्वाफाल्गुनि एवं धनिष्ठा नक्षत्र, श्रावण में उत्तराषाढ़ा एवं श्रवण नक्षत्र, भाद्रपद में शतभिषा एवं रेवती नक्षत्र, आश्विन में पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र, कार्तिक में कृत्तिका एवं मघा नक्षत्र, मार्गशीर्ष में चित्रा एवं विशाखा नक्षत्र, पौष में आर्द्रा एवं अश्विनी नक्षत्र, माघ मे श्रवण एवं मूल नक्षत्र, फाल्गुन में भरणी एवं ज्येष्ठा नक्षत्र मास शून्य नक्षत्र कहे गये हैं। इनमें शुभ कार्य करने से कर्ता के धन का नाश होता है।

इसी प्रकार राशियों के शून्यता का भी वर्णन मिलता है। यथा-

घटो झषो गौर्मिथुनं मेषकन्यालितौलिन:।
धनु: कर्को मृग: सिंहश्चैत्रादौ शून्यराशय:।।

अर्थात् चैत्र मास में कुम्भ, वैशाख में मीन, ज्येष्ठ में वृष, आषाढ़ में मिथुन, श्रावण में मेष, भाद्रपद में कन्या, आश्विन में वृश्चिक्, कार्तिक में तुला, मार्गशीर्ष में धनु, पौष में कर्क, माघ में मकर और फाल्गुन में सिंह ये राशियां शून्य मानी गयी है। इनमें शुभ कार्य करने से कर्ता के वंश और धन दोनों का विनाश होता है।

इसी प्रकार पंचांग में तिथियों एवं लग्नों के संयोग से भी शुभ एवं अशुभ का विचार इस प्रकार किया गया है-

पक्षादितस्त्वोजतिथौ घटैणौ मृगेन्द्रनक्रौ मिथुनांगने च।
चापेन्दुभे कर्कहरी हयान्त्यौ गोन्त्यौ च नेष्टे तिथिशून्यलग्ने।।

शुक्ल एवं कृष्ण दोनों पक्षों में प्रतिपदा से लेकर विषम तिथियों में क्रम से प्रतिपदा में तुला एवं मकर, तृतीया में सिंह और मकर, पंचमी में मिथुन और कन्या, सप्तमी में धनु एवं कर्क, नवमी में कर्क और सिंह, एकादशी में धनु और मीन, त्रयोदशी में वृष और मीन शून्य लग्न है। इनमें कोई शुभकार्य करना

उचित नही है।

1.3.4 तिथि, वार एवं नक्षत्रादि योगों द्वारा शुभ एवं अशुभ का विचार

इसमें तिथि, वारों एवं नक्षत्रों तीनों का संयोग पाया जाता है। इन तीनों के संयोगो के आधार पर अशुभ एवं शुभ फलों का विचार करते है-

वर्जयेत् सर्वकार्येषु हस्तार्कं पंचमी तिथौ।
भौमाश्विनीं च सप्तम्यां षष्ठ्यां चन्द्रैन्दवं तथा।
बुधानुराधामष्टम्यां दशम्यां भृगुरेवतीम्।
नवम्यां गुरुपुष्यं चैकादशम्यां शनिरोहिणीम्।।

इसके अर्थ का प्रतिपादन करते हुये कहा गया है कि पंचमी तिथि में रविवार और हस्त नक्षत्र हो, सप्तमी तिथि में भौमवार और अश्विनी नक्षत्र हो, षष्ठी में सोमवार एवं मृगशिरा नक्षत्र हो, अष्टमी में बुधवार और अनुराधा नक्षत्र हो, दशमी में शुक्रवार एवं रेवती नक्षत्र हो, नवमी में गुरुवार एवं पुष्य नक्षत्र हो और एकादशी में शनिवार एवं रोहिणी नक्षत्र हो तो इन्हें समस्त शुभ कार्यो में त्याग कर देना चाहिये।

यद्यपि यहाँ नक्षत्र एवं वार के योग से शुभ योग होते है, तथापि तिथियों के योग से निषिद्ध योग हो जाता है। इसी को मधुसर्पिष योग भी कहते है। महर्षि वसिष्ठ ने दूसरे प्रकार का मधु सर्पिष् योग कहा है जिसको हालाहल योग भी कहा गया है।

नक्षत्रों एवं वारों के योग से कुछ विशिष्ट कार्यों को करने के लिये विवर्जित किया गया है जो इस प्रकार है-

गृहप्रवेशे यात्रायां विवाहे च यथाक्रमम्।
भौमाश्विनीं शनौ ब्राह्मं गुरौ पुष्यं विवर्जयेत्।

यहाँ पर जिन योगों की चर्चा की गयी हैं वे योग सिद्ध योग बनाते है लेकिन कुछ विशेष कार्य हेतु इन योगों को वर्जित किया गया है। गृह प्रवेश में भौमवार एवं अश्विनी नक्षत्र का संयोग त्याग देना चाहिये। यात्रा में शनिवार एवं रोहिणी नक्षत्र के संयोग को त्याग देना चाहिये। विवाह में गुरुवार एवं पुष्य नक्षत्र के संयोग को त्याग देना चाहिये।

विशेष- भौमाश्विनी, शनिरोहिणी और गुरुपुष्य ये तीनो सिद्धि है। तथापि गृहप्रवेश में भौमवार निषिद्ध है, अश्विनी नक्षत्र भी विहित नही है। अतः सिद्ध योग होते हुये भी गृहप्रवेश में त्याज्य है। वसिष्ठ एवं राजमार्तण्ड के अनुसार यात्रा में शनिवार निन्द्य माना गया है। अतः रोहिणी के योग से सिद्ध योग होते हुये भी यात्रा में त्याज्य है। गुरुपुष्य योग कामुकता का वर्धक होने से विवाह में निषिद्ध माना गया है।

सभी प्रकार के कार्यों में अधोलिखित योगों को त्याज्य माना है-

जन्मर्क्षमासतिथयोव्यतिपातभद्रा वैधृत्यमापितृदिनानितिथिक्षयर्द्धी।
न्यूनाधिमासकुलिकप्रहरार्द्धपातविष्कम्भवज्रघटिकात्रयमेववर्ज्यम्।
परिधार्द्धं पंच शूले षट् च गण्डातिगण्डयोः
व्याघाते नवनाड्यश्च वर्ज्याः सर्वेषु कर्मसु।।

अर्थात् जन्म नक्षत्र, जन्म मास, जन्म तिथि, व्यतिपात, भद्रा, वैधृति, अमावास्या, पितृ घात दिन, तिथि का क्षय दिन, तिथि वृद्धि वाला दिन, न्यून मास, अधिक मास, कुलिक योग, अर्द्धयाम, पात, विष्कम्भ योग और वज्र योग की तीन घटी, परिघ योग का आधा, शूलयोग की पॉंच घटी, गण्ड एवं अतिगण्ड योग की छः छः घटी एवं व्याघात योग की नव घटी सभी प्रकार के शुभ कार्यों हेतु वर्जित की गयी है।

विशेष- जन्म नक्षत्र एवं जन्म मास उपनयन में शुभ होता है।

दूसरे दूसरे गर्भ से उत्पन्न बालक बालिकाओं का विवाह उत्तम है।

नारद संहिता के अनुसार पट्टबन्धन, मुण्डन, अन्नप्राशन, व्रतबन्ध इन कार्यों में जन्मर्क्ष शुभ माना गया है। बहुत से कार्यो में जन्म की तारा शुभ कही गयी है।

1.4 शुभाशुभ योगों का विशेष विचार-

इस प्रकरण में पंचांग के अनुसार शुभ अशुभ फलों के विशेष विचार किये जायेगें। इसका ज्ञान शुभ अशुभ फलों के जानने हेतु अतयावश्यक बतलाया गया है।

1.4.1 वार एवं नक्षत्र के संयोग से सर्वार्थ सिद्धि योग का विचार-

सर्वाथसिद्धि योग एक ऐसा योग है जिसमें कार्य करने से सभी प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति होती है। आइये विचार करें कि सर्वार्थ सिद्धि योग कैसे बनता है। इस सन्दर्भ में अधोलिखित श्लोक मिलता है-

सूर्येर्कमूलोत्तरपुष्यदास्रं चन्द्रे श्रुतिब्राह्मशशीज्यमैत्रम्।
भौमेश्व्यहिर्बुध्न्यकृशानुसार्पं ज्ञे ब्राह्ममैत्रार्ककृशानुचान्द्रम्।
जीवेन्त्यमैत्राश्व्यदितिज्यधिष्ण्यं शुक्रेन्त्यमैत्राश्व्यदितिश्रवोभम्।
शनौ श्रुतिब्राह्मसमीरभानि सर्वार्थसिद्ध्यै कथितानि पूर्वैः।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि रविवार को अर्क यानी हस्त नक्षत्र, मूल नक्षत्र, उत्तर यानी उत्तराफाल्गुनि, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, पुष्य और अश्विनी ये सात नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है।

सोमवार को श्रुति यानी श्रवण, ब्राह्म यानी रोहिणी, शशी यानी मृगशिरा, इज्य यानी पुष्य, और मैत्र यानी अनुराधा ये पॉच नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है।

मंगलवार को अश्व यानी अश्विनी, अहिर्बुध्न्य यानी उत्तराभाद्रपदा, कृशानु यानी कृत्तिका तथा सार्प यानी आश्लेषा ये चार नक्षत्र मिल जाय तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है।

बुधवार को ब्राह्म यानी रोहिणी, मैत्र यानी अनुराधा, अर्क यानी हस्त, कृशानु अर्थात् कृत्तिका, और चान्द्रं यानी मृगशिरा ये पॉच नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग बनता है।

बृहस्पतिवार को अन्त्य यानी रेवती, मैत्र यानी अनुराधा, अश्व यानी अश्विनी, अदिति यानी पुनर्वसु, इज्य यानी पुष्य, धिष्ण्य यानी नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग होता है।

शुक्रवार को अन्त्य यानी रेवती, मैत्र यानी अनुराधा, अश्व अर्थात् अश्विनी, अदिति यानी पुनर्वसु, और श्रव यानी श्रवण नक्षत्र हो तो सर्वार्थ सिद्धि योग बनता है।

शनिवार को श्रुति यानी श्रवण, ब्राह्म यानी रोहिणी, समीर यानी स्वाती, भानि अर्थात् नक्षत्राणि अर्थात् ये नक्षत्र पाये जाते हों तो उस दिन सर्वार्थ सिद्धि योग बन रहा है ऐसा कहा जा सकता है।

इसी प्रकार उत्पात, मृत्यु, काण एवं सिद्ध योग का विचार इस प्रकार किया गया है-

द्वीशात्तोयाद्वासवात्पौष्णभाच्च ब्राह्मात्पुष्यादर्यमर्क्षाद्युगर्क्षैः।
स्यादुत्पातो मृत्यु काणौ च सिद्धिर्वारेर्काद्ये तत्फलं नामतुल्यम्।

इसका अर्थ करते हुये बतलाया गया है कि अर्काद्ये यानी सूर्यवार को विशाखा नक्षत्र से चार - चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी रविवार को विशाखा नक्षत्र हो तो उत्पात योग, अनुराधा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, ज्येष्ठा नक्षत्र हो तो काण योग एवं मूल नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते हैं।

सोमवार को तृतीया यानी पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र से चार-चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी सोमवार को पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र हो तो उत्पात योग, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, अभिजित् नक्षत्र हो तो काण योग एवं श्रवण नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।

मंगलवार को धनिष्ठा नक्षत्र से चार-चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये हैं। यानी मंगलवार को धनिष्ठा नक्षत्र हो तो उत्पात योग, शतभिषा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र हो तो काण योग एवं उत्तराभाद्रपद नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।

बुधवार को रेवती नक्षत्र से चार-चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले

कहे गये हैं। यानी बुधवार को रेवती नक्षत्र हो तो उत्पात योग, अश्विनी नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, भरणी नक्षत्र हो तो काण योग एवं कृत्तिका नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।

वृहस्पतिवार को रोहिणी नक्षत्र से चार- चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी गुरुवार को रोहिणी नक्षत्र हो तो उत्पात योग, मृगशिरा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, आर्द्रा नक्षत्र हो तो काण योग एवं पुनर्वसु नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।

शुक्रवार को पुष्य नक्षत्र से चार-चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी शुक्रवार को पुष्य नक्षत्र हो तो उत्पात योग, आश्लेषा नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, मघा नक्षत्र हो तो काण योग एवं पूर्वा फाल्गुनि नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते हैं।

शनिवार को उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्र से चार- चार नक्षत्र क्रमशः उत्पात, मृत्यु , काण एवं सिद्ध योग को देने वाले कहे गये है। यानी शनिवार को उत्तरा फाल्गुनि नक्षत्र हो तो उत्पात योग, हस्त नक्षत्र हो तो मृत्यु योग, चित्रा नक्षत्र हो तो काण योग एवं स्वाती नक्षत्र हो तो सिद्ध योग बनता है। ये अपने नाम के अनुसार व्यक्ति को फल प्रदान करते है।

इस प्रकार आपने तिथियों, वारों, एवं नक्षत्रों के संयोग से सर्वार्थ सिद्धि योग, उत्पात योग, मृत्यु योग, काण योग एवं सिद्ध योगों के बारे में जाना। अतः इस पर कुछ प्रश्न दिये जा रहे हैं जिसका हल आपके ज्ञान को अभिवर्द्धित करेगा।

1.4.2 शुभाशुभ योग विचार का परिहार

अभी तक आपने विभिन्न प्रकार के शुभ एवं अशुभ विचार के नियमों को जाना। लेकिन इन नियमों के परिहार के ज्ञान के अभाव में शुभाशुभ का ज्ञान सम्यक् प्रकार से नही हो पाता है इसलिये यहॉ सन्दर्भित विषय पर परिहार का लेखन किया जा रहा है। आशा ही नही अपितु विश्वास है कि यह ज्ञान आपके लिये गुणकारी सिद्ध होगा।

दुष्ट योगों का परिहार -

तिथयो मासशून्यश्च शून्यलग्नानि यान्यपि।
मध्यदेशे विवर्ज्यानि न दूष्याणीतरेषु च।
पंग्वंधकाणलग्नानि मासशून्याश्च राशयः।
गौडमालवयोः त्याज्या अन्यदेशे न गर्हिता।।

इसका अर्थ यह हुआ कि मास में शून्य तिथियां तथा शून्य लग्न मध्यदेश में ही त्याज्य है, अन्य

देशों में दूषित नही है। शून्य लग्न का विचार 2.3.3 में पक्षादितस्त्वोजतिथौ घटैणौ में किया गया है। इसका विचार मध्य देश में ही करना चाहिये। इस सन्दर्भ में आचार्य मनु ने कहा है कि- हिमवद् विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विशननादपि। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः।। अर्थात् हिमवान् और विन्ध्याचल के बीच सरस्वती नदी से पूर्व प्रयाग से पश्चिम, इनके भूभाग को मनु ने मध्य देश कहा है। आधुनिक मध्यप्रदेश इससे भिन्न है। इसके साथ ही पंगु, अन्ध एवं काण लग्न और मास में शून्य राशियां गौड़ एवं मालव देश में ही वर्जित है।

कुयोगास्तिथिवारोत्थास्तिथिभोत्था भवारजाः।
हूण-बंग-खशेष्वेव वजर्यास्त्रितयजास्तथा।।

इसका अर्थ बतलाते हुये कहा गया है कि तिथि और वार से उत्पन्न कुयोग जो नन्दा भद्रा नन्दिकाख्या...इस श्लोक में वर्णित जैसे मृत्यु योग है। षष्ठ्यादि में वर्णित क्रकच योग, सूर्येश पंचाग्नि में वर्णित दग्ध, विष और हुताशन योग, तिथि और नक्षत्र से उत्पन्न कुयोग जो तथा निन्द्यं शुभे सार्पे में दिया गया है, नक्षत्र एवं वार से उत्पन्न कुयोग जो याम्यं त्वाष्ट्रं आदि दग्ध योग के बारे में दिया गया है वह, यमघण्ट योग, आनन्दादि योगों में कालदण्ड, मृत्यु उत्पातादि और तिथि, वार एवं नक्षत्र तीनों से उत्पन्न कुयोग इत्यादि को हूण, बंग एवं खशदेशों में वर्जित किया गया है अन्य देशों में नही। हूण जाति के लोग पूर्व काल में चीन की पूर्वी सीमा पर लूट पाट करते थे। वहां से प्रबल अवरोध होने पर तुर्कीस्तान पर अधिकार कर लिया और वक्षु नदी के किनारे आ बसे। फिर कालिदास के समय में हूण लोग वक्षु नद के तट तक ही सीमित थे। रघुवंश में कालिदास ने हूणों का वर्णन वक्षु नद के तट पर ही किया है। बाद में फारस के सम्राट से हार कर भारत में घुसे और सीमान्त प्रदेश कपिसा गोधार पर अधिकार कर लिया। फिर मध्य देश की ओर चढ़ाई करने लगे और गुप्त सम्राटों से युद्ध करते हुये हूणों के प्रतापी राजा तोरमाण ने गुप्त साम्राज्य के पश्चिम भाग पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। इस प्रकार गांधार, काश्मीर, पंजाब, राजपुताना, मालवा, काठियावाड़ इनके शासन में आये। इनको हूण देश कहा जाता है।

मृत्युक्रकचदग्धादीनिन्दौ शस्ते शुभांजगुः।
केचिद्यामोत्तरंचान्ये यात्रायामेव निन्दितान्।।

चन्द्रमा के शुद्ध रहने पर मृत्यु, क्रकच एवं दग्ध आदि योग शुभ हो जाते है। और किसी अन्य आचार्य के मत में एक प्रहर के बाद ये योग शुभदायक होते है और किसी आचार्य के मत में सभी कुयोग यात्रा में ही निन्दित है, अन्य शुभ कार्यों में निन्द्य नही है।

अयोगे सुयोगोपि चेत् स्यात्तदानीमयोगं निहत्यैष सिद्धिं तनोति।
परे लग्नशुद्ध्या कुयोगादिनाशः दिनार्द्धोत्तरं विष्टिपूर्वं च शस्तम्।।

क्रकच आदि कुयोगों के रहते हुये उसी समय कोई अन्य सुयोग आ जावे तो वह सुयोग, कुयोग के

अशुभ फलों को नष्ट करके अपने सुयोग का ही शुभ फल देता है। अन्य आचार्य गण कहते है कि जिस कार्य के लिये जैसी लग्नशुद्धि कही गयी है वैसी लग्न शुद्धि रहने पर कुयोग के दुष्ट फल नष्ट हो जाते है। कुछ आचार्यों के मत से दिन के आधे भाग की भद्रा आदि कुयोगों का फल नष्ट हो जाता है। भद्रा के संबंध में कहा गया है कि शुक्लपक्ष में अष्टमी और पूर्णिमा के पूर्वार्ध में चौथ और एकादशी के उत्तरार्ध में भद्रा रहती है। कृष्णपक्ष में तृतीया और दशमी के अन्त्यार्ध में और सप्तमी तथा चतुर्दशी के पूर्वार्ध में भद्रा रहती है।

भद्रा का वर्णन करते हुये बतलाया गया है कि जब चन्द्रमा कुम्भ, मीन, कर्क एवं सिंह राशि का हो, उसी समय भद्रा भी आ जाय तो भद्रा का निवास मृत्यु लोक में रहता है। मेष, वृष, मिथुन एवं वृश्चिक के चन्द्रमा में भद्रा का निवास स्वर्ग में रहता है। कन्या, मकर, तुला एवं धनु राशि के चन्द्रमा में भद्रा का निवास पाताल लोक में रहता है। भद्रा का निवास जिस लोक में रहता है उस लोक में उसका अशुभ फल होता है।

वारे प्रोक्तं कालहोरासु तस्य धिष्ण्ये प्रोक्तं स्वामितिथ्यंशकेस्य।
कुर्याद्दिक्शूलादि चिन्त्यं क्षणेषु नैवोल्लंघ्यः परिघश्चापि दण्डः।।

जिस वार में जो कार्य करना शास्त्र में कहा गया है, वह वार वर्त्तमान समय में न हो और कार्य करना अत्यावश्यक हो तो वर्तमान निषिद्ध वार में भी विहित वार के काल होरा में उस कार्य को कर लेना चाहिये। जैसे किसी व्यक्ति ने शुक्रवार को ही श्मश्रुकर्म कराने का निश्चय किया है। आज भौमवार है और किसी कार्य के निमित्त आज ही श्मश्रु कर्म करा अत्यावश्यक है तो मंगल वार को शुक्र की होरा में श्मश्रु कर्म कर लेने में कोई दोष नही है।

इस प्रकार आपने शुभ अशुभ विचार के सन्दर्भ में विविध विषयों का अध्ययन किया। साथ ही विषम कालीन परिस्थितियों में परिहार पूर्वक किस प्रकार कार्य साधन हो सकेगा इसका यथा शास्त्रीय प्रमाण आपने देखा।

अभ्यास प्रश्न – ब

1. यदि रविवार को नन्दा तिथि पड़ जाये, तो कौन सा योग होता है?
   क. क्रकच योग ख. अधम योग ग. सिद्ध योग घ. दग्ध योग
2. शुक्रवार को सप्तमी तिथि हो तो कौन सा योग होता है?
   क. विष योग ख. क्रकच योग ग. सिद्धि योग घ. मृत्यु योग
3. सोमवार को श्रवण नक्षत्र हो, तो कौन सा योग होता है?
   क. सिद्धि योग ख. काण योग ग. मृत्यु योग घ. अधम योग

4. वार एवं नक्षत्र के संयोग से बनने वाले योग होता है –
   क. काण योग ख. दग्ध योग ग. सर्वार्थ सिद्धि योग घ. कोई नहीं
5. रघुवंश में कालिदास ने हूणों का वर्णन किस नदी के तट पर किया है?
   क. स्वर्णरेखा ख. नर्मदा ग. वक्षु घ. गंगा

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि 'मुहूर्त्त' विश्वोत्पादक काल भगवान के त्रुटि आदि कल्पान्त अनन्त अवयवों में एक महत्वपूर्ण अंग है। जिसके आधार पर ही विश्व के मानव समाज अपने-अपने कर्तव्य करते हैं तथा स्व-स्व प्रारब्ध और पुरूषार्थ के अनुसार उसका फल प्राप्त करते हैं। व्याकरणशास्त्रदृष्ट्या 'मुह' धातु मे उरट् प्रत्यय लगकर मुहूर्त्त शब्द की निष्पत्ति हुई है। ज्योतिषशास्त्र (कालतन्त्र) में काल के अनेक अंग बताये गये हैं, जिनमें ५ अंगों की प्रधानता है। उनका नाम हैं - वर्ष, मास, लग्न, दिन और मुहूर्त्त। **'मुहूर्त्तस्तु घटिकाद्वयम्'**। अर्थात् दो घटी का एक मुहूर्त्त होता है। जगत में समस्त कार्यों हेतु मुहूर्त्त का विधान बतलाया गया है।
हमारे प्राचीन ऋषियों ने काल का सूक्ष्म निरीक्षण व परीक्षण करने पर यह निष्कर्ष निकाला कि प्रत्येक कार्य के लिये अलग–अलग काल खण्ड का अलग–अलग महत्व व गुण–धर्म है। अनुकूल समय पर कार्य करने पर सफलता होती है । यही दृष्टि व सूक्ष्म विचार मुहूर्त्तत्व का आधार स्तम्भ है। इसी कारण मुहूर्त्त की अनुकूलता का चयन कर लेने में भी आशा तो रहती ही है तथा हानि की सम्भावना भी नहीं है। मुहूर्त्तों का लोकव्यवहार में निकट का सम्बन्ध है। सम्प्रति भारतवर्ष में विवाहादि विभिन्न संस्कारों में मुहूर्त्तों की आवश्यकता होती हैं। भारतीय वैदिक सनातन परम्परा का निवर्हन करने वाले अथवा मानने वालों के लिए तो इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। उनके लिए तो गर्भाधान से लेकर मृत्यु पर्यन्त अथवा यह कहना भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि मानव जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक जीवन के प्रत्येक भाग में मुहूर्तों की आवश्यकता प्रतीत होती ही हैं। इसमें संशय नहीं। वर्तमान सामाजिक दृष्टि में केवल वैदिकधर्मी ही नहीं, लिंगायत और जैन भी पद-पद पर मुहूर्त्त पूछते हैं। पारसी और मुसलमानों के भी कुछ कार्य मुहूर्त्तानुसार सम्पन्न होते हैं। पंचांग पाँच अंगों का समाहार होता है- तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण। इनके शुभाशुभ योग भी होते हैं।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

करण – तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं।

भद्रा – विष्टि नाम के करण को 'भद्रा' कहते हैं। इसकी उत्पत्ति महाकाल के 'वक्ष' से हुई है।

चल करण – बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर, वणिज एवं विष्टि को चल करण कहते हैं।

स्थिर करण – इनकी संख्या 4 है। शकुनि, नाग, चतुष्पद एवं किंस्तुघ्न नामक करण को स्थिर करण के रूप में जानते हैं।

शुक्लपक्ष- जिस पक्ष में चन्द्रमा की कला दृष्ट हो, उसे शुक्लपक्ष कहते हैं।

कृष्णपक्ष – जिस पक्ष में चन्द्रमा की कला दृष्ट न हो, उसे कृष्णपक्ष कहते हैं।

पूर्णिमा – शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि को पूर्णिमा कहते हैं।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न - अ की उत्तरमाला

1. ख 2. घ 3. क 4. क 5. ग 6. ख

अभ्यास प्रश्न - ब की उत्तरमाला

1. ख 2. ख 3. ख 4. ग 5. ग

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि - मूल लेखक- रामदैवज्ञ, टिका – प्रोफेसर रामचन्द्रपाण्डेय:
2. मुहूर्त्तपारिजात – पं. सोहन लाल व्यास
3. मुहूर्त्तमाला – आचार्य रघुनाथ
4. मुहूर्त्तमार्तण्ड – आचार्य नारायण
5. भारतीय ज्योतिष – डॉ0 शंकरबालकृष्ण दीक्षित

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि
2. मुहूर्त्तपारिजात
3. धर्मसिन्धु
4. निर्णयसिन्धु
5. ग्रहलाघवम्

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मुहूर्त से आप क्या समझते है? स्पष्ट रूप से लिखिये।
2. मुहूर्त्तों की आवश्यकता एवं आधार का विवेचन कीजिये।
3. तिथि एवं नक्षत्र का शुभाशुभत्व लिखिये।
4. तिथियों के शुभाशुभत्व पर प्रकाश डालिये।

इकाई – 2 संस्कार परिचय एवं आवश्यकता

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के तृतीय खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – संस्कार परिचय एवं आवश्यकता। है। इस इकाई का शीर्षक है – संस्कार परिचय एवं आवश्यकता। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने पंचांग एवं उनके विभिन्न अंगों के साथ-साथ मुहूर्त्त एवं पंचांगों की शुभाशुभत्व का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में संस्कारों का अध्ययन करने जा रहे हैं।

संस्कार भारतीय संस्कृति का मेरूदण्ड है। मानव जीवन की अमूल्य निधि है – संस्कार। इसके ज्ञानाभाव में मनुष्य में मानवता, परम्परा, अनुशासन आदि समस्त चिजों का घोर अभाव रहता है। अत: इसका ज्ञान मानव जीवन में परमावश्यक है।

इस इकाई में संस्कार परिचय के साथ-साथ हम मानव जीवन में उसकी महत्ता का भी अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि

- संस्कार किसे कहते हैं।
- संस्कारों का मानव जीवन में क्या योगदान हैं।
- ज्योतिष शास्त्रानुसार संस्कार की महत्ता क्या है।
- संस्कारों की उपयोगिता क्या हैं।
- संस्कारों के आधार पर क्या-क्या प्राप्त किया जा सकता है।

2.3 संस्कार परिचय

भारतीय वैदिक सनातन परम्परा अथवा मानव धर्म की संस्कृति 'संस्कारों' पर ही आधारित है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने मानव जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिए अथवा उसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए ही संस्कारों का निर्माण किया था। मानव जीवन में इसका महत्व धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु वैज्ञानिक दृष्टि से भी है। सम्प्रति भारतीय संस्कृति को अविच्छिन्न बनाये रखने में संस्कारों का अद्वितीय योगदान है।

भारत की प्राचीन महत्ता एवं गौरव-गरिमा को गगनचुम्बी बनाने में जिन अनेक सत्प्रवृत्तियों को श्रेय

मिला, उसमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण थी यहाँ की संस्कार पद्धति, जो प्रेरणापद प्रक्रिया पर अवलम्बित है। वेद मन्त्रों के संस्कार उच्चारण से उत्पन्न होने वाली धवनि, तरंगें, यज्ञीय उष्मा से सम्बद्ध होकर अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करती है। जो भी व्यक्ति इस वातावरण से एक होते हैं या जिनके लिए भी इस पुण्य प्रक्रिया का प्रयोग होता है वे उससे प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है, जिससे व्यक्तियों के गुण, कर्म, स्वभाव आदि की अनेकों विशेषतायें उपचार पद्धति है जिसका परिणाम व्यर्थ नहीं जाने पाता। व्यक्तित्व के विकास में इन उपचारों से आश्चर्यजनक सहायता मिलती देखी जाती है। संस्कारों में जो विधि-विधान हैं उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव मनुष्य को सत्मार्गगामी होने के उपयुक्त बनाता है।

संस्कार शब्द का सर्वजन स्वीकृत अर्थ है – गुणयुक्त, उत्कृष्ट या श्रेष्ठता से परिपूर्ण। यद्यपि संस्कार शब्द के अनेक अर्थ शब्दकोषों में दिए गये हैं तथापि जिस धार्मिक अर्थ में यह रूढ है वह है –'शरीर संस्कार'। **कायिक, वाचिक, मानसिक, सांसर्गिक, औत्पत्तिक दोषों को शुद्ध करने की प्रक्रिया को 'संस्कार' कहते हैं।**

परिवार को संस्कारवान बनाने का कौटुम्बिक जीवन को सुविकसित करने का एक मनोवैज्ञानिक एवं धर्मानुभोटिल प्रक्रिया को संस्कार पद्धति कहा जाता है। कृषोत्सव के वातावरण में देवताओं की साक्षी, अग्नि देव का सान्निध्य, धर्म भावनाओं से ओत-प्रोत मनोभूमि, स्वजन-सम्बन्धियों की उपस्थिति पुरोहित द्वारा कराया हुआ धर्मकृत्य, यह सब मिलकर संस्कार से सम्बन्धित व्यक्ति को एक विशेष प्रकार की मानसिक अवस्था में पहुँचा देते हैं और उस समय जो प्रतिज्ञायें की जाती हैं – जो प्रक्रियायें कराई जाती हैं वे अपना गहरा प्रभाव सूक्ष्म मन पर छोड़ती हैं और वह बहुधा इतना गहरा एवं परिपक्व होता है कि उसकी छाप अमिट नहीं तो चिरस्थायी अवश्य बनी रहती हैं।

संस्कार या संस्कृति संस्कृत भाषा के शब्द है, जिसका अर्थ है – मनुष्य का वह कर्म, जो अलंकृत और सुसज्जित हो। प्रकारान्तर से संस्कृति शब्द का अर्थ है – धर्म। संस्कृति और संस्कार में कोई व्यापक अन्तर नहीं है। दोनों का अर्थ लगभग समान है। हिन्दू धर्म में मुख्य रूप से 'षोडश संस्कार' प्रचलित माने गये है, जो मनुष्य की जाति और अवस्था के अनुसार किये जाने वाले धर्म कार्यों की प्रतिष्ठा करते हैं। हिन्दू धर्म दर्शन की संस्कृति यज्ञमय है, क्योंकि सृष्टि ही यज्ञ का परिणाम है, उसका अन्त भी यज्ञमय है। इस यज्ञमय क्रिया में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि क्रिया तक सभी संस्कार यज्ञमय संस्कार के रूप में ही जाने और माने जाते हैं। हिन्दू धर्म के षोडश संस्कार ये केवल कर्मकाण्ड नहीं है जिन्हें यूँ ही ढोया जा रहा है, अपितु पूर्णत: वैज्ञानिक एवं तथ्यपरक है। उनमें से कुछ का तो देशकाल

परिस्थिति के कारण लोप हो गया है और कुछ का एक से अधिक संस्कारों में समावेश, कुछ का अब भी प्रचलन है और कुछ प्रतीक मात्र रह गये हैं, जबकि सभी सोलह संस्कारों को जीवन में धारण करना मानवमात्र का कर्तव्य होना चाहिये।

प्राचीन भारतीय जीवन का दृष्टिकोण एवं उद्देश्य यह था कि जब तक मनुष्य जीवित रहे, वह सर्वांगीण उन्नति करें और मृत्यु के अनन्तर स्वर्ग या मोक्ष प्राप्त करे। जीवन के सर्वांगीण (शरीर और मन) विकास की व्यवस्था की गयी है। संस्कार का अर्थ है वह प्रक्रिया जिसके करने से मनुष्य अथवा पदार्थ किसी कार्य के लिए उपयोगी बन जाता है। अर्थात् किसी वस्तु में योग्यता का आधान करने वाली क्रियाओं को 'संस्कार' कहा जाता है। 'गुणान्तराधान संस्कार:' अर्थात् किसी वस्तु में अन्य गुणों का आधान करना 'संस्कार' है।

संस्कारों के द्वारा प्राचीन आर्य ऋषियों ने जीवन के प्रत्येक अंग को गुणों से भरने एवं विकसित करने का सद् प्रयास किया। उन्होंने संस्कारों को धार्मिक रूप दिया और उपनिषदों, सूत्रों ग्रन्थों एवं स्मृतियों में उनको पूर्ण व्यवस्थित रूप में वर्णन किया।

वेदों में संस्कार शब्द उपलब्ध नहीं होता। संस्करोति शब्द बनाने या चमका देने के अर्थ में उपनिषदों में प्रयुक्त हुआ है –

तस्मादेष एवं यज्ञ स्तस्य मतश्च वाक् ध वर्तिनी।
तयोरन्तरां मनसा संस्करोति ब्रह्मा वाचा होता।।

छान्दग्योपनिषद् ४/१६/१-२

जैमिनी के सूत्रों में संस्कार शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है।

(जैमिनी सूत्र – ३/१/३, ३/८/३, ०/२/९, ९/४/३३, १०/१/२ आदि)

जैमिनी सूत्र की शबर टीका में संस्कार शब्द का इस प्रकार अर्थ किया गया है –

संस्कारो नाम स भवति यस्मिन् जाते पदार्थो भवति कस्यविदर्यस्य।

(जैमिनी सूत्र ३/१/३ शबर टीका)

अर्थात् संस्कार उसका नाम है जिसके हो जाने पर पदार्थ या व्यक्ति किसी कार्य के योग्य हो जाते हैं।

क्रमश: शबर कथित अर्थ ही संस्कार के लिए रूढ़ हो गया। संस्कार किए जाने से उत्पन्न योग्यता दो प्रकार की होती है –

१. प्रथमत:, संस्कार किए जाने से व्यक्ति वेदाध्ययन या गृहस्थाश्रम प्रवेश आदि क्रियाओं के योग्य हो जाता था।
२. द्वितीयत: संस्कार करने से वीर्य अथवा गर्भादि के विभिन्न दोषों का परिहन हो जाता था।

इन दोनों योग्यताओं पर बल दिए जाने के कारण धीरे-धीरे भारत के जन-जीवन में संस्कारों का

प्रारम्भ हो गया। स्मृति काल में यह अनिवार्यता इतनी बढ़ी कि संस्कार उपनयन संस्कार होने से ही द्विजत्व सिद्ध होने लगा- ''संस्कारात् द्विज उच्यते।''
भारतवर्ष में वेदों का हिन्दू धर्म का आदि स्रोत माना गया है। जैसा कि कहा जा चुका है कि वेदों में न तो संस्कार शब्द व्याप्त है और न ही किसी संस्कार के प्रति निश्चित विधि या निषेध मिलते हैं।
वस्तुत: संस्कृति और संस्कार का शाब्दिक अर्थ एक ही है, किन्तु इनके वास्तविक अर्थ को देखने से यह ज्ञात होता है कि संस्कृति साध्य है और संस्कार साधन। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि आचार्यों द्वारा विहित तथा आज तक प्रचलित संस्कारों से ही हमारी संस्कृति जीवित है।

संस्कार सम्पूर्ण मानव जीवन से सम्बन्धित है। सभ्यता के आरम्भ में जीवन आज की अपेक्षा नितान्त साधारण या और वह विविध खण्डों में विभक्त नहीं हुआ था, सामाजिक संस्थायें, विश्वास, भावनायें, कलायें तथा विज्ञान आदि परस्पर एक दूसरे से मिश्रित थे। संस्कार जीवन के सभी क्षेत्रों में व्याप्त थे। प्राचीनकाल में धर्म तथा सर्वस्पर्शी तत्व था तथा कर्मकाण्ड जीवन में सभी सम्भव घटनाओं को शुद्धि तथा स्थायित्व प्रदान करते थे और इस प्रयोजन के लिए उन्होंने संसार के समस्त नैतिक तथा भौतिक साधनों का उपयोग संसार के समस्त नैतिक तथा भौतिक साधनों का उपयोग किया, जिन तक मनुष्य की पहुँच थी। संस्कारों का उद्देश्य व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना था जिससे वह अपने को मानवीय तथा अति मानव शक्तियों से पूर्ण संसार के अनुरूप बना सके।

2.3.1 संस्कार की व्युत्पत्ति, अर्थ, एवं परिभाषा

'संस्कार' शब्द् 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृञ्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर 'संपरिभ्यां करोतौ भूषणे' इस पाणिनीय सूत्र से भूषण अर्थ में 'सुट्' करने पर सिद्ध होता हैं इसका अर्थ है—संस्करण, परिष्करण, विमलीकरण तथा विशुद्धकिरण आदि। संस्कार शब्द का दूसरी भाषा में यथातथ्य अनुवाद करना असम्भव है। अंग्रेजी के सिरीमनी और लैटिन के सिरीमोनिया शब्दों में संस्कार शब्द का अर्थ व्यक्त करने की क्षमता नहीं है। इसकी अपेक्षा सिरीमेनी शब्द का प्रयोग संस्कृत कर्म अथवा सामान्य रूप से धार्मिक क्रियाओं के लिए अधिक उपयुक्त है। संस्कार शब्द का अधिक उपयुक्त पर्याय अंग्रेजी का सैक्रामेण्ट शब्द है – जिसका अर्थ है – धार्मिक विधि विधान अथवा कृत्य जो आन्तरिक तथा आत्मिक सौन्दर्य का बाह्य तथा दृश्य प्रतीक माना जाता है।
वीरमित्रोदय में उद्धृत संस्कार की परिभाषा है –

आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेष: संस्कार:।।

विधिसहित संस्कारों के अनुष्ठान से संस्कारित व्यक्ति में विलक्षण तथा अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भव

हो जाता है। संस्कृति की भूमि पर संस्कार आधारित है। संस्कार ही मानव धर्म या संस्कृति के जन्म और उत्कर्ष का कारण एवं साधन है। संस्कार का सामन्य अर्थ है – संस्कृत करना या विशुद्ध करना। किसी वस्तु को विशेष क्रियाओं द्वारा उत्तम बना देना ही 'संस्कार' है। सामान्य मानव जीवन को विशेष प्रकार की धार्मिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं द्वारा उत्तम बनाया जा सकता है, जिससे कि वह जीवन में परमोत्कर्ष को प्राप्त कर सकें। ये विशिष्ट धार्मिक क्रियायें ही 'संस्कार' है। ये संस्कार ही प्रत्येक जन्म में संगृहीत होते चले जाते हैं, जिससे कर्मों का एक विशाल भण्डार बनता जाता है। इसे 'संचित कर्म' कहते है। इन संचित कर्मों का कुछ भाग एक जीवन में भोगने के लिए उपस्थित रहता है और यही जीवन प्रेरणा का कार्य करता है। अच्छे-बुरे संस्कार होने के कारण मनुष्य अपने जीवन में प्रेरणा का कार्य करता है। फिर इन कर्मों से अच्छे-बुरे नए संस्कार बनते रहते हैं, तथा इन संस्कारों की एक अंतहीन श्रृंखला बनती चली जाती है, जिससे मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

2.3.2 संस्कारों की संख्या एवं मान्य संस्कार –

संस्कारों का प्रचलन हमारे देश में वैदिक काल से ही है, क्योंकि इसके प्रमाण हमें वैदिक साहित्य में उपलब्ध हो जाते हैं। वैदिक साहित्य गृह्यसूत्र साहित्य स्मृति साहित्य तथा काव्यग्रन्थों में संस्कारों की परिभाषायें इनकी संख्या इनकी विधि आदि का वर्णन उपलब्ध हो जाता है। ऋग्वेद में चार संस्कारों का वर्णन उपलब्ध होता है – १. गर्भाधान २. पुंसवन ३. विवाह तथा ४. अन्त्येष्टि। अथर्ववेद में एकादश संस्कारों का वर्णन मिलता है – गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकरण, कर्णवेध, अन्नप्राशन, उपनयन, समावर्तन तथा अन्त्येष्टि। पारस्कर गृह्यसूत्र में ग्यारह संस्कारों में दो संस्कारों को निष्क्रमण तथा केशान्त को और जोड़ दिया गया है इस प्रकार इनकी संख्या १३ कर दी गयी है। बौधायन गृह्यसूत्र में केशान्त को नहीं माना गया है। इसमें उपनयन संस्कार के पहले कर्णवेध को जोड़ा गया है और इस प्रकार बोधायन गृह्यसूत्र में भी १३ संस्कार माने गये हैं। बाराह गृह्यसूत्र में भी १३ संस्कारों का वर्णन है। दन्तोत्पत्ति, वेदव्रत तथा गोदान ये तीन संस्कार पहले के गृह्यसूत्रों में नहीं है तथा अन्य गृह्यसूत्रों में निर्दिष्ट निष्क्रमण, केशान्त तथा अन्त्येष्टि इन संस्कारों का वर्णन वाराह गृह्यसूत्र में नहीं है।

वाल्मीकीय रामायण में – गर्भाधान, नामकरण, उपनयन, विवाह तथा अन्त्येष्टि पाँच संस्कारों का वर्णन मिलता है।

महाभारत में – गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, विवाह, गोदान, उपाकर्म तथा अन्त्येष्टि इन तेरह संस्कारों का वर्णन मिलता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सोलह संस्कारों की मान्यता दी है –

गर्भाद्या मृत्युपर्यन्ता: संस्कारा: षोडशैव हि।
वक्ष्यन्ते तं नमस्कृप्यानन्तविद्यं परमेश्वरम्।।

ये संस्कार हैं – गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, गृहाश्रम, वानप्रस्थ, सन्यास तथा अन्त्येष्टि।

संस्कार बोधक चक्र

क्रम संख्या	स्थान	संस्कारों की संख्या
१	आश्वालायनगृह्यसूत्र	११
२	पारस्करगृह्यसूत्र	१३
३	बोधायनगृह्यसूत्र	१३
४	वाराहगृह्यसूत्र	१३
५	वैखानसगृह्यसूत्र	१८
६	गौतमधर्मसूत्र	४०
७	मनुस्मृति	१३
८	याज्ञवल्क्यस्मृति	१३
९	लौगाक्षिस्मृति	११
१०	मार्कण्डेयस्मृति	१२
११	व्यासस्मृति	१६
१२	आंगिरसस्मृति	२५
१३	जातुकर्ण्यस्मृति	१६
१४	हारीतस्मृति	१६

हिन्दू संस्कार विधि के लेखक डॉ0 राजबलि पाण्डेय ने समस्त संस्कारों को पाँच विभागों में विभाजित किया है –

1. प्राग्जन्म संस्कार – गर्भाधान, पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन।
2. बाल्यावस्था के संस्कार - जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण एवं कर्णवेध।

3. शैक्षणिक संस्कार – विद्यारम्भ, उपनयन एवं वेदारम्भ।
4. विवाह संस्कार – गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने हेतु संस्कार।
5. अन्त्येष्टि संस्कार – मृत्यु के पश्चात् किया जाने वाला संस्कार।

अभ्यास प्रश्न – 'अ'

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

1. किसी वस्तु में अन्य गुणों का आधान करना ……………. है।
2. संस्कार शब्द में .... प्रत्यय है।
3. 'आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशयविशेष: संस्कार:' .... की उक्ति है।
4. संस्कार का सामान्य अर्थ .... है।
5. वाल्मीकी रामायण में .... संस्कारों का वर्णन है।
6. महाभारत में कुल .... संस्कार उद्धृत है।
7. बौधायन गृह्यसूत्र में .... संस्कार कहे गये है।

जिस प्रकार किसी मलिन वस्तु को धो-पोंछकर शुद्ध-पवित्र बना लिया जाता है अथवा जैसे सुवर्ण को आग में तपाकर उसके मलों को दूर किया जाता है और उसके मल जल जाने पर सुवर्ण विशुद्ध रूप में चमकने लगता है, ठीक उसी प्रकार से संस्कारों के द्वारा जीव के जन्म-जन्मान्तरों से संचित मलरूप निकृष्ट कर्म-संस्कारों का भी दूरीकरण किया जाता है। यही कारण है कि हमारे सनातन धर्म में बालक के गर्भ में आने से लेकर जन्म लेने तक और फिर बूढ़े होकर मरने तक संस्कार किये जाते हैं। जैसा कि शास्त्र में कहा गया है— ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः। निषेकाद्याः श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रियाः।।

गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि कर्म तक द्विजमात्र के सभी संस्कार वेद-मन्त्रों के द्वारा ही होते हैं। संस्कार से मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त होता है। संस्कारों की मान्यता में कुछ मतभेद भी हैं। गौतम धर्मसूत्र (1।8।8) में 40 संस्कार माने गए हैं--'चत्वारिंशत् संस्कारैः संस्कृतः।' महर्षि अंगिरा 25 संस्कार मानते हैं। परन्तु व्यास स्मृति में 16 संस्कार माने गये हैं। तदनुसार सोलह संस्कारों के नाम इस प्रकार हैं -

1. गर्भाधान
2. पुंसवन

3. सीमन्तोन्नयन
4. जातकर्म
5. नामकरण
6. निष्क्रमण
7. अन्नप्राशन
8. चूड़ाकरण
9. कर्णवेध
10. उपनयन
11. केशान्त
12. समावर्तन
13. विवाह
14. वानप्रस्थ
15. परिव्राजक या सन्यास
16. अन्त्येष्टि संस्कार

इन संस्कारों का व्यासस्मृति एवं मनुस्मृति के विभिन्न श्लोकों में महत्त्वपूर्ण ढंग से वर्णन किया गया है। अतः इन संस्कारों का अनुष्ठान नितान्त आवश्यक है। इन संस्कारों के करने का अभिप्राय यह है कि जीव न जाने कितने जन्मों से किन-किन योनियों में अर्थात पशु, पक्षी, कीट, पतंग, सरीसृप, स्थावर, जग्डम, जलचर, थलचर, नभचर एवं मनुष्य आदि योनियों में भटकते हुए किस-किस प्रकार के निकृष्टतम कर्म-संस्कारों को बटोरकर साथ में ले आते हैं, इसका उन्हें पता नहीं चलता है। इन्हीं कर्म संस्कारों को नष्ट-भ्रष्ट करके या क्षीण करके उनके स्थान में अच्छे और नये संस्कारों को भर देना या उत्पन्न कर देना ही इन संस्कारों का अभिप्राय या उद्देश्य होता है।

2.4 संस्कारों का प्रयोजन एवं आवश्यकता

संस्कारों का प्रयोजन मनुष्य को दैवी गुणों से युक्त करना है। संस्कारों से सत्व संशुद्धि होती है। सत्व-संशुद्धि पूर्णत: आध्यात्मिक और दैवी उपलब्धि हेतु वरण की जाती है। फलत: मनु महाराज की उस उक्ति को बाह्य दृष्टि वाला व्यक्ति समझ ही नहीं सकता कि ‘शरीर को ईश्वरीय’ कैसे बनाया जा सकता है? पिता के वीर्य और माता के गर्भ जन्य दोषों को दूर करके निर्मल, निष्कलुष संतति का

निर्माण संस्कारों के माध्यम से ही सम्भव हो सकता है। माता-पिता की अभिलाषा और आकांक्षा को पूरा करने वाली संतति पृथ्वी पर जन्म ले सके इसके लिए तप और संस्कार ही माध्यम है। तप अदृश्य को गर्भ में ढ़ालता है और संस्कार गर्भ को संस्कृत करता है। इसी विशिष्ट शरीर वाली संतति को मनु महाराज 'ब्रह्म निवास' योग्य मानते हैं –

गाभैर्होमैर्जातकर्मचौडमौंजीनिबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते।।
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः।।

(मनुस्मृति २/२८-२९)

गर्भाधान, हवन, जातकर्म, चूडाकर्म, उपनयन संस्कारों से द्विजों के वीर्य एवं गर्भ से उत्पन्न दोष नष्ट हो जाते हैं। वेदाध्ययन, व्रत, होम, त्रैविद्य व्रत, देवर्षि पितृ तर्पण, पुत्रोत्पादन, महायज्ञ और यज्ञ के माध्यम से इस पार्थिव शरीर को ब्राह्मी तनु शरीर बनाया जाता है। वेदोक्त और धर्मशास्त्रोक्त संस्कारों से मनुष्य देवत्व को प्राप्त करता है।

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन तथा मुण्डन आदि संस्कार अपने निर्धारित काल में अवश्य कर लेना चाहिए। गर्भाधान के पश्चात् प्रायश: अनेक संस्कार एक वर्ष के भीतर किये जाते हैं। प्रसव के बाद नालच्छेदन, षष्ठी एवं बरही का स्नान, जातकर्म तथा नामकरण प्रायश: दस दिन से एक माह के भीतर कर लिये जाते हैं। इसी तरह से उपनयन संस्कार को भी सोलह वर्ष के भीतर न कराने से ब्रह्मतेज प्राप्ति में भारी क्षरण होता है।

संस्कारों को अवश्य करना चाहिए। इनसे अपूर्व लाभ होता है। इन्हें न करने से दैवीगुणों का विकास नहीं होता है। संस्कारों को सम्पन्न करने में सामग्री, प्रक्रिया, प्रयोक्ता (वैदिक पुरोहित तथा यजमान) तथा काल का महत्व है। अत: इसके लिए मानसिक तैयारी अवश्य कर लेनी चाहिए। साथ ही वैकल्पिक व्यवस्था भी रखनी चाहिए।

संस्कार मानव जीवन के पथ को प्रशस्त करने का एक अति आवश्यक घटक है। अत: इसे प्रत्येक मनुष्य को स्वजीवन में धारण करना चाहिए। 'अकरणात करणं श्रेय:' नहीं करने से करना अच्छा होता है। इसीलिए यह आवश्यक हो जाता कि जीवन में यदि करना है तो अच्छा ही करने की अभिलाषा होनी चाहिए। इस प्रकार संस्कार का महत्व एवं इसकी आवश्यकता मानव मात्र के लिए उपयोगी है।

अभ्यास प्रश्न - 'ब'

1. संस्कार से मनुष्य को क्या प्राप्त होता है?
   क. धन ख. सुख ग. द्विजत्व घ. शान्ति
2. महर्षि अंगिरा के मत में कितने संस्कार हैं?
   क. १३ ख.१८ ग. १६ घ.२५
3. गौतम मतानुसार संस्कारों की संख्या है –
   क. १६ ख.४० ग.१३ घ.२५
4. संस्कारों का प्रयोजन है?
   क. समृद्धि प्राप्त करना ख. मनुष्य को दैवी गुणों से युक्त करना ग. अभिलाषा प्राप्ति
   घ. कोई नहीं
5. व्यासस्मृति में कितने संस्कारों का उल्लेख है?
   क. १६ ख.२० ग.१८ घ.२५

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि भारतीय वैदिक सनातन परम्परा अथवा मानव धर्म की संस्कृति 'संस्कारों' पर ही आधारित है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों ने मानव जीवन को पवित्र एवं मर्यादित बनाने के लिए अथवा उसे अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए ही संस्कारों का निर्माण किया था। मानव जीवन में इसका महत्व धार्मिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु वैज्ञानिक दृष्टि से भी है। सम्प्रति भारतीय संस्कृति को अविच्छिन्न बनाये रखने में संस्कारों का अद्वितीय योगदान है। भारत की प्राचीन महत्ता एवं गौरव-गरिमा को गगनचुम्बी बनाने में जिन अनेक सत्प्रवृत्तियों को श्रेय मिला, उसमें एक अत्यन्त महत्वपूर्ण थी यहाँ की संस्कार पद्धति, जो प्रेरणापद प्रक्रिया पर अवलम्बित है। वेद मन्त्रों के संस्कार उच्चारण से उत्पन्न होने वाली धवनि, तरंगें, यज्ञीय उष्मा से सम्बद्ध होकर अलौकिक वातावरण प्रस्तुत करती है। जो भी व्यक्ति इस वातावरण से एक होते हैं या जिनके लिए भी इस पुण्य प्रक्रिया का प्रयोग होता है वे उससे प्रभावित होते हैं। यह प्रभाव ऐसे परिणाम उत्पन्न करता है, जिससे व्यक्तियों के गुण, कर्म, स्वभाव आदि की अनेकों विशेषतायें उपचार पद्धति है जिसका परिणाम व्यर्थ नहीं जाने पाता। व्यक्तित्व के विकास में इन उपचारों से आश्चर्यजनक सहायता मिलती देखी जाती है। संस्कारों में जो विधि-विधान हैं उसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव मनुष्य को सत्मार्गगामी होने के उपयुक्त बनाता है। परिवार को संस्कारवान बनाने का कौटुम्बिक जीवन को

सुविकसित करने का एक मनोवैज्ञानिक एवं धर्मानुगत प्रक्रिया को संस्कार पद्धति कहा जाता है। कृषोत्सव के वातावरण में देवताओं की साक्षी, अग्नि देव का सान्निध्य, धर्म भावनाओं से ओत-प्रोत मनोभूमि, स्वजन-सम्बन्धियों की उपस्थिति पुरोहित द्वारा कराया हुआ धर्मकृत्य, यह सब मिलकर संस्कार से सम्बन्धित व्यक्ति को एक विशेष प्रकार की मानसिक अवस्था में पहुँचा देते हैं और उस समय जो प्रतिज्ञायें की जाती हैं – जो प्रक्रियायें कराई जाती हैं वे अपना गहरा प्रभाव सूक्ष्म मन पर छोड़ती हैं और वह बहुधा इतना गहरा एवं परिपक्व होता है कि उसकी छाप अमिट नहीं तो चिरस्थायी अवश्य बनी रहती हैं। संस्कार या संस्कृति संस्कृत भाषा के शब्द है, जिसका अर्थ है – मनुष्य का वह कर्म, जो अलंकृत और सुसज्जित हो। प्रकारान्तर से संस्कृति शब्द का अर्थ है – धर्म। संस्कृति और संस्कार में कोई व्यापक अन्तर नहीं है। दोनों का अर्थ लगभग समान है। हिन्दू धर्म में मुख्य रूप से 'षोडश संस्कार' प्रचलित माने गये है, जो मनुष्य की जाति और अवस्था के अनुसार किये जाने वाले धर्म कार्यों की प्रतिष्ठा करते हैं। हिन्दू धर्म दर्शन की संस्कृति यज्ञमय है, क्योंकि सृष्टि ही यज्ञ का परिणाम है, उसका अन्त भी यज्ञमय है। इस यज्ञमय क्रिया में गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि क्रिया तक सभी संस्कार यज्ञमय संस्कार के रूप में ही जाने और माने जाते हैं। हिन्दू धर्म के षोडश संस्कार ये केवल कर्मकाण्ड नहीं है जिन्हें यूँ ही ढोया जा रहा है, अपितु पूर्णत: वैज्ञानिक एवं तथ्यपरक है। उनमें से कुछ का तो देशकाल परिस्थिति के कारण लोप हो गया है और कुछ का एक से अधिक संस्कारों में समावेश, कुछ का अब भी प्रचलन है और कुछ प्रतीक मात्र रह गये हैं, जबकि सभी सोलह संस्कारों को जीवन में धारण करना मानवमात्र का कर्तव्य होना चाहिये।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

संस्कार – संस्कार का अर्थ है – संस्कृत करना अथवा विशुद्ध करना। किसी वस्तु में अन्य गुणों का आधान करना 'संस्कार' कहलाता है।

संस्कृत – विशुद्ध।

अक्षुण्ण – शाश्वत। जो निरन्तर गतिमान हो अर्थात् जो कभी रूके नहीं।

धार्मिक- धर्म से जुड़ा क्रिया पक्ष 'धार्मिक' कहलाता है।

अविच्छिन्न – जो कभी क्षीण न हो।

अलौकिक – लोक से इतर। दैवीय शक्ति को अलौकिक कहते है।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 'अ' की उत्तरमाला

1. संस्कार 2. घञ् 3. वीरमित्रोदय 4. संस्कृत या विशुद्ध करना 5. पाँच 6. 13 7. 13

अभ्यास प्रश्न – 'ब' की उत्तरमाला

1. ग 2. घ 3. ख 4. ख 5. क

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि - मूल लेखक- रामदैवज्ञ, टिका – प्रोफेसर रामचन्द्रपाण्डेय:

2. मुहूर्त्तपारिजात – पं. सोहन लाल व्यास

3. हिन्दू संस्कार पद्धति – डॉ0 राजबलि पाण्डेय

4. वीरमित्रोदय – आचार्य नारायण

5. भारतीय ज्योतिष – डॉ0 शंकरबालकृष्ण दीक्षित

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि

2. हिन्दू संस्कार पद्धति

3. वीरमित्रोदय

4. संस्कार विमर्श

5. षोडश संस्कार पद्धति

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कार से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।

2. संस्कारों के महत्व पर प्रकाश डालिये।

3. ज्योतिष शास्त्रोक्त संस्कार का विवेचन कीजिये।

4. संस्कारों की उपयोगिता पर निबन्ध लिखिये।

5. षोडश संस्कारों का वर्णन कीजिये।

इकाई - 3 गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन एवं नामकरण मुहूर्त्त

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के तृतीय खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन एवं नामकरण मुहूर्त्त। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने मुहूर्त्त एवं पंचांगों की शुभाशुभत्व के साथ-साथ संस्कारों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में संस्कारों के अन्तर्गत गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन एवं नामकरण का अध्ययन करने जा रहे हैं।

गर्भाधान एवं सीमन्तोन्नयन एवं पुंसवन प्राक्जन्म संस्कार के अन्तर्गत आता है तथा नामकरण जन्म के पश्चात् किया जाने वाला संस्कार है।

इस इकाई में गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन तथा नामकरण संस्कार का हम अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि

- गर्भाधान संस्कार क्या है।
- सीमन्तोन्नयन संस्कार किसे कहते हैं।
- पुंसवन संस्कार कब किया जाता है।
- नामकरण संस्कार का निर्धारण कैसे किया जाता है।
- प्राक्जन्म संस्कार एवं जन्मोपरान्त किये जाने वाले संस्कार कौन-कौन से है।

3.3 गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन एवं पुंसवन संस्कार परिचय

गर्भाधान संस्कार को प्रथम संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है। गर्भाधान को प्राग्जन्म संस्कार कहते हैं। जातक का प्राग्जन्म के तीन संस्कार हैं – गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन। इन तीनों संस्कारों को सम्पन्न करने का अधिकार और दायित्व पिता का होता है। माता इसमें संवाहिका होती है। वह पति द्वारा सम्पन्न कराया जा रहा संस्कार शुद्ध भाव से धारण करती है। अत: पिता के जागरूक न होने पर इन संस्कारों का अपलाप होता है। प्रसव के पश्चात् मानव शरीर धारण किया हुआ व्यक्ति अपने तप के माध्यम से अपने जीवन में बदलाव ला सकता है, परन्तु पिता द्वारा संस्कार

न करने के कारण व्यक्ति के जीवन में शुभत्व उपस्थिति में अनेक विघ्न आते हैं। बहुत बार बहुसंख्य व्यक्तियों में जीवन को समझने की ऋषि दृष्टि ही उत्पन्न नहीं हो पाती है। अत: अनेक परिस्थितियों को देखते हुए एक ही दिन शुभ मुहूर्त्त में पुंसवन और सीमन्तोन्नयन दोनों संस्कारों का निर्वाह किया जा सकता है। यह एक वैकल्पिक विधान है –

सीमन्तोन्नयनस्योक्तातिथिवासरराशिषु।
पुंसवं कारयेद् विद्वान सहैवैकदिनेऽथवा।।

सनातन हिन्दू समाज संस्कारों को मानवोत्पत्ति के काल से अपरिहार्य मानता रहा है। पश्चिमी चिंतक और उनके अनुयायी संस्कारों को आदिम युग के पश्चात् की प्रवृत्ति मानते हैं। यह दृष्टि उनको पश्चिमी जीवन के द्वारा विरासत में मिली है। भारतीय मत से सृष्टि सत्ययुग में सर्वश्रेष्ठ उपादानों से आरम्भ होती है। पश्चिमी मत से सृष्टि का धीरे-धीरे विकास होता है। अत: भारतीय समाज को अपने संस्कारों को सम्पूर्ण आस्था के साथ जीना चाहिए।

गर्भाधान संस्कार

गर्भाधान संस्कार की परिभाषा –

जिस कर्म की द्वारा पति अपनी धर्मभार्या में अपना सत्व (वीर्य, बीज) स्थापित करता है, उसे गर्भाधान कहते हैं – ''**गर्भ: संधार्यते येन कर्मणा तद् गर्भाधानमित्यनुगतार्थं कर्मनामधेयम्।**''

(पूर्वमीमांसा, अध्याय १, पाद ४, अभिकरण २)

महर्षि शौनक के अनुसार जिस कर्म में स्त्री पति द्वारा प्रदत्त शुक्र धारण करती है, उसे गर्भालम्बन या गर्भाधान कहते हैं –

निषिक्तो यत्प्रयोगेण गर्भ: संधार्यते स्त्रिया।
तद् गर्भालम्भनं नाम कर्म प्रोक्तं मनीषिभि:।।

दो प्रकार के गर्भाधान –

पृथ्वी पर मनुष्य की उत्पत्ति दो प्रकार की है – १. दिव्य और २. योनिज। भगवान ब्रह्मा द्वारा सृष्टि के आरम्भ में १० ऋषियों की दिव्य उत्पत्ति हुई। ये १० ऋषि हैं – मरीचि, अंगिरा, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, दक्ष, वसिष्ठ, भृगु एवं नारद। इनमें से नारद के अतिरिक्त सभी ऋषियों ने अपनी धर्मभार्या के द्वारा सन्तानोत्पत्ति की। तभी से संस्कारों की भी उत्पत्ति हुई।

वैदिक एवं लौकिक प्रयोग -

आज का पश्चिमी समाज और उसका अनुगमन करने वाला भारतीय समाज का मानना है कि संस्कार बहुत बाद में प्रयुक्त हुए। अत: कतिपय इतिहासकार और ग्रन्थ लेखक यूरोप की भाषा

बोलते हुए लिखते हैं कि आदिम समाज में संस्कार नहीं था। गर्भाधान एक प्राकृतिक कर्म था। संस्कार रूप में गर्भाधान बहुत बाद में समाज में प्रविष्ट हुआ। उन्हें इस बात की कल्पना ही नहीं है कि हमारे ऋषि सर्वज्ञ और धर्म के आश्रय थे। सृष्टि के आरम्भ में ही वेद और वेद आश्रित संस्कार सनातन हिन्दू समाज में प्रवृत्त थे। अत: भारतवर्ष में दो प्रकार की मान्यता चल रही है। पहली मान्यता के अनुसार संस्कार सृष्टि के आरम्भ से प्रचलित हैं और दूसरी मान्यता के अनुसार संस्कार ईसा के कुछ हजार वर्ष पूर्व आरम्भ हुए। दूसरी मान्यता हमारे लिए हास्यास्पद है।

प्राचीन भारतवर्ष में पति वैदिक मन्त्र के द्वारा अपनी धर्मभार्या में गर्भाधान संस्कार करता था। यद्यपि गर्भाधान के अनेक वैदिक मन्त्र उपलब्ध थे पर उनमें 'विष्णुर्योनिं कल्पयतु' सर्वप्रधान मन्त्र था। अनेक लोग अमंत्रक ही गर्भाधान करते थे। प्राचीन भारतवर्ष में ब्रह्मचर्य का पालन प्रायश: सभी लोग करते थे। महाभारतकाल से गर्भाधान हेतु सन्तोनगोपाल मन्त्र का प्रयोग आरम्भ हुआ। यह मन्त्र सरल और सर्वजनबोधगम्य था। फलत: अनेक दम्पत्ती गर्भाधान काल में इस मन्त्र का प्रयोग करते थे। मन्त्र इस प्रकार है –

ऊँ0 क्लीं देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते।
देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गत:।। क्लीं ऊँ0।

गर्भाधान से पूर्व के प्रयोग –

वीर, विद्वान, भाग्यवान्, राजा, ऋषि, देवतांश, कुलोद्धारक, वंशवर्द्धक आदि मनोभिलषित पुत्र की प्राप्ति के लिए गर्भाधान से पूर्व वैदिक प्रयोग (पुत्रेष्टियज्ञ) किये जाते थे। इन प्रयोगों की समाप्ति के साथ प्रसाद रूप में चूर्ण बनाकर यज्ञकर्त्ता द्वारा यजमान भार्या को भक्षण हेतु दिया जाता था। इस चरू रूपी प्रसाद का भक्षण करने से संकल्पित सद्गुणों से युक्त पुत्र या पुत्री का जन्म होता था। कालान्तर में गर्भाधान से पूर्व अभिलाषाष्टक स्तोत्र, वंशवृद्धिकरंशकवच, हरिवंशपुराण का सप्ताह पाठ, दुर्गासप्तशती का शतचण्डीपाठ आदि प्रयोग बहुतायत में होने लगे। इन प्रयोगों को कराने के पश्चात् भी शुभमुहूर्त्त में गर्भाधान संस्कार करना अनिवार्य कर्म है। अत: गर्भाधान संस्कार के द्वारा माता-पिता अपनी इच्छा के अनुरूप संतान प्राप्त करते हैं। गर्भाधान संस्कार के द्वारा वंश, परिवार, समाज, देश और राष्ट्र का व्यापक अभ्युदय संभव है। अत: गर्भाधान संस्कार सृष्टि हित में अपूर्व व्यापक फल को प्रदान करता है। मात्र गर्भाधान संस्कार को अपना लेने से जीवन की समस्याओं का समाधान सम्भव है।

गर्भाधान की आयु

- अनेक ऋषिगण गर्भाधान की श्रेष्ठ आयु १८ वर्ष से ४० वर्ष मानते हैं।

- कतिपय ऋषिगण गर्भाधान की श्रेष्ठ आयु २० वर्ष से ४० वर्ष मानते हैं।
- महर्षि सुश्रुत के अनुसार कन्या की आयु १६ वर्ष तथा पुरूष की आयु २५ वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए- ऊनषोडश-वर्षायामप्राप्त: पंचविंशतम्।।

गर्भाधान संस्कार के द्वारा मनुष्य पितृऋण से मुक्त होता है। ब्रह्मचर्य से ऋषिऋण तथा यज्ञ से देवऋण समाप्त होता है। प्रत्येक मनुष्य के उपर तीन ऋण होते हैं –ऋषिऋण, देवऋण तथा पितृऋण।

गर्भाधान संस्कार के द्वारा विद्वान, राजा, धनवान, वीर, कुशल या जैसा चाहे वैसी संतान माता-पिता प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए गर्भाधान के हेतु सुनिश्चित तिथि में संकल्पपूर्वक पूजन किया जाता है। अशुभ मुहूर्त्त में किया हुआ गर्भाधान अशुभ संतान को उत्पन्न करता है। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, चारित्रिक दोषों से युक्त संतानें प्रायश: अशुभकाल में किये हुए आधान के कारण उत्पन्न होती हैं। गर्भाधान एक ऐसा संस्कार है जो संतान के भीतर अदृश्य रूप में सभी गुणों को सुनियोजित करता है। परिवार, समाज एवं राष्ट्र को श्रेष्ठ संतान देने हेतु गर्भाधान मुहूर्त्त का महत्व सर्वश्रेष्ठ है।

अकस्मात् गर्भाधान होना और सुविचारित गर्भाधान करना दोनों के गुणों-प्रवृत्तियों में भावी शिशु पर अलग-अलग प्रभाव होता है। सुविचारित गर्भाधान से माँ-पिता अपनी आकांक्षाओं के अनुरूप संतान उत्पन्न कर सकते हैं। यह यन्त्र प्रक्रिया साध्य और स्व संयम प्रक्रिया साध्य दोनों है।

पति-पत्नी को श्रेष्ठ संतान प्राप्ति हेतु गर्भाधान के शुभत्व की पूर्ण तैयारी करनी चाहिए। अपने होने वाले शिशु में किन-किन गुणों, आदर्शों और प्रवृत्तियों (सात्विक, राजसिक, तामसिक) को दम्पत्ति चाहती है तदनुरूप उसे आचरण करना चाहिए।

माता + पिता = संतान। पिता का सत्व और माता का क्षेत्र दोनों मिलकर स्वसदृश संतान प्राप्त करते हैं। माता दस माह तक संतान को गर्भ में धारण करती है। अत: माता का दायित्व पिता से अधिक होता है। वह पिता से दस गुणित श्रेष्ठ या बड़ी कही जाती है। गर्भ में पल रहा शिशु चेतन होता है। उसके उपर माँ की प्रवृत्ति, स्वास्थ्य, आकाशीय ग्रह तत्वों का सूक्ष्म प्रभाव, दिव्य मंत्रों का दिव्य प्रभाव तीव्र एवं प्रभावी ढंग से होता है। माँ का अवसाद, माँ का रुदन, माँ की उग्रता, माँ की मानसिक स्थिति, उच्चता, प्रसन्नता, शांतचित्तता का प्रभाव गर्भस्थ संतान पर अतिशय होता है।

गर्भस्थ शिशु का सम्बन्ध माँ के रक्त और श्वसन से होता है। माँ के रक्त स्तर, हीमोग्लोबीन, रक्त वायु कण, श्वास संख्या संतान में प्रायश: तद्वत् होती है। गर्भस्थ शिशु की जीवन प्रक्रिया माँ की जीवन प्रक्रिया से जुड़ी होती है। माँ की अभीप्सा एवं शिव संकल्प शिशु को अनुप्राणित एवं स्पन्दित करता है।

माँ की अभीप्सा एवं शिव संकल्प शिशु को अनुप्राणित एवं स्पन्दित करता है। माँ का सूक्ष्म मन:प्रभाव शिशु के सूक्ष्म मन:प्रभाव से जुड़ा रहता है। गर्भिणी माँ को उच्च एवं संशुद्ध भावलोक में विचरण करना चाहिए। गर्भस्थ शिशु के मन, बुद्धि, प्राण, वाक्, तेज आदि तत्व माँ के तत्व के साथ तादात्मय बनाये रहते हैं।

माँ का 'कार्टीसोन हार्मोन' संतान के ऊतकों (टिश्यूज) को प्रभावित करता है। यह तनाव से बढ़ता है। गर्भाशय में एम्नीओटिम फ्लूड में कार्टीसोन हार्मोन को नियन्त्रित रखकर माँ अपने शिशु को स्वस्थ रख सकती है। यह तनाव से बढ़ता है। अत: माँ को तनाव रहित जगह पर रहना चाहिए। जितने मास का गर्भ होता है उतने मास के तात्कालिक आकाशीय ग्रहों का प्रभाव गर्भस्थ संतान पर पड़ता है। गर्भ में चार से आठ मास के भीतर शिशु को ज्यादा सुरक्षा चाहिए। गर्भिणी माता को शान्त तथा सादगीपूर्ण ढंग से गर्भकाल में रहना चाहिए। माँ को गर्भनाल (प्लेसेन्टा) सुरक्षित रखने का हर संभव प्रयास करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न – अ

1. प्राग्जन्म का प्रथम संस्कार कौन है?
   क. सीमन्तोन्नयन ख. गर्भाधान ग. पुंसवन घ. जातकर्म
2. जिस कर्म की द्वारा पति अपनी धर्मभार्या में अपना सत्व (वीर्य, बीज) स्थापित करता है, उसे क्या कहते है।
   क. पुंसवन ख. नामकरण ग. सीमन्तोन्नयन घ. गर्भाधान
3. हरिवंशपुराण का पारायण किसकी प्राप्ति हेतु किया जाता है?
   क. धन ख. सन्तान ग. ऐश्वर्य घ. मोक्ष
4. गर्भस्थ शिशु का सम्बन्ध माँ के किस भाग से होता है?
   क. रक्त और श्वसन से ख. नासिका से ग. गर्भाशय से घ. पाद से
5. माता + पिता = ?
   क. सन्तान ख. विवाह ग. ऐश्वर्य घ. गृह
6. माँ का 'कार्टीसोन हार्मोन' संतान के किस भाग को प्रभावित करता है।
   क. ऊतकों (टिश्यूज) ख. नेत्र ग. दिमाग को घ. हृदय को
7. गर्भाधान की श्रेष्ठआयु क्या है?
   क. २० से ४० वर्ष ख. ४० से ५० वर्ष ग. ५० से ६० वर्ष घ. कोई नहीं

गर्भाधान हेतु स्त्री और पुरूष को रात्रि में ही मिलना चाहिए। ऐसा शास्त्र का आदेश है। दिन में गर्भाधान विपत्तिकाल में ही स्वीकार्य हो सकता है- दिवा न दारगमनमिति। इससे पुरूष की आयु का क्षरण होता है। गर्भाधान में पहली, दूसरी, तीसरी, चौथी, ग्यारहवीं, तेरहवीं रात्रियाँ पूर्णत: वर्जित हैं। पुत्र की कामना से बारहवीं, चौदहवीं तथा सोलहवीं समरात्रियाँ सर्वश्रेष्ठ मानी गयी हैं। पुत्री की कामना से पाँचवीं, सातवीं नौवीं तथा पन्द्रहवीं विषमरात्रियाँ श्रेष्ठ मानी गयी हैं।

सन्तान की कामना से अन्तिम रात्रियाँ प्रबलतम होती हैं। जैसे – पन्द्रहवीं रात्रि कन्या के लिए तथा सोलहवीं रात्रि पुत्र के लिए। गर्भाधान हेतु एक रात में एक ही बार पति-पत्नी को आधान सम्पर्क करना चाहिए। इससे आधान काल का पता रहता है।

गर्भाधान हेतु अशुभ काल –

चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, संक्रान्ति, वैधृति, व्यतीपात, परिघ, भ्रदा, संध्याकाल, माता-पिता का मरण दिन, श्राद्ध का प्रथम दिन तथा स्वयं के जन्म नक्षत्र में आधान हेतु सम्पर्क नहीं करना चाहिए। शुक्रास्त, गुरुअस्त, अधिकमास, क्षयमास में भी गर्भाधान शुभ नहीं होता।

शुभ काल –

सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र गर्भाधान हेतु श्रेष्ठतम दिवस हैं। गर्भाधान हेतु श्रवण, रोहिणी, हस्त, अनुराधा, स्वाति, रेवती, शतभिषा तथा तीनों उत्तरा श्रेष्ठतम नक्षत्र हैं।

गर्भाधान हेतु पुष्य, धनिष्ठा, मृगशीर्ष, चित्रा, अश्विनी तथा पुनर्वसु ये मध्यम नक्षत्र हैं। इसके अतिरिक्त अन्य सभी नक्षत्र निषिद्ध होते हैं। गर्भाधान काल में स्त्री को सुसज्जित रहना, प्रसन्न मन रहना तथा स्वल्प भोजन करना चाहिए।

पुंसवन संस्कार –

पुंसवन संस्कार द्वितीय संस्कार है। यह गर्भाधान संस्कार के पश्चात् किया जाता है। इसे करने का प्रथम अधिकार पति को होता है। पति के अभाव में देवर या गुरु द्वारा यह संस्कार सम्पन्न किया जाता है।

परिभाषा –

जिस संस्कार द्वारा पुमान् (पुलिंग, पुत्र) की प्राप्ति होती है, उसे पुंसवन संस्कार कहते हैं – 'पुमान् प्रसूयते येन तत्पुंसवनमीरितम्।' (शौनक ऋषि)।

अत: पुत्र की कामना होने पर इस संस्कार को अवश्य करना चाहिए। पुंसवन संस्कार से पुत्र की प्राप्ति होती है। प्राजापत्य यज्ञ से भी पुत्र की प्राप्ति होती है, परन्तु यह यज्ञ अत्यन्त जटिल है।

पुंसवन संस्कार का काल –

गर्भस्पन्दन से पूर्व पुंसवन संस्कार किया जाता है। अत: गर्भ के अभिव्यक्त होने पर यह संस्कार करना चाहिए। गर्भधारण के द्वितीय या तृतीय मास में इस संस्कार को करना चाहिए। कतिपय ग्रन्थों में इसे षष्ठ या अष्टम मास में भी करने को कहा गया है। आज यह संस्कार प्रायश: द्वितीय या तृतीय मास में किया जा रहा है। वैज्ञानिक दृष्टि से भी तृतीय मास की पूर्ति होने के पश्चात् लिंग निर्धारित हो जाता है। अत: तृतीय मास से पूर्व इसे कर लेना चाहिए। आचार्य रामदैवज्ञ ने भी मुहूर्त्तचिन्तामणि में कहा है कि –

पूर्वोदितैः पुंसवनं विधेयं मासे तृतीये त्वथ विष्णुपूजा।
मासेऽष्टमे विष्णुविधातृजीवैर्लग्ने शुभे मृत्युगृहे च शुद्धे।।

अर्थात् गुरु, रवि और भौमवासरों, मृगशिरा, पुष्य, मूल, श्रवण, पुनर्वसु तथा हस्त नक्षत्रों में रिक्ता ४,९,१४ अमावस्या, द्वादशी, षष्ठी और अष्टमी तिथियों को छोड़कर शेष तिथियों में गर्भमासपति के बलवान रहने पर आठवें अथवा छठें मास में शुभग्रहों के केन्द्र १,४,७,१० एवं त्रिकोण ५,९ भावों में स्थित रहने पर तथा पापग्रहों के ३,६,११ भावों में जाने पर पुंसवन संस्कार तीसरे मास में करना चाहिये। इसके अनन्तर आठवें मास में श्रवण, रोहिणी और पुष्य नक्षत्रों में शुभलग्न में अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर गर्भिणी को भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिये।

गोभिल ऋषि के अनुसार पुंसवन संस्कार को तृतीय मास के तृतीय भाग में करना चाहिए अर्थात् गर्भ धारण के ८० दिन से ९० दिन के भीतर पुंसवन संस्कार करना चाहिए। यदि पुंसवन संस्कार किसी बाधा के कारण नियत काल में न हो सके तो सर्वप्रायश्चित होम करके इसे करना चाहिए।

पुंसवन मुहूर्त्त –

यह संस्कार शुक्ल पक्ष में किया जाता है। मलमास, गुर्वस्त, शुक्रास्त में भी इसे करना चाहिए। रिक्ता तिथि (४,९,१४) और पर्व (पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी, संक्रान्ति) का परित्याग कर देना चाहिए। रवि, मंगल तथा गुरुवार को पुंसवन संस्कार किया जाता है। पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, मूल, अनुराधा, श्रवण, मृगशीर्ष नक्षत्रों में पुंसवन शुभकारी होता है।

प्रथम गर्भ और पुंसवन संस्कार -

प्रथम गर्भ का पुंसवन संस्कार अवश्य करना चाहिए। इसके पश्चात् माता-पिता को पुत्रप्राप्ति की कामना हो तभी इस संस्कार को करना चाहिए। अनेक आचार्यों के अनुसार इसे प्रत्येक गर्भ के साथ करना चाहिए। पुंसवन संस्कार के द्वारा पूर्व जीवन की स्मृति तथा गर्भदोष का नाश होता है। फलत: शौनक ऋषि के अनुसार इस संस्कार को प्रत्येक गर्भ के साथ करना चाहिये।

यदि पुंसवन और सीमन्तोन्यन संस्कार को केवल प्रथम गर्भ के समय ही किया जायेगा तो प्रमुख संस्कारों की संख्या सोलह से घटकर चौदह हो जायेगी। कन्या प्राप्ति की इच्छा वाले दम्पत्ती तो पुंसवन संस्कार छोड़ भी सकते हैं, परन्तु पुत्र प्राप्ति की कामना वाले दम्पत्ती को इस संस्कार को इस संस्कार को करना ही चाहिए। पुंसवन संस्कार एक ऐसा संस्कार है जो गर्भस्थ शिशु को प्राग्जन्म की स्मृति को प्रदान करने की क्षमता रखता है। इसे जातिस्मरत्व भी कहते हैं। इसी संस्कार के द्वारा पिता अपनी तपस्या और दिव्यमन्त्र ज्ञान का आधान अपने पुत्र के भीतर करता है। फलत: उत्पन्न बालक जन्मकाल से ही शाप और वरदान देने की क्षमता से युक्त होता है। यद्यपि आज इस प्रकार के दिव्य कर्म लुप्तप्राय हैं परन्तु इनकी प्रक्रिया सम्प्रति उपलब्ध है। राजा परीक्षित को बालक द्वारा प्रदत्त शाप उस बालक में निहित पूर्व जीवन की विद्या और ज्ञान को प्रदर्शित करता है। इस तरह के अनेक उदाहरण प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध हैं।

सीमन्तोन्नयन संस्कार

सीमन्तोन्नयन संस्कार तृतीय संस्कार है। यह पुंसवन संस्कार के पश्चात् किया जाता है। सीमन्त सिर की माँग को कहते हैं। इसे केशवेश भी कहते हैं। सौभाग्यवती महिलायें माँग में सिन्दूर भरती रहती हैं। यह उनके सौभाग्यवती होने का शुभलक्षण होता है।

परिभाषा –

जिस संस्कार में गर्भिणी स्त्री के केशों (सीमन्त, बाल) को ऊपर उठाया जाता है, उसे सीमन्तोन्नयन संस्कार कहते हैं। यथा –

सीमन्त उन्नीयते यस्मिन् कर्मणि तत् सीमन्तोन्यनमिति कर्मनामधेयम्।

आश्वलायन स्मृति के अनुसार प्रथम गर्भ की रक्षा के लिए पति को तत्पर रहकर सीमन्तोन्यन संस्कार करना चाहिए। सीमन्तोन्नयन संस्कार के द्वारा सूक्ष्म शक्तियों से गर्भिणी की रक्षा होती है। माता के भीतर ऐश्वर्य तथा संतान के भीतर दीर्घायु की उत्पत्ति होती है। आश्वलायन ने सिन्दूर से परिपूर्ण सीमन्त को लक्ष्मी की तरह शोभा स्थान माना है – **सीमन्तकरणी लक्ष्मीस्तातामावहति मन्त्रत:।**

महान् सौभाग्य की प्राप्ति हेतु सीमन्तोन्नयन संस्कार किया जाता है। इस संस्कार के माध्यम से पति एवं परिवार के लोग गर्भिणी स्त्री को हर्ष एवं उल्लास से परिपूर्ण रखते हैं।

प्रथम बार गर्भ धारण करने वाली स्त्री अनेक प्रकार के नये अनुभवों से गुजरती है। इस कालखण्ड में उसके साथ अनुभवी सौभाग्यवती स्त्रियों का रहना शुभकारी होता है। उसे यह भी अनुभूत होना चाहिए कि वह जिस वंश को आगे बढ़ाने जा रही है उसके पुरुष और स्त्रियाँ उस गर्भिणी के प्रति

अत्यन्त स्नेहशील और कृतज्ञ हैं। अनुभवों के आधार पर गर्भिणी को विविध प्रकार का ज्ञान प्रदान करना तथा उसे सुरक्षित रखना परिवार का कर्तव्य होता है। इस कालखण्ड में उसे अकेले सोने, रहने एवं कार्य करने से भय उत्पन्न हो सकता है। गर्भकाल में उत्पन्न भय गर्भ को नष्ट कर सकता है। ऐसे में दिव्य कवचों, अनुष्ठानों एवं मन्त्रों के द्वारा शिशु एवं गर्भिणी को सुरक्षा प्रदान की जाती है। फलत: संस्कारों के द्वारा सुरक्षा एवं दिव्यता की प्राप्ति होती है। महर्षि आश्वलायन के अनुसार गर्भ की रक्षा श्रीदेवी की पूजा से होती है। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीनकाल में ही भगवान नारायण की पत्नी भगवती श्री गर्भ की रक्षा करती है –

पत्न्या: प्रथमजं गर्भमत्तुकामास्तुदुर्भगा:।
आयान्ति काश्चिद्राक्षस्यो रुधिराशनतत्परा:।।
तासां निरसनार्थाय श्रियमावाहयेत् पति:।
सीमन्तकरणी लक्ष्मीस्तामावहति मन्त्रत:।।

प्राग्जन्म संस्कारों के द्वारा गर्भस्थ शिशु के भीतर दीर्घायु, श्रेष्ठता, वीरता तथा जातिस्मरत्व का सन्निवेश किया जाता है। दिव्य विधियों के द्वारा एक ओर जहाँ दिव्य गुणों का शिशु में संधान किया जाता है वहीं दूसरी ओर सामाजिक महोत्सव एवं महिला के प्रति संरक्षण भाव का भी प्रकटीकरण किया जाता है।

सीमन्तोन्नयन संस्कार का काल –

गृह्यसूत्रों में प्रायश: गर्भधारण के चतुर्थ या पंचम मास में इसे करने का निर्देश प्राप्त है। आश्वलायन ने चतुर्थ मास में सीमन्तोन्नयन संस्कार करने को कहा है – चतुर्थगर्भमासे सीमन्तोन्नयनम्। याज्ञवल्क्य स्मृति में इसे छठे या आठवें मास में करने हेतु निर्देश प्राप्त होता है- षष्ठेऽष्टमे वा सीमान्त:। इस प्रकार से पुंसवन संस्कार के पश्चात् चतुर्थ, पंचम, षष्ठ या अष्टम मास में सीमन्तोन्नयन संस्कार कर लेना चाहिये। इस संस्कार को शुक्लपक्ष में पुरुष नक्षत्र में करना शुभकारी माना गया है।

अभ्यास प्रश्न – ब

1. पुंसवन संस्कार .... संस्कार है।
2. जिस संस्कार द्वारा पुमान् (पुलिंग, पुत्र) की प्राप्ति होती है, उसे .... संस्कार कहते हैं।
3. पुंसवन संस्कार .... मास में किया जाता है।
4. जिस संस्कार में गर्भिणी स्त्री के केशों (सीमन्त, बाल) को ऊपर उठाया जाता है, उसे .... संस्कार कहते हैं।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि गर्भाधान संस्कार को प्रथम संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है। गर्भाधान को प्राग्जन्म संस्कार कहते हैं। जातक का प्राग्जन्म के तीन संस्कार हैं – गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन। इन तीनों संस्कारों को सम्पन्न करने का अधिकार और दायित्व पिता का होता है। माता इसमें संवाहिका होती है। वह पति द्वारा सम्पन्न कराया जा रहा संस्कार शुद्ध भाव से धारण करती है। अत: पिता के जागरूक न होने पर इन संस्कारों का अपलाप होता है। प्रसव के पश्चात् मानव शरीर धारण किया हुआ व्यक्ति अपने तप के माध्यम से अपने जीवन में बदलाव ला सकता है, परन्तु पिता द्वारा संस्कार न करने के कारण व्यक्ति के जीवन में शुभत्व उपस्थिति में अनेक विघ्न आते हैं। बहुत बार बहुसंख्य व्यक्तियों में जीवन को समझने की ऋषि दृष्टि ही उत्पन्न नहीं हो पाती है। अत: अनेक परिस्थितियों को देखते हुए एक ही दिन शुभ मुहूर्त्त में पुंसवन और सीमन्तोन्नयन दोनों संस्कारों का निर्वाह किया जा सकता है। यह एक वैकल्पिक विधान है –

सीमन्तोन्नयनस्योक्तातिथिवासरराशिषु।
पुंसवं कारयेद् विद्वान सहैवैकदिनेऽथवा।।

सनातन हिन्दू समाज संस्कारों को मानवोत्पत्ति के काल से अपरिहार्य मानता रहा है। पश्चिमी चिंतक और उनके अनुयायी संस्कारों को आदिम युग के पश्चात् की प्रवृत्ति मानते हैं। यह दृष्टि उनको पश्चिमी जीवन के द्वारा विरासत में मिली है। भारतीय मत से सृष्टि सत्ययुग में सर्वश्रेष्ठ उपादानों से आरम्भ होती है। पश्चिमी मत से सृष्टि का धीरे-धीरे विकास होता है। अत: भारतीय समाज को अपने संस्कारों को सम्पूर्ण आस्था के साथ जीना चाहिए।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

संस्कार – संस्कार का अर्थ है – संस्कृत करना अथवा विशुद्ध करना। किसी वस्तु में अन्य गुणों का आधान करना 'संस्कार' कहलाता है।

गर्भाधान – गर्भ: संधार्यते येन कर्मणा तद् गर्भाधानमित्यनुगतार्थं कर्मनामधेयम्।। जिस कर्म के द्वारा पति अपनी धर्मभार्या में अपना सत्व (वीर्य, बीज) स्थापित करता है, उसे गर्भाधान कहते है।

पुंसवन – जिस संस्कार द्वारा पुमान् (पुलिंग, पुत्र) की प्राप्ति होती है, उसे पुंसवन संस्कार कहते है। पुमान् प्रसूयते येन तत्पुंसवनमीरितम्।

सीमन्तोन्नयन – सीमन्त उन्नीयते यस्मिन् कर्मणि तत् सीमन्तोन्नयनमिति कर्मनामधेयम्। जिस संस्कार में गर्भिणी स्त्री के केशों को ऊपर उठाया जाता है। उसे सीमन्तोन्नयन संस्कार कहते हैं।

ऋण – तीन प्रकार के ऋण होते हैं - देव ऋण, ऋषि ऋण एवं पितृ ऋण।

वैदिक – वेदप्रणीत विषयों को वैदिक कहा जाता है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 'अ' की उत्तरमाला

1. ख 2. घ 3. ख 4. क 5. क 6. क 7. क

अभ्यास प्रश्न – 'ब' की उत्तरमाला

1. द्वितीय 2. पुंसवन 3. तृतीय 4. सीमन्तोन्नयन

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्तचिन्तामणि - मूल लेखक- रामदैवज्ञ, टिका – प्रोफेसर रामचन्द्रपाण्डेय:
2. मुहूर्तपारिजात – पं. सोहन लाल व्यास
3. हिन्दू संस्कार पद्धति – डॉ0 राजबलि पाण्डेय
4. प्राग्जन्म संस्कार – आचार्य कामेश्वर उपाध्याय
5. मुहूर्तमार्तण्ड – नारायण दैवज्ञ।

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्तचिन्तामणि
2. हिन्दू संस्कार पद्धति
3. वीरमित्रोदय
4. संस्कार विमर्श
5. प्राग्जन्मसंस्कार

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गर्भाधान संस्कार से आप क्या समझते है? स्पष्ट कीजिये।

2. पुंसवन संस्कार के महत्व पर प्रकाश डालिये।

3. सीमन्तोन्न्यन संस्कार क्या है? लिखिये।

4. प्राग्जन्म संस्कारों का उल्लेख कीजिये।

5. ज्योतिष शास्त्र में संस्कारों के महत्व प्रतिपादित कीजिये।

इकाई - 4 कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म मुहूर्त्त

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के तृतीय खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकरण मुहूर्त्त। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने गर्भाधन, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन एवं नामकरण संस्कारों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में संस्कारों के अन्तर्गत कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकरण का अध्ययन करने जा रहे हैं।

सामान्यतया कर्णवेध का सम्बन्ध कानछेदन से है। अन्नप्राशन संस्कार में शिशु को प्रथम बार अन्न का प्राशन (खिलाना) कराया जाता है तथा चूड़ाकरण में प्रथम बार उसके सिर के बाल काटे जाते हैं।

इस इकाई में कर्णवेध, अन्नप्राशन, एवं चूड़ाकरण संस्कार का हम अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि

- कर्णवेध संस्कार कब किया जाता है।
- अन्नप्राशन संस्कार किसे कहते हैं।
- चूड़ाकरण संस्कार क्यों आवश्यक है।
- कर्णवेध, अन्नप्राशन संस्कार का क्या महत्व है।
- चूड़ाकरण संस्कार की क्या उपयोगिता है।

4.3 कर्णवेध एवं अन्नप्राशन मुहूर्त्त

भारतीय वैदिक सनातन परम्परा के अन्तर्गत ‘कर्णवेध’ संस्कार एक महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। प्राचीनकाल में इसका प्रचलन अत्यधिक था। सम्प्रति यह क्षेत्र विशेष में दिखलाई पड़ता है। ‘कर्ण’ का शाब्दिक अर्थ है– कान और वेध का अर्थ छेदन से है। इस प्रकार कान छेदन की क्रिया ‘कर्णवेध’ के नाम से जाना जाता है।

कर्णवेध संस्कार -

मुहूर्तचिन्तामणि में कर्णवेध मुहूर्त्त –

हित्वैतांश्चैत्रपौषावमहरिशयनं जन्ममासं च रिक्तां
युग्माब्दं जन्मतारामृतुमुनिवसुभि: सम्मिते मास्यथो वा।

जन्माहात्सूर्यभूपैः परिमितदिवसे ज्ञेज्यशुक्रेन्दुवारेऽ।
थौजाब्दे विष्णुयुग्मादितिमृदुलघुभैः कर्णवेधः प्रशस्तः।।

अर्थ है कि - चैत्र,पौष, तिथिक्षय, हरिशयन काल (आषाढ़ शुक्ल एकादशी (विष्णुशयनी) से कार्तिक शुक्ल 11 प्रबोधिनी एकादशी पर्यन्त 4 मास) जन्म मास, रिक्ता तिथि 4,9,14, समवर्ष एवं जन्म संज्ञक प्रथम तारा इन सबको छोड़कर जन्म से छठें, सातवें, आठवें मासों में अथवा जन्म से 12 वें 16 वें दिनों में बुध, गुरू, शुक्र और सोमवारों में विषम वर्षों में श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) एवं लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित) नक्षत्रों में कर्णवेध शुभ होता है।

विमर्शः - जन्म मास के नाम से प्रायः चैत्रादि जन्म मास ग्रहण किया जाता है। अर्थात् चैत्रादि जिस मास में जन्म हो उसे ही '**जन्म मास**' कहा जाता है। परन्तु शुभाशुभ विवेक में जन्म से 30 दिन के समय को ही जन्म मास कहा जाता है तथा इन्हीं 30 दिनों को शुभ कार्यों में वर्जित किया गया है। यथा –

आरभ्य जन्मदिवसं यावत्त्रिंशदिनं भवेत्।
जन्ममासः स विज्ञेयो गर्हितः सर्वकर्मसु।।

शुभ कार्यों में जन्म मास का निषेध व्यास द्वारा –

यो जन्ममासे क्षुरकर्म यात्रां कर्णस्य वेधं कुरूते हि मोहात्।
मूढः स रोगी धनपुत्रनाशं प्राप्नोति गूढं निधनं तदाशु।।

बालक के दोनों कानों में छेद करवाना आजकल पुत्रों के विषय में प्रचलित है। हमारे विचार से इसका वैज्ञानिक तथ्य भी कुछ होगा ही। फिर छेद करवाने के बाद यदि उसमें बालियॉं या कुण्डलादि न पहने जायें तब वह किया हुआ छेद भी स्वयं ही भर जाता है। आचार्य वृहस्पति इसका सबसे बड़ा प्रयोजन स्वास्थ्य रक्षा ही मानते है। कहा जाता है कि इसे करवाने से हर्निया की सम्भावानायें समाप्त हो जाती है।

सम वर्ष को छोड़कर अर्थात् विषम वर्षों में या प्रथम वर्ष में 6,7,8 वें मास में यह संस्कार करना चाहिये। उसमें भी जन्म मास को छोड़ना चाहिये। रिक्ता तिथि, जन्म मास, जन्म नक्षत्र , क्षयतिथि, चैत्र, पौष, व अधिक मास को छोड़कर देव उठने के बाद करवाना चाहिये। शुभ वारों में पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, अनुराधा, हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, नक्षत्रों में करना चाहिये। लग्न शुद्धि पूर्ववत् देखकर विशेषतया 2,7,9,12 लग्नों में लग्नेश या गुरू लग्न पर दृष्टि या योग रखे तब कर्णवेध करना चाहिये।

लड़के का दायॅा कान व लड़की का बायॅा कान पहले छेदन करन चाहिये। लड़की के नाक में भी इसी समय छेदन करना उपयुक्त है। वेधन के बाद तीसरे दिन वेध स्थान को गर्म पानी से धानी चाहिये।

कर्णवेधे लग्नशुद्धि: -

संशुद्धे मृतिभवने त्रिकोणकेन्द्रत्रयायस्थै: शुभखचरै: कवीज्यलग्ने।
पापाख्यैररिसहजायगेहसंस्थैर्लग्नस्थे त्रिदशगुरौ शुभावह: स्यात्।।

अर्थ – लग्न से अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर केन्द्र 1,4,7,10 त्रिकोण 5,9 तृतीय और एकादश भावों में शुभग्रहों के स्थित रहने पर शुक्र और गुरू के लग्नों वृष, तुला, धनु, मीन के दोनों दिशाओं में उदय – अस्त के बाद एवं पहले 15–15 दिनों तक रहती है। अर्थात् उदय के बाद 15 दिन तक गुरू की बाल्यावस्था तथा अस्त के पूर्व 15 दिनों तक वृद्धावस्था होती है।

विमर्श: - ग्रहों का उदय – अस्त होना मनुष्य की दृष्टि से ओझल होना व्यक्त करता है। वस्तुत: सभी ग्रह सभी काल में उदित रहते हैं। स्थानभेद एवं सूर्य के समीप्य से इनका उदयास्त प्रतीत होता है। सूर्य सिद्धान्त में लिखा है – '**सूर्येणास्तमनं सह**'।।

अर्थात् सूर्य के साथ होने पर ग्रह अस्त होता है। गुरू और शुक्र के उदय और अस्त का मुहूर्त की दृष्टि से विशेष महत्व है। अत: इनके उदय अस्त का विवरण ग्रहलाघव के मतानुसार प्रस्तुत है –

शुक्र पूर्व दिशा में अस्त होने के 2 मास बाद पश्चिम से उदित होता है तथा उदय से 8 मास 22 दिन 30 घटी पर पश्चिम में अस्त, अस्त से 7 दिन 30 घटी बाद पुन: पूर्व में उदय तथा उदय से 8 मास 22 दिन 30 घटी बाद पुन: पूर्व में अस्त होता है। इसी प्रकार गुरू – अस्त होने के 1 मास उदय, तथा उदय से लगभग 12 मास 15 दिन बाद अस्त होता है।

अन्नप्राशन संस्कार –

आचार्य रामदैवज्ञ ने मुहूर्त चिन्तामणि में अन्नप्राशन मुहूर्त को निम्न प्रकार से कहा है –

रिक्तानन्दाष्टदर्शं हरिदिवसमथो सौरिभौमार्कवारान्।
लग्नं जन्मर्क्षलग्नाष्टमगृहलवगं मीनमेषालिकं च।।
हित्वा षष्ठात्समे मास्यथ हि मृगदृशां पंचमादोजमासे।
नक्षत्रै: स्यात् स्थिराख्यै: सुमृदु लघु चरैर्बालकान्नाशनं सत्।।

रिक्ता (4,9,14) नन्दा (1,6,11) अष्टमी, अमावस्या, द्वादशी तिथियों को शनिवार, भौमवार, एवं रविवार को जन्मलग्न, जन्म नक्षत्र, जन्म लग्न से अष्टम भाव में स्थित राशि के नवमांश तथा मीन, मेष और वृश्चिक लग्नों को छोड़कर जन्म समय से छठे मास से आरम्भ कर विषम मासों में स्थिर संज्ञक (उ0 फा0 , उ0षा0, उ0भा0, रोहिणी,) मृदुसंज्ञक (मृग, रेवती, चित्रा, अनुराधा) लघुसंज्ञक

(हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) एवं चर संज्ञक (स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) नक्षत्रों में बालकों का अन्नप्राशन करना चाहिये।

अन्नप्राशन में लग्नशुद्धि –

केन्द्रत्रिकोणसहजेषु शुभै: खशुद्धे लग्ने त्रिलाभरिपुगैश्च वदन्ति पापै:।
लग्नाष्टषष्ठरहितं शशिनं प्रशस्तं मैत्राम्बुपानिलजनुर्भमसच्च केचित्॥

अर्थ - केन्द्र (1,4,7,10) , त्रिकोण (5,9) एवं तृतीय भावों में शुभग्रह स्थित हों, लग्न से दशम भाव शुद्ध हो तृतीय, एकादश एवं षष्ठ भावों में पापग्रह गये हों तथा लग्न षष्ठ एवं अष्टम चन्द्रमा से रहित हो (अर्थात् 1,6,8 भावों को छोड़कर शेष भावों में चन्द्रमा हो तो) अन्नप्राशन शुभ होता है। बालक को प्रथम बार अन्न की बनी चीज खिलाने अर्थात् ठोस अन्न का आहार प्रथम बार देने का नाम अन्नप्राशन है। प्राचीन परम्परानुसार षष्ठ मास से उपर सम मास में पुत्र का तथा पाँचवें मास से आगे विषम मास में यथावसर कन्या का अन्नप्राशन होना चाहिये। उसमें भी बालक को चन्द्रबल शुभ होने पर शुक्ल पक्ष रहे, यह आवश्यक है।

अत: पुत्र का 6,8,10,12 मासों में व पुत्री का 5,7,9,11 मासों में अन्न प्राशन करें। तिथियाँ रिक्ता, नन्दा, अमावस्या, द्वादशी व अष्टमी को छोड़कर शेष में से कोई लेनी चाहिये। नक्षत्र मृदु, लघु, चर स्थिर संज्ञक हों, ऐसा विचार कर लें। मीन, मेष वृश्चिक लग्न को व जन्म या राशि से अष्टम लग्न व नवमांश को छोड़कर शेष लग्नों में पूर्ववत् लग्न शुद्धि देखकर शुभ वारों में अन्न प्राशन करायें । इस संस्कार में दशम भाव में भी कोई ग्रह लग्न कुण्डली में न हो यह आवश्यक है। प्रयोग पारिजात में कहा गया है –

दशमस्थानगान् सर्वान् वर्जयेन्मतिमान्नर:।
अन्नप्राशनकृत्येषु मत्युक्लेशभयावहान्॥

अन्न प्राशन के समय सिर की टोपी हटा लें तथा दक्षिण की ओर मुख न करवायें।

शिरोवेष्टस्तु यो भुक्ते दक्षिणाभिमुखस्तु य:।
वामपादकर: स्थित्वा तद्वै रक्षांसि भुजते॥

अत: सामान्यतया बड़े लोगों को भी सिर खुला रख कर, पैरों को धोकर अपने हाथ व बायें पैर न झुकते हुये दक्षिण के अतिरिक्त दिशा में मुख करके भोजन करना चाहिये।

शास्त्र से लोक परम्परा बलवती होती है। आजकल तो डॉक्टरों की सलाह पर चौथे मास में ही अन्न खिलाना प्रारम्भ कर देते है। अत: पुत्र के सन्दर्भ में 4,6,8,10,12 एवं कन्या के विषय में 3,5,7 आदि मास भी रख लें तथा पूर्ववत् मुहूर्त्त विचार लेना चाहिये इससे कोई हानि नहीं होगी।

4.4 चूड़ाकर्म मुहूर्त

आचार्य रामदैवज्ञ ने संस्कार प्रकरण में चूड़ाकर्म मुहूर्त को इस प्रकार बतलाया है –

चूडा वर्षात्तृतीयात्प्रभवति विषमेऽष्टार्करिक्ताद्यषष्ठी।
पर्वोनाहे विचैत्रोदगयनसमये ज्ञेन्दुशुक्रेज्यकानाम् ।।
वारे लग्नांशयोश्चास्वभनिधनतनौ नैधने शुद्धियुक्ते।
शाक्रोपेतैर्विमैत्रैर्मृदुचरलघुभैरायषट्त्रिस्थपापैः।।

अर्थ - जन्मकाल या आधान काल से तीसरे वर्ष से विषम वर्षों में अष्टमी, द्वादशी, रिक्ता 4,9,14 प्रतिपदा, षष्ठी एवं पर्वों को छोड़कर शेष तिथियों में चैत्र मास को छोड़कर शेष उत्तरायण के मासों में, बुध, चन्द्र, शुक्र और गुरू वासरों में तथा इन्हीं ग्रहों के लग्नों और नवमांशों में अपनी राशि या लग्न से अष्टम राशि के लग्न को छोड़कर, तथा अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर ज्येष्ठा से युक्त और अनुराधा से रहित मृदु –चर–लघु संज्ञक नक्षत्रों में, लग्न से 11,6,3 भवनों में पापग्रहों के रहने पर चूड़ाकर्म शुभ होता है।

बोध प्रश्न -

1. चूड़ाकर्म का अर्थ है?
   क.मुण्डन संस्कार ख. कर्णवेध संस्कार ग. अन्नप्राशन संस्कार घ. व्रतबन्ध संस्कार
2. विष्णुशयन आरम्भ होता है –
   क.आषाढ़ कृष्ण एकादशी से ख. आषाढ़ शुक्ल एकादशी से ग. आषाढ़ शुक्ल तृतीया से घ. आषाढ़ शुक्ल पंचमी से
3. चर संज्ञक नक्षत्र है?
   क.स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा ख. स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा
   ग. स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, पू0भा0 घ. स्वाति, पुनर्वसु, मृगशिरा, रेवती
4. निम्न में रिक्ता संज्ञक तिथियाँ है?
   क. 1,11,6 ख. 2,7,12 ग. 3,8,13 घ. 9,4,14
5. शुक्र पूर्व दिशा में अस्त होने के कितने मास बाद पश्चिम से उदित होता है?
   क. 2 ख. 4 ग. 6 घ. 3
6. लघुसंज्ञक नक्षत्र कौन-कौन से है?
   क. हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित ख. पुष्य, हस्त, रेवती, धनिष्ठा ग. भरणी, रोहिणी, मृगशिरा घ. चित्रा, हस्त, स्वाती एवं अनुराधा

विमर्श: - मुण्डन संस्कार के लिये मनु ने प्रथम और द्वितीय वर्ष में भी बतलाया है। यथा –

चूड़ाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मत:।

प्रथमेऽब्दे द्वितीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात्।।

उक्त श्लोक में जन्म नक्षत्र का उल्लेख नहीं किया गया है जब कि प्राय: सभी शुभ कार्यों में जन्म नक्षत्र का निषेध किया गया है। कश्यप के मतानुसार अन्नप्राशन, मुण्डन, व्रतबन्ध और राज्याभिषेक में जन्म नक्षत्र ग्राह्य है तथा अन्य शुभ कार्यों में त्याज्य है –

नवान्नप्राशने चौले व्रतबन्धेऽभिषेचने।

शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभं त्वन्यकर्मणि।।

चौलकर्मणि केन्द्रस्थग्रहाणां फलम् –

क्षीणचन्द्रकुजसौरिभास्करै मृत्युशस्त्रमृतिपङ्गगुताज्वरा:।

स्यु: क्रमेण बुधजीवभार्गवै: केन्द्रगैश्च शुभमिष्टतारया।।

अर्थ - केन्द्र स्थानों में क्षीण चन्द्रमा, मंगल शनि और सूर्य के जाने पर क्रम से मृत्यु, शास्त्र घात से मृत्यु, पंगुत्व एवं ज्वर होता है। अर्थात् मुण्डन के समय केन्द्र में क्षीणचन्द्रमा हो तो मृत्यु, मंगल हो तो शस्त्र के आघात से मृत्यु, शनि हो तो लगड़ापन तथा सूर्य हो तो ज्वर होता है। यदि बुध, गुरू और शुक्र केन्द्र स्थानों में हों तथा शुभ तारा हों तो मुण्डन शुभ होता है।

गर्भिण्यां मातरि चौलकर्म निषेध: -

पञ्चमासाधिके मातुर्गर्भे चौल शिशोर्न सत्।

पञ्चवर्षाधिकस्येष्टं गर्भिण्यामपि मातरि।।

अर्थ – मुण्डन के समय यदि माता गर्भवती हो और गर्भ पाँच मास से अधिक का हो तो बालक का मुण्डन संस्कार शुभ नहीं होता। अर्थात् 5 मास से अल्पकाल का गर्भ हो तो मुण्डन हो सकता है। यदि बालक की आयु 5 वर्षों से अधिक हो गई हो तो माता के गर्भवती होने पर भी मुण्डन हो सकता है।

मुण्डन संस्कार का सीधा सम्बन्ध बालक के मानसिक विकास से है। यदि अल्पविकसित या उच्छृंखल मति बालक का आठ से दस बार मुण्डन संस्कार करा दिया जाये तो उसकी बुद्धि तीव्र होती है ऐसा विश्वास किया जाता है। ऋषियों ने इसे प्रधान संस्कारों में से एक माना है तथा आधुनिक काल में भी यह संस्कार प्रचलित है। इसका प्रयोजन आयुष्य व बुद्धि वृद्धि ही बताया गया है।

मुण्डन संस्कार का काल गर्भाधान या जन्म से विषम वर्षों में करना बताया गया है। गर्भाधान से समय गणना के लिये जन्म से गत वर्षों में 9 मास और जोड़ने से गर्भाधान से आयु वर्ष आ जाते है। फिर

भी जन्म से विषम वर्षों यथा 3,5,7 आदि वर्षों में मुण्डन करना बताया गया है। कन्या के लिये इसी प्रकार सम वर्ष ग्रहण करना चाहिये। लेकिन मनु के मत से लड़के के लिये एक वर्ष के भीतर भी मुण्डन कराया जा सकता है।

यदि इन सब कालों का अतिक्रमण हो जाये तो अपनी परम्परानुसार यज्ञोपवीत के समय में भी मुण्डन कराया जा सकता है। लेकिन आजकल जब द्विजातियों में भी यज्ञोपवीत संस्कार नामचारे के लिये विवाह के समय ही कराया जाने लगा है तब उस समय मुण्डन करवाना सर्वथा अव्यावहारिक है, क्योंकि जन्म के बाल तब तक नहीं रह सकते है। अत: पहले वर्ष में या तदुपरान्त विषम वर्ष में चौलकर्म कराना चाहिये, यही मार्ग प्रशस्त है। इसमें भी प्रथम व तीसरा वर्ष प्राय: बहुत से ऋषियों ने श्रेष्ठ माना है।

समय शुद्धि के लिये बड़ी सीधी सी बात है कि **'माघदि पंचके चौलं हित्वा क्षीणं विधुं मधुम्'**। अर्थात् उत्तरायण में चैत्र रहित माघादि पाँच मासों में, क्षीण चन्द्रमा को छोड़कर मुण्डन कराना चाहिये। अत: माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ में कृष्ण पक्ष की दशमी से पूर्व तथा शुक्ल द्वितीया के बाद मुण्डन कराना चाहिये। फिर भी शुक्ल पक्ष को प्रधान माना जाता है। इनमें भी रिक्ता 4,9,14 तिथियों व अष्टमी, द्वादशी, षष्ठी तिथि को छोड़कर मुण्डन होगा। अत: 2,3,5,7,10,11,13 तिथियाँ ग्राह्य है।

नक्षत्रों में मुण्डन करानें का फल

नक्षत्र	फल	नक्षत्र	फल	नक्षत्र	फल
अश्विनी	तुष्टि	**मघा**	धननाश	**मूल**	समूल नाश
भरणी	मृत्यु	**पू0फा0**	बहुरोग	**पू0षा0**	समूल नाश
कृत्तिका	क्षय	**उ0फा0**	रोगनाश	**उ0षा0**	शुभ
रोहिणी	रोगनाशक	**हस्त**	तेजोवृद्धि	**श्रवण**	सौन्दर्य
मृगशिरा	सौभाग्य	**चित्रा**	सौभाग्य	**धनिष्ठा**	आयुवृद्धि
आर्द्रा	धननाश	**स्वाती**	दु:खनाश	**शतभिषा**	बलवृद्धि
पुनर्वसु	पराक्रम	**विशाखा**	विनाश	**पू0भा0**	मृत्यु
पुष्य	धन व मान	**अनुराधा**	मित्र विरोध	**उ0भा0**	सुख
श्लेषा	शरीर कष्ट	**ज्येष्ठा**	ऐश्वर्य नाश	**रेवती**	अतिवृद्धि

विशेष – ज्येष्ठ मास में ज्येष्ठ पुत्र का मुण्डन नहीं करना चाहिये। जो बातें मुण्डन में त्याज्य है, वे ही बातें क्षौर में भी विचारणीय है। लेकिन किसी आचार्य का मत यह भी है कि रोजगार की मांग से जहॉ प्रतिदिन क्षौर कर्म करना हो तो मुहूर्त्त का विचार नहीं करना चाहिये। अथवा राजा की आज्ञा से, यज्ञ में, मृत्यु में कारागार से छूटने पर, तीर्थ में कभी भी क्षौर व मुण्डन आदि करवाया जा सकता है।

क्षौरमुहूर्त्त -

> **दन्तक्षौरनखक्रियाऽत्र विहिता चौलोदिते वारभे।**
> **पातंग्याररवीन्विहाय नवमं घस्रं च सन्ध्यां तथा।।**
> **रिक्तां पर्व निशां निरासनरणग्रामप्रयाणोद्यत।**
> **स्नाताभ्यक्तकृताशनैर्नहि पुनः कार्या हितप्रेप्सुभिः।।**

अर्थ – शनि, भौम और रविवार, क्षौर दिन से 9 वाँ दिन, प्रात: एवं सायं सन्ध्या, रिक्ता 4,9,14 तिथि, पर्वकाल एवं रात्रिकाल को छोड़कर मुण्डन मुहूर्त्त में बताये गये दिन और नक्षत्रों में दन्तप्रक्षालन, बाल बनवाना तथा नाखून कटवाना चाहिये। अपना हित चाहने वाले व्यक्तियों को आसन के बिना रण अथवा ग्राम में यात्रा के लिये तैयार होने पर अभ्यंग तथा भोजन कर लेने के बाद

अभ्यास प्रश्न -2

1. मृगशिरा नक्षत्र में मुण्डन कराने का फल क्या है?
   क. ऐश्वर्य प्राप्ति ख. सुख ग. सौभाग्य प्राप्ति घ. पराक्रम
2. निम्न में केन्द्र स्थान हैं –
   क. 2,5,8,11 ख. 5,9,11 ग. 1,4,7,10 घ. 3,6,9,12
3. उत्तराफाल्गुन नक्षत्र में चूड़ाकर्म कराने से क्या होता है?
   क. शोकनाश ख. रोगनाश ग. बुद्धिनाश घ. ऐश्वर्यवृद्धि
4. घस्र का शब्दार्थ है-
   क. दिन ख. रात ग. मध्याह्न घ. सायं

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि भारतीय वैदिक सनातन परम्परा के अन्तर्गत 'कर्णवेध' संस्कार एक महत्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। प्राचीनकाल में इसका प्रचलन अत्यधिक था। सम्प्रति यह क्षेत्र विशेष में भी दिखलाई पड़ता है। 'कर्ण' का शाब्दिक अर्थ है– कान और वेध का अर्थ छेदन से है। इस प्रकार कान छेदन की क्रिया 'कर्णवेध' के नाम से जाना जाता है।

चैत्र,पौष, तिथिक्षय, हरिशयन काल (आषाढ़ शुक्ल एकादशी (विष्णुशयनी) से कार्तिक शुक्ल 11 प्रबोधिनी एकादशी पर्यन्त 4 मास) जन्म मास, रिक्ता तिथि 4,9,14, समवर्ष एवं जन्म संज्ञक प्रथम तारा इन सबको छोड़कर जन्म से छठें, सातवें, आठवें मासों में अथवा जन्म से 12 वें 16 वें दिनों में बुध, गुरू, शुक्र और सोमवारों में विषम वर्षों में श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा) एवं लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित) नक्षत्रों में कर्णवेध शुभ होता है।

जन्म मास के नाम से प्राय: चैत्रादि जन्म मास ग्रहण किया जाता है। अर्थात् चैत्रादि जिस मास में जन्म हो उसे ही **'जन्म मास'** कहा जाता है। परन्तु शुभाशुभ विवेक में जन्म से 30 दिन के समय को ही जन्म मास कहा जाता है तथा इन्हीं 30 दिनों को शुभ कार्यों में वर्जित किया गया है। रिक्ता (4,9,14) नन्दा (1,6,11) अष्टमी, अमावस्या, द्वादशी तिथियों को शनिवार, भौमवार, एवं रविवार को जन्मलग्न, जन्म नक्षत्र, जन्म लग्न से अष्टम भाव में स्थित राशि के नवमांश तथा मीन, मेष और वृश्चिक लग्नों को छोड़कर जन्म समय से छठे मास से आरम्भ कर विषम मासों में स्थिर संज्ञक (उ0 फा0 , उ0षा0, उ0भा0, रोहिणी,) मृदुसंज्ञक (मृग, रेवती, चित्रा, अनुराधा) लघुसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित्) एवं चर संज्ञक (स्वाति, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा) नक्षत्रों में बालकों का अन्नप्राशन करना चाहिये। जन्मकाल या आधान काल से तीसरे वर्ष से विषम वर्षों में अष्टमी, द्वादशी, रिक्ता 4,9,14 प्रतिपदा, षष्ठी एवं पर्वों को छोड़कर शेष तिथियों में चैत्र मास को छोड़कर शेष उत्तरायण के मासों में, बुध, चन्द्र, शुक्र और गुरू वासरों में तथा इन्हीं ग्रहों के लग्नों और नवमांशों में अपनी राशि या लग्न से अष्टम राशि के लग्न को छोड़कर, तथा अष्टम भाव के शुद्ध रहने पर ज्येष्ठा से युक्त और अनुराधा से रहित मृदु – चर – लघु संज्ञक नक्षत्रों में, लग्न से 11,6,3 भवनों में पापग्रहों के रहने पर चूड़ाकर्म शुभ होता है।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

कर्णवेध – संस्कृत में कान को कर्ण कहते हैं तथा कान के छेदन की क्रिया कर्णवेध के नाम से जाना जाता है। प्रमुख षोडश संस्कारों में यह भी एक संस्कार है।

अन्नप्राशन – शिशु को प्रथम बार अन्न का प्राशन (खिलाना) कराने की क्रिया अन्नप्राशन के नाम से जाना जाता है। बालक को छठें तथा बालिका को पाँचवें मास में यह संस्कार कराया जाता है।

चूड़ाकर्म – चूड़ाकर्म से तात्पर्य है – मुण्डन। भारतीय वैदिक सनातन परम्परा के प्रमुख षोडश संस्कारों में एक संस्कार 'चूड़ाकर्म' है।

क्षौर – क्षौर का अर्थ है – मुण्डन। अथवा केश कटाने की क्रिया भी क्षौर अर्थ में ही बोधगम्य है।

रिक्ता – तिथियों में नवमी, चतुर्थी एवं चतुर्दशी को रिक्ता संज्ञक तिथि कहा जाता हैं।

दर्श – दर्श का अर्थ है – अमावस्या।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1.क 2. ख 3. क 4. घ 5. क 6. क

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. ग 2. ग 3. ख 4. क

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि - मूल लेखक- रामदैवज्ञ, टिका – प्रोफेसर रामचन्द्रपाण्डेय:

2. मुहूर्त्तपारिजात – पं. सोहन लाल व्यास

3. हिन्दू संस्कार पद्धति – डॉ0 राजबलि पाण्डेय

4. मुहूर्त्तचिन्तामणि– पीयूषधारा टिका।

5. मुहूर्त्तमार्तण्ड – नारायण दैवज्ञ।

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि
2. हिन्दू संस्कार पद्धति
3. वीरमित्रोदय
4. संस्कार विमर्श
5. मुहूर्त्तचिन्तामणि – पीयूषधारा टिका

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कर्णवेध संस्कार से आप क्या समझते है?
2. अन्नप्राशन संस्कार का वर्णन कीजिये।
3. चूड़ाकर्म का परिचय दीजिये।
4. सम्प्रति अन्नप्राशन संस्कार का महत्व बतलाइये।
5. क्षौरकर्म का मुहूर्त्त लिखिये।

इकाई - 5 अक्षराम्भ, विद्यारम्भ, उपनयन एवं विवाह मुहूर्त्त

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई MAJY-103 के तृतीय खण्ड की पाँचवी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – अक्षराम्भ, विद्यारम्भ, उपनयन एवं विवाह मुहूर्त्त। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने कर्णवेध, अन्नप्राशन एवं चूड़ाकर्म संस्कारों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में संस्कारों के अन्तर्गत अक्षराम्भ, विद्यारम्भ, उपनयन एवं विवाह मुहूर्त्त का अध्ययन करने जा रहे हैं।

बालक को विद्यारम्भ करने से पूर्व उसका अक्षराम्भ संस्कार शुभ मुहूर्त्तों के आधार पर किया जाता है, तत्पश्चात् विद्यारम्भ संस्कार द्वारा उसे विद्याप्राप्ति हेतु प्रवृत्त किया जाता है। उपनयन में उसका यज्ञोपवीत संस्कार होता है तथा विद्याप्राप्ति के पश्चात् गृह लौटने पर उसका विवाह संस्कार कर उसे गृहस्थाश्रम में प्रवेश कराया जाता है।

इस इकाई में अक्षराम्भ, विद्यारम्भ, उपनयन एवं विवाह मुहूर्त्तों का हम ज्ञान प्राप्त करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि

- अक्षराम्भ संस्कार किसे कहते है।
- विद्यारम्भ संस्कार कब किया जाता हैं।
- उपनयन संस्कार का क्या महत्व है।
- विवाह संस्कार कैसे किया जाता है।
- जन्मोपरान्त किए जाने वाले संस्कार कौन-कौन से है।

5.3 अक्षराम्भ एवं विद्यारम्भ संस्कार परिचय

भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में जातक के जन्म के पूर्व तथा जन्मोपरान्त विविध संस्कारादि क्रिया का विधान कहा गया है। इस इकाई में जातक के जन्मोपरान्त उसके अक्षराम्भ, विद्यारम्भ, उपनयन एवं विवाह संस्कार के बारे में अध्ययन करेंगे। अक्षराम्भ एवं विद्यारम्भ संस्कार द्वारा जातक का विद्याध्ययन में प्रवेश कराया जाता है। तत्पश्चात् उपनयन संस्कार कर उसे वेदाध्ययन के लिए गुरुकुल में भेजा जाता था। सम्प्रति इन संस्कारों का समाज में उत्तरोत्तर ह्रास परिलक्षित होता है। तथापि आज भी सनातन परम्परा को मानने वाले लोग अपने सन्तान का उक्त संस्कार अवश्य करते हैं। 'मुहूर्त्तचिन्तामणि' ज्योतिष शास्त्र का मुहूर्त्त निर्धारण हेतु प्रमुख ग्रन्थ माना गया है। इस ग्रन्थ के संस्कार प्रकरण में अक्षराम्भ एवं विद्यारम्भ का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

मूल श्लोक –

गणेश विष्णु वाग्रमा: प्रपूज्य पंचमाब्दके।
तिथौ शिवार्कदिकद्विषटशरत्रिके रवावुदक्।।
लघुश्रवोऽनिलान्त्यभादितीशतक्षमित्रभे।
चरोनसत्तनौ शिशोर्लिपिग्रह: सतां दिने।।

अर्थ – गणेश, विष्णु, सरस्वती और लक्ष्मी का विधिवत् पूजन कर पाँचवें वर्ष में, एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीया, षष्ठी, पंचमी एवं तृतीया तिथियों में सूर्य के उत्तरायण रहने पर लघुसंज्ञक (हस्त अश्विनी, पुष्य, अभिजित् श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु , आर्द्रा, चित्रा तथा अनुराधा) नक्षत्रों में चर लग्नों (1,4,7,10) को छोड़कर शुभग्रहों के लग्नों (2,3,4,6,7,9,12) में शुभग्रहों के (चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार और शुक्रवार) वारों में बालकों को अक्षरारम्भ कराना चाहिये। बालक को पाँच वर्ष की अवस्था में सम्प्राप्त हो जाने पर अधोवर्णित विशुद्ध दिन को विघ्नविनायक, शारदा, लक्ष्मीनारायण, गुरू एवं कुलदेवता की पूजा के साथ उसे लिखने पढ़ने का श्रीगणेश करवाना चाहिये।

मास – कुम्भ संक्रान्ति वर्जित उत्तरायण मास।

तिथि – शुक्ल 2,3,5,7,10,11,12।

वार - चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवा ।

नक्षत्र – अश्विनी, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, अभिजित, श्रवण एवं रेवती।

लग्न – 2,3,6,9,12 लग्नराशि। अष्टम भाव ग्रहरहित होना चाहिये।

विशेष – उपर्युक्त देवताओं के नाम से घृत हवन करे तथा ब्राह्मणों को दक्षिणादि देकर सन्तुष्ट करना चाहिये। बालक का चन्द्र – बुध बल अपेक्षित है।

विद्यारम्भ संस्कार –

मृगात्कराच्छ्रुतेस्त्रयेऽश्विमूलपूर्विकात्रये।
गुरूद्वयेऽर्कजीववित्सितेऽह्नि षट्शरत्रिके।।
शिवार्कदिग्द्विके तिथौ ध्रवान्त्यमित्रभे परै:।
शुभैरधीतिरूत्तमा त्रिकोणकेन्द्रगै: स्मृता।।

अर्थ – मृगशिरा, हस्त और श्रवण से तीन – तीन नक्षत्र अर्थात् मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा, पुष्य से दो अर्थात् पुष्य आश्लेषा नक्षत्रों में, रवि, गुरू, बुध और शुक्र वासरों में, षष्ठी, पंचमी, तृतीया, एकादशी, द्वादशी,

दशमी एवं द्वितीया तिथियों में शुभग्रहों के केन्द्र और त्रिकोण 1,4,7,10,5,9 भावों में स्थित रहने पर कुछ विद्वानों के मतानुसार ध्रुवसंज्ञक तीनों उत्तरा, रोहिणी, रेवती और अनुराधा नक्षत्रों में भी विद्याध्ययन का आरम्भ करना शुभ होता है।

वर्णमाला गणितादि में बालक परिपक्व हो जाने पर भविष्यत् आजीविका प्रदात्री कोई विशेष या सर्वसामान्य विद्या का शुभारम्भ करना चाहिये। अप्रधान रूप से विद्यारम्भ मुहूर्त प्रकार निम्नलिखित है –

मास - फाल्गुन के अतिरिक्त उत्तरायणमास।

तिथि – 2,3,5,7,10,11,13 आदि शुक्लादि तिथियाँ।

वार – सूर्यवार, गुरूवार एवं शुक्रवार।

नक्षत्र – अश्विनी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, आश्लोषा, तीनों पूर्वा, हस्, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, एवं शतभिषा।

लग्न – 2,5,8 राशि लग्न जब केन्द्र त्रिकोण में शुभग्रह तथा 3,6,11 वें क्रूर ग्रह हों।

निर्देश – उपरोक्त मुहूर्त सामान्यत: प्रत्येक विद्या के शुभारम्भ में प्रयोज्य है, परन्तु विद्याविशेष के लिये कुछ प्रस्तावित परिवर्तनों की आवश्यकता समझकर यहॉ कुछ प्रचलित विद्याओं के मुहूर्त्तोदित विशेषांगो का उल्लेख किया गया है। इनमें अनुपस्थित तत्वों को विद्यारम्भ मुहूर्त के सदृश ही समझना चाहिये -

ज्योतिष गणितारम्भ मुहूर्त्त -

वार – बुधवार एवं गुरूवार।

नक्षत्र – रोहिणी, आर्द्रा, हस्त, चित्रा, अनुराधा, शतभिषा, पू0भा0 एवं रेवती।

व्याकरणारम्भ मुहूर्त्त –

वार – बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार

नक्षत्र – अश्विनी, रोहिणी, मृगऋ पुन0 ह0 चि0 स्वा0 वि0 अनु0।

न्यायशास्त्रारम्भ मुहूर्त्त –

वार – बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार

नक्षत्र – अश्विनी , रो0, पुन0, पु0, तीनों उत्तरा, स्वाती, श्र0 श0।

धर्मशास्त्रारम्भ मुहूर्त्त -

वार - बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार

नक्षत्र – अश्विनी, मृ0 पु0, ह0, चि0, स्वा0 अनु0, श्र0 ध0 श0 रे0 ।

संगीतारम्भ मुहूर्त -

वार – चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार एवं शुक्रवार। वाद्यारम्भ में रविवार भी

नक्षत्र – रो0 मृ0 पु0 तीनों उत्तरा, हस्त, अनु0 ज्ये0 ध0 शत0 रे0।

वेदमन्त्रारम्भ मुहूर्त -

मास – आश्विन

तिथि – 2,3,5,7,10,11,13 शु0

नक्षत्र – अश्विनी, मृ0, आ0, पुन0, श्ले, तीनों पूर्वा, ह0 चि0 स्वा0 श्र0 ध0 श0।

चित्रकलारम्भ मुहूर्त –

वार – चन्द्रवार, बुध, गुरू एवं शुक्र

नक्षत्र - अश्विनी, आ0, पुन0, ह0, चि0, स्वा0 अनु0, श्र0 रेवती।

बोध प्रश्न –

1. अक्षराम्भ संस्कार कब किया जाता है?

क. चौथे वर्ष में ख. पाँचवें वर्ष में ग. छठें वर्ष में घ. आठवें वर्ष में

2. विप्रों का यज्ञोपवीत संस्कार होता है।

क. जन्मकाल से पाँचवें या आठवें वर्ष में ख. जन्मकाल से तीसरे या चौथे वर्ष में

ग. जन्मकाल से छठें या आठवें वर्ष में घ. जन्मकाल से नवें या बारहवें वर्ष में

3. ज्योतिष गणितारम्भ मुहूर्त होता है।

क. बुध एवं शुक्र वारों में ग. रवि एवं सोम वारों में

ख. मंगल एवं शनि वारों में घ. गुरू एवं बुध वारों में

4. क्षत्रियों के लिये व्रतबन्ध शुभ होता है।

क. जन्मकाल से दूसरे या पॉचवें वर्ष में ख. जन्मकाल से तीसरे या चौथे वर्ष में

ग. जन्मकाल से छठें या ग्यारहवें वर्ष में घ. जन्मकाल से नवें या बारहवें वर्ष में

5. क्षिप्रसंज्ञक नक्षत्र है –

क. हस्त, अश्विनी, पुष्य ख. अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा ग. पुष्य, अभिजित, रोहिणी घ. कोई नही

5.4 उपनयन एवं विवाह मुहूर्त –

उपनयन का अर्थ है – यज्ञोपवीत संस्कार। वेदाध्ययन हेतु प्रवृत्त होने के लिए यह संस्कार अति

आवश्यक कहा गया है। प्राचीनकाल में बालक का उपनयन (यज्ञोपवीत) संस्कार करके उसे वेदाध्ययन के लिए गुरुकुल में भेजा जाता था। मुहूर्त्तचिन्तामणि में उपनयन मुहूर्त्त इस प्रकार कहा गया है -

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाऽष्टमे।
वर्षे वाप्यथ पंचमे क्षितिभुजां षष्ठे तथैकादशे।।
वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद् द्वादशे वत्सरे।
कालेऽथ द्विगुणे गते निगदिते गौणं तदाहुर्बुधा।।

अर्थ - गर्भाधन काल से अथवा जन्म काल से आठवें वर्ष में या पॉचवें वर्ष में, ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत संस्कार, छठें तथा ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियों का, तथा आठवें और बारहवें वर्ष में वैश्यों का यज्ञोपवीत संस्कार होता है। उक्त बताये गये काल से द्विगुणित समय व्यतीत हो जाने पर जो यज्ञोपवीत संस्कार होता है, उसे विद्वानों ने गौण सामान्य यज्ञोपवीत कहा है।

विमर्श: - विहित काल से दूगने समय तक भी व्रतबन्ध किया जा सकता है । परन्तु मुख्य काल और गौण काल व्यतीत हो जाने पर भी व्रतबन्ध न होने से मनुष्य को गायत्री का अधिकार समाप्त हो जाता है तथा वह संस्कारच्युत होता है। मनु ने कहा है –

अषोडशाद् ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते ।
आद्वाविंशाद् ब्रह्मवन्धोराचतुविंशतेर्विशः ।।
अत उर्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यपि गर्हिताः ।।

अपि च –

क्षिप्रध्रुवाहिचरमूलमृदुत्रिरौद्रेऽर्कविद्गुरूसितेन्दुदिने व्रतं सत् ।
द्वित्रीषुरूद्ररविदिक्प्रमिते तिथौ च कृष्णादिमत्रिलवकेऽपि न चापराह्ने ।।

क्षिप्रसंज्ञक (हस्त, अश्विनी, पुष्य), ध्रुवसंज्ञक (तीनों उत्तरा रोहिणी, आश्लेषा,), चरसंज्ञक (स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिष), मूल, मृदुसंज्ञक (मृगशिरा, रेवती, चित्रा), तीनों पूर्वा आर्द्रा नक्षत्रों में रवि, बुध, शुक्र और सोम वासरों में, 2,3,511,12,10 तिथियों मे शुक्लपक्ष में तथा कृष्णपक्ष में प्रथम त्रिभाग में उपनयन शुभ होता है। अपराह्न के पश्चात् उपनयन नहीं करना चाहिये।

विमर्श: - उक्त श्लोकों में नक्षत्र, तिथि और दिन का निर्देश किया गया है किन्तु मास का निर्देश नहीं किया गया है। कारण यह है कि चौलं राज्याभिषेको व्रतमपि शुभदं नैव याम्यायने स्यात।। दक्षिणायन का निषेध कर सौम्यायन आषाढ तक का व्रतबन्ध में ग्रहण किया गया है। कश्यप ऋषि के

वर्णनानुसार ऋतुओं का ग्रहण किया है –

ऋतौ वसन्ते विप्राणां ग्रीष्मे राज्ञां शरद्यथ।

विशां मुख्यं च सर्वेषां द्विजानां चोपनायनम्।।

साधारणं च मासेषु माघादिषु च पंचसु।

इस प्रकार ब्राह्मण का व्रतबन्ध चैत्र मास में भी प्रशस्त माना जाता है। ब्राह्मणों के लिये पुनर्वसु नक्षत्र एवं बुधवार दोनों ही निन्दित है।

उपनयन में ग्रहाणामशुभस्थानानि –

कवीज्य चन्द्र लग्नपा रिपौ मृतौ व्रतेऽधमा:।

व्ययेऽब्ज भार्गवौ तथा तनौ मृतौ सुते खला:।।

अर्थ – व्रतबन्ध में लग्न से छठें, आठवें, भाव में शुक्र, गुरू, चन्द्रमा, और लग्नेश अशुभ होते है तथा अशुभग्रह लग्न, अष्टम एवं पंचम भावों में अशुभ होते है।

उपनयन में लग्न शुद्धि –

व्रतबन्धेऽष्टषड्रिष्फवर्जिता: शोभना: शुभा:।

त्रिषडाये खला: पूर्णो गोकर्कस्थो विधुस्तनौ।।

अर्थ- व्रतबन्ध काल में लग्न से 6,8,12 भावों को छोड़कर शेष भावों में शुभग्रह 3,6,11 भावों में पापग्रह तथा लग्नस्थ पूर्ण चन्द्रमा वृष अथवा कर्क राशि में स्थित हो तो शुभ होता है।

उपनयन संस्कार –

इसी संस्कार का दूसरा नाम व्रतबन्ध या यज्ञोपवीत संस्कार भी है। उपनयन का अर्थ है – पास में ले जाना नयनस्य समीपं उपनयनम्। अर्थात् बालक को गुरूकुल में गुरू जी के पास ले जाना। व्रतबन्ध से तात्पर्य है कोई प्रतिज्ञा या संकल्प करना अर्थात् शिक्षा प्राप्ति का लक्ष्य लेकर चलना तथा यज्ञोपवीत का अर्थ है यज्ञों में सम्मिलित होने का अधिकार पाना। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गुरूकुल शिक्षा प्रणाली में गुरूकुल में व आजकल बड़े विद्यालय में जाने के समय यह संस्कार होना चाहिये। यज्ञोपवीत में तीन धागों के दो जोड़े रहते है। विवाहोपरान्त षटसूत्र व विवाह से पूर्व ब्रह्मचारी त्रिसूत्र ही धारण करते है। इसमें ऋषिगण, पितृऋण व देवऋण की सूचना मिलना बताया गया है। माता – पिता से जन्म मिला। इसीलिये पुत्र का मुख देखते ही पिता अपने पितृऋण से मुक्त हो जाता है –

जातमात्रकुमारस्य मुखमस्यावलोकयेत्।

पिता ऋणाद् विमुच्येत् पुत्रस्य मुखदर्शनात्।।

देवऋण, अर्थात् प्रकृति का ऋण, हवा, पानी, प्रकाश, तेज आदि जीवनदायी पदार्थों में सबका

हिस्सा है तथा वह हमें प्रकृति से उधार के रूप में मिला है। अत: उसे नष्ट, दुरूपयोग या प्रदूषित नहीं करना चाहिये तथा इन सब दैवी तत्वों के प्रति कृतज्ञता का भाव रखना चाहिये।

तीसरा ऋण ऋषिऋण है, जो हमें ऋषियों, मन्त्रद्रष्टाओं, चिन्तकों, मनीषियों, पूर्वज विचारकों व वैज्ञानिकों ने ज्ञान के रूप में दिया है , वह हमारे उपर ऋण है । अत: उसे पढ़कर, गुनकर, स्वयं अपने व्यवहार में उतारकर दूसरों को भी देना चाहिये । तभी ऋषि ऋण से मुक्त होती है । इन तीनों ऋणों का परिचय प्रत्येक समय मिलता रहे, यह बात यज्ञोपवीत की त्रिसूत्री से ज्ञात होती है । यह संस्कार भारतीय संस्कृति का प्राण है, इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये ।

जन्म या गर्भ से आठवें वर्ष में ब्राह्मणों को ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियों को तथा बारहवें वर्ष में वैश्यों को यज्ञोपवीत करवाना चाहिये । यदि इनमें न हो सके तो इनके दुगुने वर्षों में क्रमश: 16,22,24 वर्ष तक करें । यह चरम सीमा है । तदुपरान्त व्रात्य या पतित या संस्कार रहित होता है । माघादि पंचक मासों में अर्थात् उत्तरायण व देवों के उठने के समय विवाह के महीनों में ही यज्ञोपवीत करें ।

प्राय: मकर – कुम्भ का सूर्य व मीन – मेष का सूर्य अच्छा माना जाता है ऐसा भी एक मत है । कुछ लोग श्रावण मास की पूर्णिमा में भी रक्षाबन्धन के दिन ऋषि तर्पणानन्तर कुमार को यज्ञोपवीत धारण करा देते है, यह अनुचित मार्ग है । कृष्णपक्ष में शनिवार में, अनध्याय के दिन, प्राकृतिक उपद्रव होने पर, दोपहर बाद सन्ध्या समय में, क्षय तिथि होने पर भी न करें ।

हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् तीनों पूर्वा व उत्तरा, रोहिणी, आश्लेषा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, आर्द्रा नक्षत्रों में गोचर प्रकरण में बताया गया वेध न होने पर सूर्य, चन्द्र, गुरूबल शुद्ध होने पर गुरू – शुक्र के उदय काल में लग्नशुद्धि पूर्वक यज्ञोपवीत संस्कार करना चाहिये ।

अभिजिन्मुहूर्त्त ज्ञान –

सभी स्थानों में जब लग्न शुद्धि न बने तब अभिजिन्मुहूर्त्त में कार्य करने से दोष नहीं होता है । स्थानीय मध्यान्ह काल अर्थात् स्थानीय समयानुसार 12 बजने से 24 मिनट पूर्व व 24 मिनट के पश्चात् तक कुल दो घड़ी या 48 मिनट का अभिजिन्मुहूर्त्त होता है ।

यदि अभीष्ट वर्ष में गुरू – शुक्रास्तदोष होने से समय शुद्धि न बने तब मीन संक्रान्ति में सौर चैत्र में यज्ञोपवीत किया जा सकता है ।

शुद्धिर्नविद्यते यस्य प्राप्ते वर्षेऽष्टमे यदि ।
चैत्रे मीनगते भानौ तस्योपनयनं शुभम् ।।

मुण्डन की तरह इसमें भी माता की गर्भावस्था, रजस्वलात्व एवं ज्येष्ठ मासादि का विचार करना

चाहिये।

विवाह मुहूर्त –

विवाह मानव जीवन का अभिन्न अंग है, जिसके सहारे मनुष्य अपने जीवन को सतत् सुचारू रूप से चला सकने में सक्षम होता है। यदि मानव का दाम्पत्य जीवन सुखमय होता है, तो उसके जीवन से जुड़े शेष कार्य भी व्यवस्थित रूप से संपादित होते रहता है।

मुहूर्त शास्त्र में मुख्य रूप से 'शुभ योग' निम्नलिखित हैं :- सिद्धि योग, अमृतसिद्धि योग, सर्वार्थसिद्धि योग, रविपुष्य योग, गुरुपुष्य योग, पुष्कर योग, द्वि-त्रिपुष्कर योग, राज योग, रवि योग तथा कुमार योग। मुहूर्त्त ग्रन्थों में विवाह के साथ-साथ नींव मुहूर्त, गृह प्रवेश, यात्रा आरंभ तथा जलाशय निर्माण प्रारंभ के मुहूर्त का वर्णन भी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त तिथि, वार, नक्षत्र आदि के संयोग से भी कतिपय मुहूर्त बनते हैं, जिनमें संस्कार एवं विशिष्ट कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्य किये जा सकते हैं। ऐसे मुहूर्त 'शुभ योग' कहलाते हैं।

विवाह के आठ भेद है –

ब्राह्म, दैव, प्राजापत्य, आर्ष, गान्धर्व, आसुर,राक्षस, एवं पिशाच। इनमें प्रथम चार प्रकार श्रेष्ठ है। गान्धर्व विवाह मध्यम हैं तथा शेष तीन प्रकार को अधम व निकृष्ट माना गया हैं।

विवाह मुहूर्त्त -

मूल, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, हस्त, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, स्वाति, मघा, रोहिणी, इन नक्षत्रों में ज्येष्ठ, माघ, फाल्गुन, वैशाख, मार्गशीर्ष, आषाढ़, इन महीनों में विवाह करना शुभ है। विवाह में कन्या के लिए गुरूबल वर के लिए सूर्यबल और दोनों के लिए चन्द्रबल का विचार करना चाहिए। प्रत्येक पंचांग में विवाह मुहूर्त्त लिखे जाते है। इनमें शुभ सूचक खड़ी रेखाएॅं और अशुभ सूचक टेढ़ी रेखाएॅं होती है। ज्योतिष में दस दोष बताये गये है । जिस विवाह के मुहूर्त्त में जितने दोष नहीं होते है, उतनी खड़ी रेखाएॅं होती है और दोषसूचक टेढ़ी रेखाएॅं मानी जाती है। सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त्त दस रेखाओं का होता है। मध्यम सात आठ रेखाओं का और जघन्य पॉच रेखाओं का होता है। इससे कम रेखाओं के मुहूर्त्त को निन्द्य कहते है।

विवाह में गुरूबल विचार-

वृहस्पति कन्या की राशि से नवम पंचम, एकादश, द्वितीय और सप्तम राशि में शुभ, दशम, तृतीय षष्ठ और प्रथम राशि में दान देने से शुभ और चतुर्थ, अष्टम, एवं द्वादश राशि में अशुभ होता है।

विवाह में चन्द्रबल विचार –

चन्द्रमा वर और कन्या की राशि में तीसरा छठा, सातवॉ, दसवॉ, ग्यारहवॉ शुभ पहला, दूसरा,

पाँचवाँ, नौवाँ दान देने से शुभ और चौथा, आठवॉ, बारहवॉ अशुभ होता है। विवाह में अन्धादि लग्न व उनका फल दिन में तुला और वृश्चिक राशि में तुला और मकर बधिर है तथा दिन में सिंह, मेष, वृष और रात्रि में कन्या , मिथुन, कर्क अन्ध संज्ञक है।

दिन में कुम्भ और रात्रि में मीन लग्न पंगु होते है। किसी- किसी आचार्य के मत से धनु, तुला एवं वृश्चिक ये अपराह्न में बधिर है। मिथुन, कर्क, कन्या ये लग्न रात्रि में अन्धे होते हैं। सिंह, मेष, एवं वृष लग्न ये दिन में अन्धे है और मकर , कुम्भ, मीन ये लग्न प्रात: काल दरिद्र दिवान्ध लग्न में हो तो कन्या विधवा, रात्रान्ध लग्न में हो तो सन्तति भरण, पंगु में हो तो धन नाश होता है।

विवाह लग्न विचार -

विवाह के शुभ लग्न तुला, मिथुन,कन्या, वृष व धनु है। अन्य लग्न मध्यम होते है।

लग्न शुद्धि – लग्न से १२ वें शनि, दसवें मंगल तीसरे शुक्र लग्न में चन्द्रमा और क्रूरग्रह अच्छे नहीं होते लग्नेश शुक्र - चन्द्रमा छठें और आठवें में शुभ नहीं होता है और सातवें में कोई भी ग्रह शुभ नहीं होता है।

ग्रहों का बल –

प्रथम, चौथे, पॉचवें, नौवें, दसवें स्थान में स्थित वृहस्पति सभी दोषों को नष्ट करता है। सूर्य ग्यारहवें स्थान में स्थित तथा चन्द्रमा सर्वोत्तम लग्न में स्थित नवमांश दोषों को नष्ट करता है। बुध लग्न, चौथे, पॉचवें, नौवें और दसवें स्थान में हो तो सौ दोषों को दूर करता है। यदि शुक्र इन्हीं स्थानों में वृहस्पति स्थित हो तो एक लाख दोषों को दूर करता है। लग्न का स्वामी अथवा नवमांश का स्वामी यदि लग्न, चौथे, दसवें, ग्यारहवें स्थान में स्थित हो तो अनेक दोषों को शीघ्र ही भस्म कर देता है।

विवाह से सम्बन्धित विभिन्न मुहूर्त –

वर वरण मुहूर्त –

वरवृत्तिं शुभे काले गीतवाद्यादिभिर्यत:।
ध्रुवभे कृतिका पूर्वा कुर्याद्वापि विवाहभे।।
उपवीतं फलं पुष्पं वसांसि विविधानि च।
देयं वराय वरणे कन्याभ्राता द्विजेन वा।।

शुभ मुहूर्त में गीत वाद्य से युक्त होकर ध्रुवसंज्ञक कृत्तिका, तीनों पूर्वा और विवाह में कहे हुए नक्षत्रों में, यज्ञोपवीत, फल–पुष्प तथा अनेक प्रकार के वस्त्र, रत्न आदि से युक्त होकर कन्या का भाई या ब्राह्मण वर का वरण तिलक करना चाहिए।

कन्या वरण मुहूर्त –

पूर्वात्रय श्रवण मित्रभ वैश्वदे हौताशवासवसमीरणदैवतेषु।

द्राक्षाफलेक्षु कुसुमाक्षतपूर्णपाणिरश्रान्तशान्तहृदयो वरयेत्कुमारीम्।।

तीनों पूर्व, श्रवण , अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, स्वाति और विशाखा इन नक्षत्रों में पुष्प, ऋतुफल, अक्षतादि से पूर्ण अंजलिबद्ध होकर शान्ति पूर्वक कुमारी (कन्या) का वरण करना शुभ होता है।

तैलहरिद्रालेपन मुहूर्त –

मेषादिराशिजवधूवरयोर्बटोश्च

तैलादिलेपनविधौ कथिताऽत्र संख्या।

शैलादिश: शरदिगक्ष नगाद्रिबाण

बाणाक्षबाणगिरयो विबुधैस्तु कैश्चित्।।

शतपद चक्रानुसार वर – कन्या या कुमार का नामाद्यक्षर नाम राशि जानकर मेषादि राशिक्रम से तैलादिलेपन में ज्योतिर्विदों ने ७,१०,५,१०,५,७,७,५,५,५,५,७ संख्या कही है।

विवाह में मण्डप निर्माण एवं लक्षण -

मंगलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहमानत:।

कार्य षोडशहस्तो वा द्विषड्ढस्तो दशावधि।।

स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता।

शोभिता चित्रिता कुम्भैरासमन्ताच्चतुर्शिम्।।

द्वारविद्धा बलीविद्धा कूपवृक्षव्यधा तथा।

न कार्या वेदिका तज्ज्ञै: शुभमंगलकर्मणि।।

समस्त मंगलकार्यों में कर्ता के हाथ से सोलह, बारह या दस हाथ चारों तरफ बराबर माप का मण्डप बनना चाहिए। जिसके बीच में एक सुन्दर वेदी, चार स्तम्भ और चारों दिशा अनेक रंग से चित्रित शोभायमान कलश से युक्त रहे। द्वार, कूप, वृक्ष, खात, दीवार इत्यादि के वेध से रहित विद्वानों के निर्देशानुसार बनाना श्रेष्ठ होता है।

ऐशान्यां स्थापयेत्कुम्भं सिंहादित्रिभगे रवौ।

वृश्चिकादित्रिभे वायौ नैऋत्यां कुम्भतात्रिभे।

वृषात्त्रये तथाऽऽग्नेय्यां स्तम्भखातं तदैव हि।

सिंहादि तीन राशियों में सूर्य के रहने से ईशान कोण में स्तम्भ तथा कुम्भ का पहले स्थापना करना

शुभ है। वृश्चिक आदि तीन राशियों में रहने से वायु कोण में, कुम्भ आदि तीन राशि में नैऋत्य कोण में और वृष आदि तीन राशियों में सूर्य के होने से अग्निकोण में स्तम्भ और घट का स्थापना करना शुभ है।

विवाह नक्षत्र –

रोहिण्युत्तररेवत्यो मूलं स्वाती मृगो मघा।
अनुराधा च हस्तश्च विवाहे मंगलप्रदा:।।

रोहिणी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, रेवती, मूल, स्वाती, मृगशिरा, मघा, अनुराधा और हस्त ये नक्षत्र विवाह में मंगलदायक है।

विवाह मास –

मिथुनकुम्भमृगालिवृषाजगे मिथुनगेऽपि रवौ त्रिलवे शुचे:।
अलिमृगाजगते करपीडनं भवति कार्तिकपौषमधुष्वपि।।

मिथुन, कुम्भ, मकर, वृश्चिक, वृष और मेष का सूर्य हो तो विवाह करना शुभ है। मिथुन के सूर्य में आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा से दशमी पर्यन्त श्रेष्ठ हैं, वृश्चिक के सूर्य हों तो कार्तिक में, मकर के सूर्य हों तो पौष में और मेष के सूर्य हों तो चैत्र में भी विवाह हो सकता है।

वैवाहिक मास फल –

माघे धनवती कन्या फाल्गुने सुभगा भवेत्।
वैशाखे च तथा ज्येष्ठे पत्युरत्सन्तवल्लभा।।
आषाढ़े कुलवृद्धि:स्यादन्ये मासाश्च वर्जिता:।
मार्गशीर्षमपीच्छन्ति विवाहे केऽपि कोविदा:।।

माघ में विवाह करने से कन्या धनवती होती है। फाल्गुन में सौभाग्यवती और वैशाख तथा ज्येष्ठ में पति की अत्यन्त प्रिया होती है, एवं आषाढ़ में विवाह करने से कुल की वृद्धि होती है, अन्य मास विवाह में वर्जित हैं परन्तु कोई–कोई विद्वानों ने विवाह में मार्गशीर्ष मास का भी ग्रहण किया है।

विवाह में ग्राह्य शुभ लग्न -

मुहूर्त्त ग्रंथों के अनुसार विवाह लग्न काल में 3, 6, 8, 11 वें सूर्य तथा इन्हीं स्थानों (3, 6, 11) में राहु, केतु और शनि भी शुभ हैं। 3, 6 व 11 वें मंगल 2, 3, 11 वें चंद्रमा, 3, 6, 7 शुभ और 8वें भाव को छोड़ अन्य भावों में स्थित शुक्र शुभ होता है। ग्यारहवें भाव में सूर्य तथा केंद्र त्रिकोण में गुरु लग्नगत अनेक दोषों का परिहार करते हैं। लग्ने वर्गोत्तमे वेन्दौ द्यूनाथे लाभगेऽथवा। केंद्र कोणे गुरौ दोषा नश्यन्ति सकलाऽपि।। जन्म राशि से अष्टमस्थ लग्न : वर कन्या की जन्म राशि या लग्न से

चतुर्थ, अष्टम तथा बारहवीं राशिस्थ लग्न अशुभ कहे गये हैं।

5.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में जातक के जन्म के पूर्व तथा जन्मोपरान्त विविध संस्कारादि क्रिया का विधान कहा गया है। इस इकाई में जातक के जन्मोपरान्त उसके अक्षराम्भ, विद्यारम्भ, उपनयन एवं विवाह संस्कार के बारे में अध्ययन करेंगे। अक्षराम्भ एवं विद्यारम्भ संस्कार द्वारा जातक का विद्याध्ययन में प्रवेश कराया जाता है। तत्पश्चात् उपनयन संस्कार कर उसे वेदाध्ययन के लिए गुरुकुल में भेजा जाता था। सम्प्रति इन संस्कारों का समाज में उत्तरोत्तर ह्रास परिलक्षित होता है। तथापि आज भी सनातन परम्परा को मानने वाले लोग अपने सन्तान का उक्त संस्कार अवश्य करते हैं। 'मुहूर्त्तचिन्तामणि' ज्योतिष शास्त्र का मुहूर्त्त निर्धारण हेतु प्रमुख ग्रन्थ माना गया है। गणेश, विष्णु, सरस्वती और लक्ष्मी का विधिवत् पूजन कर पॉचवें वर्ष में, एकादशी, द्वादशी, दशमी, द्वितीया, षष्ठी, पंचमी एवं तृतीया तिथियों में सूर्य के उत्तरायण रहने पर लघुसंज्ञक (हस्त अश्विनी, पुष्य, अभिजित् श्रवण, स्वाती, रेवती, पुनर्वसु , आर्द्रा, चित्रा तथा अनुराधा) नक्षत्रों में चर लग्नों (1,4,7,10) को छोड़कर शुभग्रहों के लग्नों (2,3,4,6,7,9,12) में शुभग्रहों के (चन्द्रवार, बुधवार, गुरूवार और शुक्रवार) वारों में बालकों को अक्षरारम्भ कराना चाहिये। बालक को पाँच वर्ष की अवस्था में सम्प्राप्त हो जाने पर अधोवर्णित विशुद्ध दिन को विघ्नविनायक, शारदा, लक्ष्मीनारायण, गुरू एवं कुलदेवता की पूजा के साथ उसे लिखने पढ़ने का श्रीगणेश करवाना चाहिये। मृगशिरा, हस्त और श्रवण से तीन – तीन नक्षत्र अर्थात् मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, हस्त, चित्रा, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, अश्विनी, मूल, तीनों पूर्वा, पुष्य से दो अर्थात् पुष्य आश्लेषा नक्षत्रों में, रवि, गुरू, बुध और शुक्र वासरों में, षष्ठी, पंचमी, तृतीया, एकादशी, द्वादशी, दशमी एवं द्वितीया तिथियों में शुभग्रहों के केन्द्र और त्रिकोण 1,4,7,10,5,9 भावों में स्थित रहने पर कुछ विद्वानों के मतानुसार ध्रुवसंज्ञक तीनों उत्तरा, रोहिणी, रेवती और अनुराधा नक्षत्रों में भी विद्याध्ययन का आरम्भ करना शुभ होता है। गर्भाधन काल से अथवा जन्म काल से आठवें वर्ष में या पॉचवें वर्ष में, ब्राह्मणों का यज्ञोपवीत संस्कार, छठें तथा ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रियों का, तथा आठवें और बारहवें वर्ष में वैश्यों का यज्ञोपवीत संस्कार होता है। उक्त बताये गये काल से द्विगुणित समय व्यतीत हो जाने पर जो यज्ञोपवीत संस्कार होता है, उसे विद्वानों ने गौण सामान्य यज्ञोपवीत कहा है। रोहिणी, उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, उत्तराफाल्गुनी, रेवती, मूल, स्वाती, मृगशिरा, मघा, अनुराधा और हस्त ये सभी नक्षत्र विवाह में मंगलदायक है।

5.6 पारिभाषिक शब्दावली

अक्षराम्भ – बालक के जन्मोपरान्त किया जाना वाला संस्कारों में एक संस्कार अक्षराम्भ है, जिसमें गणेश, सरस्वती आदि देवताओं का पूजन कर बालक को सर्वप्रथम अक्षर ज्ञान के लिए प्रवृत्त कराया जाता है।

विद्यारम्भ – बालक को विद्याध्ययन में प्रवेश के लिए विद्यारम्भ संस्कार कराने का विधान है।

उपनयन – उपयनयन संस्कार में बालक को यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता है। पश्चात् उसे वेदाध्ययन के लिए गुरुकुल भेजा जाता है। विप्रों का पाँचवें या आठवें, क्षत्रियों का छठे या ग्यारहवें, वैश्यों के लिए बारहवें वर्ष उपनयन काल कहा गया है।

विवाह संस्कार – बालक जब पूर्ण अध्ययन प्राप्त कर लेता है, उसे गृहस्थ जीवन में प्रवेश कराने के लिए उसका विवाह संस्कार किया जाता है।

क्षिप्र संज्ञक – हस्त, अश्विनी एवं पुष्य नक्षत्र को क्षिप्र संज्ञक नक्षत्र कहते हैं।

मृदु संज्ञक – मृगशिरा, रेवती और चित्रा नक्षत्र को मृदु संज्ञक नक्षत्र कहते हैं।

5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1.ख 2. क 3. घ 4. ग 5. क

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि - मूल लेखक- रामदैवज्ञ, टिका – प्रोफेसर रामचन्द्रपाण्डेय:
2. मुहूर्त्तपारिजात – पं. सोहन लाल व्यास
3. हिन्दू संस्कार पद्धति – डॉ0 राजबलि पाण्डेय
4. मुहूर्त्तचिन्तामणि– पीयूषधारा टिका।
5. मुहूर्त्तमार्तण्ड – नारायण दैवज्ञ।

5.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि
2. हिन्दू संस्कार पद्धति
3. वीरमित्रोदय
4. संस्कार विमर्श
5. मुहूर्त्तचिन्तामणि – पीयूषधारा टिका

5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अक्षराम्भ संस्कार से आप क्या समझते है?
2. विद्यारम्भ संस्कार का वर्णन कीजिये।
3. उपनयन संस्कार का परिचय दीजिये।
4. सम्प्रति संस्कारों का महत्व बतलाइये।
5. अक्षराम्भ, विद्यारम्भ एवं उपनयन का मुहूर्त्त लिखिये।
6. विवाह संस्कार पर निबन्ध लिखिये।

इकाई - 6 वधूप्रवेश, द्विरागमन, गृहारम्भ, गृहप्रवेश एवं यात्रा मुहूर्त्त

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के तृतीय खण्ड की षष्ठ इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – वधूप्रवेश, द्विरागमन, गृहारम्भ, गृहप्रवेश एवं यात्रा मुहूर्त्त। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने अक्षराम्भ, विद्यारम्भ, उपनयन एवं विवाह संस्कारों का अध्ययन कर लिया है। अब आप इस इकाई में संस्कारों के अन्तर्गत वधूप्रवेश, द्विरागमन, गृहारम्भ, गृहप्रवेश एवं यात्रा मुहूर्त्त का अध्ययन करने जा रहे हैं।

वधूप्रवेश एवं द्विरागमन विवाहोपरान्त किया जाने वाला संस्कार है। गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश का सम्बन्ध गृह (भवन) से हैं। यात्रा का सम्बन्ध पर्यटन, तीर्थाटन आदि से है।

इस इकाई में वधूप्रवेश, द्विरागमन, गृहारम्भ, गृहप्रवेश एवं यात्रा मुहूर्त्त का हम अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान लेंगे कि

- वधूप्रवेश संस्कार क्या है।
- द्विरागमन संस्कार किसे कहते हैं तथा उसके लिए शुभ मुहूर्त्त का निर्धारण कैसे किया जाता है।
- गृहारम्भ कब किया जाता है।
- गृहप्रवेश का शुभाशुभ मुहूर्त्त कौन-कौन से है।
- यात्रा की क्या उपयोगिता है।

6.3 वधूप्रवेश एवं द्विरागमन मुहूर्त्त विचार

विवाह के पश्चात् वधू का प्रथम बार पतिगृह में प्रवेश (डोली उतरना) वधूप्रवेश कहलाता है। सामान्यत: विवाह से अगले दिन ही वधूप्रवेश लोक में होता हुआ देखा जाता है। लेकिन जब तुरन्त प्रवेश की प्रथा न हो तो विवाह के दिन से १६ दिनों के भीतर सम दिनों में या ५,७,९ दिनों में वधू प्रवेश, शुभ वेला में शकुनादि विचार कर मांगलिक गीत वाद्यादि ध्वनि के साथ करवाना चाहिये। १६ दिनों के भीतर गुरू – शुक्रास्तादि विचार भी नहीं होता है।
१६ दिन व्यतीत हो जाने पर एक मास के अन्दर विषम दिनों में तथा १ वर्ष के भीतर विषम महीनों में

पूर्ववत् तिथि वारादि शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कहना चाहिये। पाँच वर्ष के पश्चात् यदि वधू प्रवेश हो तो स्वेच्छा से साधारण दिन शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कराया जाना चाहिये।

सम्प्रति लोक में ये बातें कथित तौर पर ही रह गई है। इधर विवाह संस्कार हुआ और उधर डोली तथा सीधे वर के गृह में प्रवेश हो जाता है, फिर भी दूसरा दिन सम दिन होने से ग्राह्य हैं तथा दोपहर से पूर्व वधूप्रवेश हो जाए तो शास्त्र का विरोध भी नहीं है , लेकिन उसी दिन विवाह होकर, उसी दिन प्रवेश को वर्जित करना चाहिये।

वधूप्रवेश मुहूर्त्त विचार -

समाद्रिपञ्चाङ्कदिने विवाहाद्वधूप्रवेशोऽष्टिदिनान्तराले।
शुभः परस्ताद्विषमाब्दमासदिनेऽक्षवर्षात्परतो यथेष्टम्।।

विवाह के दिन से १६ दिन के भीतर सम (२,४,६,८,१०,१२,१४,१६) दिनों में और विषम में ५,७,९ वें दिनों में वधूप्रवेश शुभ होता है। यदि १६ दिन के भीतर नहीं हो सके तो उसके बाद प्रथम मास के विषम (१७,१९,२१,२३,२५,२७,२९ वें) दिनों में एक मास के बाद विषम ३,५,७,९,११ वें मासों में और एक वर्ष के बाद विषम वर्ष ३,५ वर्षों में वधूप्रवेश शुभ होता है। परन्तु ५वें वर्ष के बाद वर्ष मास का विचार नहीं होता है अर्थात् ५वें वर्ष के पश्चात् कभी भी शुभ मुहूर्त्त देखकर वधू प्रवेश कराना चाहिये।

विशेष - विवाह के पश्चात् प्रथम बार पति गृह में प्रवेश को वधूप्रवेश कहते हैं। वधूप्रवेश विवाह से १६ दिन के भीतर प्रत्येक विवाह मास में होती हैं, परनतु १६ दिन के भतर चैत्र – पौष- मलमास – हरिशयन का त्याग करना चाहिये।

अन्य मत में वधूप्रवेश विचार –

त्रिभवविश्वतिथिप्रभवासरान्
नृपदिनेषु विहाय विवाहतः।
अनववेश्मसु नूतनकामिनी
निशि विशेत् स्थिरभेऽथ ततः परम्।।

विवाह संस्कार के बाद वधू का प्रथम पति के साथ पतिगृह में आना वधूप्रवेश है। विवाह का दिन शामिल करते हुए १६ दिनों के भीतर ३,११,१३,१५ वें दिन को छोड़कर अन्य दिनों में वधूप्रवेश शुभ है। वधूप्रवेश बिल्कुल नए गृह में अर्थात् जहॉ गृहप्रवेश के बाद वर के परिवारजनों ने रहना शुरू न किया हो, वहॉ न करें। वधूप्रवेश स्थिर नक्षत्रों में, रात्रि में हो तो विशेष शुभ है। वधूप्रवेश में मंगलवार, व शनिवार न हो तो (कहीं – कहीं बुध भी) ध्रुव, मृदु, क्षिप्र, श्रवण, मूल, मघा, स्वाती

नक्षत्र हों तो शुभ होता है।

वधूप्रवेश में नक्षत्र शुद्धि विचार –

ध्रुवक्षिप्रमृदु श्रोत्रवसुमूलमघानिले।
वधूप्रवेश: सन्नेष्टो रिक्तारार्के बुधे परे:।।

ध्रुव - क्षिप्र – मृदु संज्ञक नक्षत्र, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, मघा, और स्वाती इन नक्षत्रों में, रिक्ता (४,९,१४) तिथि और मंगलवार – रविवार को छोड़कर अन्य तिथि –वारों में वधूप्रवेश होता है। अन्य आचार्य के मत से बुधवार को भी प्रवेश को वर्जित किया गया है।

ज्येष्ठे पतिज्येष्ठमथाधिके पतिं हन्त्यादिमे भर्तृगृहे वधू: शुचौ।
श्वश्रूं सहस्ये श्वशुरं क्षये तनुं तातं मधो तातगृहे विवाहत:।।

विवाह के पश्चात् प्रथम ज्येष्ठ मास में यदि स्त्री पतिगृह में रहे तो पति के ज्येष्ठ भाई को नाश करती है। यदि प्रथम मलमास में रहे तो पति को, प्रथम आषाढ़ में पतिगृह में रहे तो सास को, पौष में रहे तो श्वसुर को और प्रथम क्षयमास में रहे तो अपने को नाश करती है। इसी प्रकार विवाह के पश्चात् प्रथम चैत्र में यदि स्त्री पिता के गृह में रह जाय तो पिता को मारती है।

विशेष - इससे सिद्ध होता है कि विवाह के पश्चात् चैत्र में पिता के गृह में रह जाना, तथा ज्येष्ठ, आषाढ़ पौष, मलमास – क्षयमास में पतिगृह में रहना वधूप्रवेश – यात्रा में शुभ नहीं होता है। अत: व्यावहारिक रूप में वधूप्रवेश के पश्चात् वर्जित समय को ध्यान देना आवश्यक है।

वधूप्रवेश मुहूर्त निर्णय करते समय निम्नलिखित स्थितियों का चयन करें-

शुभ मास - वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, पौष, माघ, फाल्गुन व मार्गशीर्ष।

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु व शुक्र।

शुभ तिथि - 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 12 (शुक्लपक्ष)।

शुभ नक्षत्र - रोहिणी, मृगशिरा, मघा, उफा., हस्त, स्वाति, अनुराधा, मूला, उषा., उभा., रेवती।

शुभ लग्न - सप्तम में सभी ग्रह अनिष्टकारक कहे गए हैं। लग्न में 3, 6, 7, 9 व 12वीं राशि का नवांश श्रेष्ठ कहा गया है। जब जन्म राशि जन्म लग्न से आठवीं या बारहवीं न हो।

विवाह लग्न से सूर्यादि ग्रहों के शुभ भाव अधोलिखित हैं :

सूर्य - 3, 6, 10, 11, 12वें भाव में। चन्द्र - 2, 3, 11वें भाव में।

मंगल - 3, 6, 11वें भाव में।

बुध व गुरु - 1, 2, 3, 4, 6, 9, 10, 11वें भाव में।

शुक्र - 1, 2, 4, 5, 9, 10, 11वें भाव में।

शनि, राहु- केतु - 3, 6, 8, 11वें भाव में।

टिप्पणी - वधू प्रवेश नवीन गृह में सर्वथा त्याज्य है। विषम दिनों, विषम मासों या विषम वर्षों में वर्जित है। इसी तरह भद्रा, व्यतिपात, गुरु- शुक्रास्त, क्षीण चन्द्र भी वर्जित है।

नव वधू द्वारा पाकारम्भ मुहूर्त

ससुराल में आने के बाद वधू द्वारा प्रथम बार रसोई बनवाई जाती है। इस कार्य के लिए ही इस मुहूर्त का विचार किया गया है। निम्नलिखित वार, तिथि, नक्षत्र एवं लग्न आदि में नव वधू का पाकारम्भ (पहली बार रसोई बनाना) करना शुभ होता है।

शुभ वार - सोम, बुध, गुरु व शनि।

शुभ तिथि - (कृष्णपक्ष), 2, 3, 5, 6, 7, 8, 10, 12 (शुक्लपक्ष)।

शुभ नक्षत्र - कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, उत्तरात्रय, विशाखा, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा एवं रेवती।

मुहूर्त का अर्थ है किसी कार्य विशेष को करने के लिए सही समय का चुनाव। सही समय में प्रारंभ किया गया कार्य शीघ्र ही पूर्ण होता है और सफल रहता है इसके विपरीत अनुचित समय में प्रारम्भ किया गया कार्य समय पर पूर्ण नहीं हो पाता और उसमें असफलता की सम्भावना भी अधिक बनी रहती है। उचित मुहूर्त बिना किये गये कार्य में विभिन्न विघ्न आते हैं, अनेक समस्याएं खड़ी हो जाती हैं और कार्य पूर्ण नहीं हो पाता है। इसीलिए हमारे पूर्वजों ने मुहूर्त की व्यवस्था की, ताकि उचित समय में किसी कार्य विशेष को प्रारम्भ किया जा सके। समय और ग्रहों का प्रभाव जड़, चेतन, मानव, पशु, पक्षी, प्रकृति आदि सब पर पड़ता है। संसार का कोई ऐसा पदार्थ नहीं, जिस पर समय अपना प्रभाव न दिखाता हो, समय के वशीभूत हुए बड़े- बड़े पहाड़ टूटकर मिट्टी में तब्दील हो जाते हैं, बड़े- बड़े गड्ढे भरकर समतल हो जाते हैं।

अतएव मनुष्य को प्रत्येक कार्य शुभ समय में करने का प्रयत्न करना चाहिये। शेष सुख – दु:ख, लाभ – हानि, जीवन – मरण तो सब विधि के हाथ में ही होता है।

वस्त्राभूषण धारण विचार –

हस्त, अनुराधा, पुष्य, पूर्वाषाढ़ा, धनिष्ठा, चित्रा,तीनों उत्तरा, पुनर्वसु , रोहिणी नक्षत्रों में शुक्र,बुध,गुरू वारों में स्थिर लग्न में नए गहने पहनने चाहिये।

क्षिप्र, मृदु, ध्रुव व चर नक्षत्रों में शुभ वार, शुभ लग्नों में या उत्सव में, पति की इच्छा से नए वस्त्राभूषण पहनने चाहिये।

द्विरागमन मुहूर्त्त

चरेदथौजहायने घटालिमेषगे रवौ रवीज्यशुद्धियोगत: शुभग्रहस्य वासरे।
नृयुग्ममीनकन्यकातुलावृषे विलग्नके द्विरागमं लघुध्रुवे चरेस्रपे मृदूडुनि।।

विवाह से एक वर्ष के पश्चात् विषम ३,५ वर्षों में सूर्य, कुम्भ, वृश्चिक और मेष राशि में हो तो अर्थात् सौर फाल्गुन, अग्रहण वैशाख मासों में, कन्या के लिये सूर्य – गुरू की शुद्धि रहने पर शुभग्रहों (चन्द्र, बुध, गुरू एवं शुक्र) के दिन में, मिथुन – मीन – कन्या – तुला – और वृष लग्न में, लघु संज्ञक –ध्रुवसंज्ञक, चरसंज्ञक, मूल और मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में द्विरागमन (विलम्बवधू प्रवेश के लिये पितृगृह से पतिगृह की यात्रा) कराना चाहिये।

द्विरागमन वधूप्रवेश का ही अंग है। वधूप्रवेश के ३ भेद हैं -

१. नूतन वधूप्रवेश २. सामान्य वधूप्रवेश ३. विलम्बित वधूप्रवेश

विवाह के बाद १६ दिन के भीतर पिता के गृह से पतिगृह में प्रवेश को नूतन वधू प्रवेश कहते है। विवाह के पश्चात् एक वर्ष के भीतर मार्गशीर्ष , फाल्गुन, वैशाख क्रम से पतिगृह में प्रवेश को सामान्य वधूप्रवेश कहते हैं। इसमें सम – विषम मासों – दिनों का विचार एवं शुक्र का विचार नहीं होता है। जैसे -

नित्ययाने गृहे जीर्णे प्राशने परिधानके।
वधूप्रवेशे मांगल्ये न मौढ्यं गुरू – शुक्रयो:।।

इस वचनानुसार सामान्य वधूप्रवेश में गुरू – शुक्र के मौढ्य अस्तादि का विचार आवश्यक नहीं होता हैं। व्यवहार में लोग इसे भी प्रथम वर्षीय द्विरागमन कहते हैं। इसमें पिताके गृह से चन्द्रतारानुकूलित यात्रा विचार सहित प्रस्थान के साथ पतिगृह में प्रवेश का मुहूर्त्त देखा जाता है। विवाह के पश्चात् तृतीय–पंचम विषम वर्ष में पिता के गृह से पतिगृह के लिये स्त्री के प्रस्थान को विलम्बित वधूप्रवेश कहा जाता है। इसमें गुरू–शुक्र के अस्तादि में शुक्र विचार की प्रधानता होती है। सम्मुख दक्षिण शुक्र का विचार प्रधान होता है। आवश्यक पक्ष में शुक्रान्ध - नक्षत्र में यात्रा मुहूर्त्त देखकर पतिगृह में द्विरागमन होता है। शुक्रान्ध नक्षत्र – रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, और मृगशिरा ये ६ नक्षत्र है। इसमें मार्गशीर्ष, फाल्गुन, वैशाख इन तीन मासों में शुक्ल पक्ष, कृष्णपक्ष की पंचमी तक विहित तिथि–वार - नक्षत्र आदि विचार आवश्यक होता है। दूसरे शब्दों में, ससुराल से पिता के घर में जाकर फिर से पति के घर में आने का नाम द्विरागमन है। यह भी शुभ समय में करने श्रेष्ठ होता है। निम्नलिखित वार, तिथि, नक्षत्र एवं लग्न आदि में द्विरागमन शुभ होता है।

शुभ वर्ष - 1, 3, 5, 7, 9, 11, 13 15 व 17

शुभ मास - वैशाख, मार्गशीर्ष एवं फाल्गुन।

शुभ वार - रवि, सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र।

शुभ तिथि - 1, 2, 3, 5, 7, 8, 10, 11, 13 (शुक्लपक्ष)।

शुभ नक्षत्र - रोहिणी, पुनर्वसु, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, श्रवण, चित्रा, स्वाति, रेवती, पुष्य, चित्रा, पूर्वाषाढा, अश्विनी, मूला,हस्त व उत्तरात्रय।

शुभ लग्न - 3, 4, 7, 9 , 10 व 12वीं राशि।

टिप्पणी - शनि और मंगलवार, 4, 6, 9, 12, 14, 30 तिथियां त्याज्य हैं।

प्रथम समागम मुहूर्त

अधोलिखित वार, तिथि, नक्षत्र एवं लग्न आदि में वर- वधू का परस्पर प्रथम समागम करना शुभ होता है।

शुभ वार - रवि, सोम, बुध, गुरु एवं शुक्र।

शुभ तिथि - 1(कृष्णपक्ष), 2, 3, 5, 7, 9, 13, 15 (शुक्लपक्ष)।

शुभ नक्षत्र - इन नक्षत्रों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है

- पूर्वाद्ध भोगी नक्षत्र - रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा।
- मध्य भोगी नक्षत्र - आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा।
- उत्तरार्ध भोगी नक्षत्र - ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद एवं उत्तराभाद्रपद।

शुभ लग्न - 1, 3, 5, 7, 9, 11वीं राशि।

विशेष - पूर्वाद्ध भोगी नक्षत्र में स्त्री- पुरुष का प्रथम समागम होने पर स्त्री पति को प्रिय होती है, मध्य भोगी नक्षत्र में हो तो परस्पर प्रीति होती है और उत्तरार्ध भोगी नक्षत्र में हो तो पति पत्नी को प्रिय होता है।

कुछ विद्वानों ने मुहूर्त्त ग्रन्थों के द्विरागमन प्रकरण में नवोढ़ा शब्द के प्रयोग के कारण द्विरागमन को वधूप्रवेश सिद्ध करने का प्रयास किया है। कभी – कभी ऐसा देखा जाता है कि विवाहोपरान्त वधू पतिगृह चली जाती है तथा दूसरे ही दिन पुन: पितृगृह में वापस आ जाती है। अनन्तर कुछ समय बाद पुन: पतिगृह में जाती है, (यही द्विरागमन होता है।) ऐसी स्थिति में वधू को नवोढा कहना किसी भी प्रकार से अनुचित नहीं है। नवोढ़ा का अर्थ नवीनोद्वाहिता सद्य: विवाहिता ही होता है। केवल नवोढ़ा शब्द के प्रयोग से द्विरागमन को वधूप्रवेश नहीं कहा जा सकता है। निम्नलिखित

श्लोक से भी द्विरागमन की पृथक् सत्ता का स्पष्ट प्रमाण मिलता है -

विवाहे गुरूशुद्धिः स्यात् शुक्रशुद्धिर्द्विरागमने।
त्रिगमे राहुशुद्धिश्च चन्द्रशुद्धिश्चतुर्गमे।।

अर्थात् कन्या के विवाह में गुरू, शुद्धि द्विरागमन में शुक्र शुद्धि, तृतीय यात्रा में राहु की शुद्धि तथा चतुर्थ एवं इसके बाद की यात्राओं में केवल चन्द्रशुद्धि का ही विचार करना चाहिये।

अत: निष्कर्ष यही है कि प्रथम बार पतिगृह में जाना वधूप्रवेश , द्वितीय बार जाना द्विरागमन होता है।

अपि च –

ओजाब्दमासेऽहनि कार्यमेतत्
पंचाब्दतोऽग्रे नियमो न तद्वत्।
विवाहभाश्वि श्रुतियुग्मचित्रा
गुरूडुभी रिक्तकुजार्क हीनैः।।

यदि द्विरागमन (गौना) अर्थात् पतिगृह में दूसरी बार आना विवाह के तुरन्त बाद न हुआ तो विवाह से विषम वर्षो , विषम मासों में करना चाहिए।

गौना पॉचवें वर्ष से आगे होना चाहिए यह नियम युक्तियुक्त नहीं है।

द्विरागमन के लिए विवाह के सभी नक्षत्र, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, चित्रा, पुष्य शुभ हैं। रिक्ता तिथि व मंगल शनिवार को वर्जित करना चाहिए।

द्विरागमो मेषघटालिसंस्थे
सूर्ये मृदुक्षिप्रचलाचलर्क्षे।
मूले बुधेज्यास्फृजिनां दिनेंगे
रवीज्यशुद्धौ विषमेऽब्द इष्टः।।

मेष, वृश्चिक, कुम्भ के सूर्य में, मृदु क्षिप्र, लघु व स्थिर नक्षत्र और मूल में, बुध, गुरू, शुक्र के वार व लग्नों में, सूर्य व गुरूबल की शुद्धि में, विषम वर्ष में गौना करना चाहिए।

6.4. गृहारम्भ एवं गृहप्रवेश मुहूर्त्त

गृह निर्माण आरम्भ करने की क्रिया गृहारम्भ कहलाती है। शास्त्रों में गृहारम्भ विधि इस प्रकार कही गयी है -

गृहारम्भ विधि -

द्वारशुद्धिं निरीक्ष्यादौ भशुद्धिं वृषचक्रतः।
निष्पंके स्थिरे लग्ने द्वयंगे वालयमारभेत्।।

त्यक्त्वा कुजार्कयोश्चांशं पृष्ठे चाग्रे स्थितं विधुम्।
बूधेज्यराशिगं चार्कं कुर्याद् गेहं शुभाप्तये।।

सर्वप्रथम द्वारशुद्धि का विचार कर वृषचक्र के अनुसार नक्षत्र शुद्धि देखें, पंचक धनिष्ठा से रेवती तक के नक्षत्रों को छोड़कर स्थिर अथवा द्विस्वभाव लग्न में गृहारम्भ करना चाहिये। मंगल और सूर्य का अंश, आगे तथा पीछे का चन्द्रमा एवं मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन राशि के सूर्य को छोड़कर गृहारम्भ करना चाहिये।

गृहनिर्माण में हेतु –

स्त्रीपुत्रादिकभोगसौख्यजननं धर्म्मार्थकामप्रदम्।
जन्तूनामयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम्।।
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते।
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्म्मादयः।।

स्त्री पुत्र आदि के भोग, सुख, धर्म, अर्थ, काम को देने वाला, प्राणियों के सुख का स्थान और सर्दी, वायु, गर्मी, आदि कष्टों से रक्षा करने वाला गृह ही है। विधिवत् गृहनिर्माणकर्ता को बावड़ी, देवालय, आदि के निर्माण का पुण्य भी प्राप्त होता है, अतएव विश्वकर्मा आदि देवशिल्पियों ने सर्वप्रथम गृहनिर्माण का निर्देश किया है।

अपि च –

कोटिघ्नं तृणजे पुण्यं मृण्मये दशसंगुणम्।
ऐष्टिके शतकोटिघ्नं शैलेऽनन्तं फलं गृहे।।

पर्णशाला बनाने से कोटि गुण, मिट्टी का घर बनाने से दस करोड़ गुण, ईंट का गृह बनाने से सौ करोड़ गुण और पत्थरों द्वारा घर बनाने से अनन्त फलों की प्राप्ति होती है।

परगृह निवास फलम् –

परगेहकृतास्सर्वाः श्रौतस्मार्तक्रियाः शुभाः।
निष्फलाः स्युर्यतस्तासां भूमीशः फलमश्नुते।।

दूसरे के घर में बिना शुल्क दिये रहकर किये गये श्रौत स्मार्त आदि समस्त शुभकार्य अपने लिये निष्फल हो जाते है, क्योंकि उनका फल भूस्वामी को प्राप्त होता है ।

गृहारम्भे कालशुद्धि –

गृहेशतत्स्त्रीसुतवित्तनाशोऽर्केन्द्वीज्यशुक्रे विबलेऽस्तनीचे।
कर्तुः स्थितिर्नो विधुवास्तुनोर्भे पुरःस्थिते पृष्ठगते खनिः स्यात्।।

अर्थ – सूर्य, चन्द्र, गुरू और शुक्र के निर्बल, अस्त और नीच राशि में स्थित होने पर क्रम से गृहस्वामी, गृहेश की पत्नी, सुख और धन का नाश होता है । अर्थात् यदि सूर्य निर्बल, एवं नीच राशिगत हो तो गृहस्वामी का, चन्द्रमा निर्बल एवं नीच हो तो स्त्री का, गुरू निर्बल अस्त एवं नीच राशिगत हो तो सुख का तथा शुक्र यदि निर्बल–अस्त और नीच हो तो धन का नाश होता है।

चान्द्र नक्षत्र और वास्तु नक्षत्र दोनों के गृह के सम्मुख दिशा में रहने से गृहस्वामी का निवास उस गृह में नहीं होता तथा उक्त दोनों नक्षत्रों के गृह के पृष्ठभाग में स्थित रहने पर चौर भय होता है।

गृहों के नाम –

ध्रुवधान्ये जयनन्दौ खरकान्तमनोरमं सुमुख दुर्मुखोग्रं च।
रिपुदं वित्तद नाशे चाक्रन्द विपुल विजयाख्यं स्यात्।।

1. ध्रुव 2. धान्य, 3. जय 4. नन्द 5. खर 6. कान्त 7. मनोरम 8. सुमुख 9. दुर्मुख, 10. उग्र 11. रिपुद 12. वित्तद 13. नाश 14. आक्रन्द 15. विपुल 16. विजय ये क्रम से 16 गृहों के नाम है।

ध्रुवादि नाम साधन। गृह में पूर्व और उत्तर द्वार अभीष्ट है। अत: शाला ध्रुवांक योग 1 + 8 = 9, 9 + 1 = 10 योग संख्या 10 है। अत: दसवें गृह का नाम उग्र दो अक्षरों वाला हुआ।

अंश साधन – पूर्वसाधित व्यय – 1, ध्रुवादि गृह की नामाक्षर संख्या – 2 गृहपिण्ड - 101, 1 + 2 = 3 + 101 = 104 ÷ 3 = शेष 2 अत: यम अंश हुआ।

नक्षत्रानुसार शुभाशुभ विचार –

वास्तुरत्नावली में यह कहा गया है कि जन्म नक्षत्र के अनुसार भी गृह में या नगर में वास करना चाहिये।

अभीष्ट नगर या गॉव के नक्षत्र से गणना कर इस प्रकार नक्षत्र स्थापित करके देखें जहाँ अपना जन्म नक्षत्र पड़े। तदनुसार शहर में निवास का शुभाशुभ विचार करें।

पुरूषाकृति ग्राम वास चक्र –

अंग	**मस्तक**	**मुख**	**पेट**	**पाद**	**पीठ**	**नाभि**	**गुदा**	**दायॉ हाथ**	**बायॉ हाथ**
नक्षत्र	5	3	5	6	1	4	1	1	1
फल	लाभ	धन हानि	धन धान्य	स्त्री हानि	हानि	सम्पत्ति	भय पीड़ा	युद्ध	विलाप

उदाहरणार्थ किसी व्यक्ति का जन्म नक्षत्र आर्द्रा है। दिल्ली का नक्षत्र पू0भा0 है। पूर्वा भाद्रपद से गणना करने पर आर्द्रा नौवॉ नक्षत्र आया। जो पेट पर पड़ता है। अत: धन धान्य वृद्धि दिल्ली में रहने का फल आया।

अथव ग्राम नक्षत्र से 7 -7 नक्षत्र क्रमश: मस्तक, पीठ, हृदय व पैरों पर मान कर देखें। मस्तक में धन व मान, पृष्ठ में हानि व निर्धनता हृदय पर सुख सम्पत्ति व पैरों पर अस्थिरता रहती है। यहॉ अपने नाम नक्षत्र से देखा जायेगा। उदाहरण में दिल्ली के नक्षत्र से विचारणीय व्यक्ति शुभदर्शन का नाम नक्षत्र शतभिषा पूर्वाभाद्रपद से गणना करने पर अन्तिम सप्तक अर्थात् पैरों पर पड़ता है जो कि

मन की अस्थिरता का द्योतक है।

गृहराशि विचार –

मेष में अश्विनी से नक्षत्र, सिंह में मघा से 3 नक्षत्र व धनु में मूल से 3 नक्षत्र होते है। अन्य सभी राशियॉं यथा क्रम 2.2 नक्षत्रों की होती है।

अश्विन्यादि त्रयं मेषे सिंहे प्रोक्तं मघा त्रयम्।
मूलादित्रितयं चापे शेषभेषु द्वयं द्वयम्।।

शाला से शुभाशुभ - बाल्कनी, प्रवेश लॉबी, ऑगन कहॉं बनायें यह ध्यान रखना चाहिये । इससे भी शुभाशुभ होता है। यदि उक्त चीजें न हों तो गृह में जिधर बाहर खुलने वाले दरवाजे बनायें उससे भी विचार किया जा सकता है।

पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, तथा उत्तर इस क्रम से 1,2,4,8 ये ध्रुवांक है। जिधर शाला हो उसके ध्रुवांको में 1 जोड़कर जो संख्या बने, वही निम्नानुसार गृह का नाम या संज्ञा होती है। तदनुसार फल शुभ नाम से शुभ या अशुभ से अशुभ होगा –

1. ध्रुव
2. धान्य
3. जय
4. नन्द
5. खर
6. कान्त
7. मनोरम
8. प्रमुख
9. दुर्मुख
10. क्रूर
11. रिपुद
12. धनद
13. क्षय
14. आक्रान्द
15. विपुल
16. विजय

ध्यातव्य हो कि यदि चारों दिशाओं में द्वार शालादि बनती हो तब यह पूर्वोक्त विचार नहीं करना है। उक्त उदाहरण वाले व्यक्ति शुभदर्शन के फ्लैट में यथोचित परिवर्तन क्षेत्रफल में करवा दिया गया है। अब दरवाजा व बाल्कनी उत्तर व दक्षिण पूर्व के कोने में निर्माण करवानी है।

पूर्वांक 1 + दक्षिण दिशांक 8 = 9 + 1 अतिरिक्त तो 10 वॉ घर क्रूर होगा। यह ठीक नहीं है। अत:

हम शुभदर्शन जी को सलाह देते हैं कि आप अपने गृह मं सम्भव हो तो बाल्कनी दक्षिण पश्चिम में या पूर्व दिशा में अग्निकोण से हटाकर बनायें तो शुभ होगा।
यदि मकान बनवाते समय कुशल वास्तुविद् ज्योतिषी से सलाह लेते है, तो निश्चित ही कल्याणकारी सिद्ध होगा।

बोध प्रश्न

1. गृह निर्माण आरम्भ करने से सम्बन्धित प्रक्रिया को कहते है।
क. गृहारम्भ ख. द्वारस्थापन ग. शीलान्यास घ. गृह
2. गृहारम्भ में नक्षत्रशुद्धि देखी जाती है।
क. वास्तु चक्र से ख. वृष वास्तु चक्र से ग. काकिणी से घ. कोई नही
3. 'खनि' शब्द का अर्थ है -
क. शुद्ध ख. हानि ग. चोरी घ. लाभ
4. यदि स्थान के नक्षत्र से व्यक्ति का नक्षत्र पाँचवाँ हो तो फल होता है।
क. लाभ ख. धनहानि ग. सम्पत्ति घ. कोई नही
5. निम्नलिखित में गृहों के नाम नहीं है।
क. ध्रुव ख. धान्य ग. जय घ. आनन्द
6. मेष, सिंह एवं धनु राशियों की दिशा कौन सी है?
क. पूर्व ख. पश्चिम ग. उत्तर घ. दक्षिण
7. निम्न में चर लग्न नहीं है?
क. 1 ख. 4 ग.7 घ. 11

गृह निर्माणारम्भ – वैशाख, श्रावण, मार्गशीर्ष, माघ, फाल्गुन मासों में 3,6,9 राशियों की संक्रान्ति को छोड़कर गृहारम्भ करना चाहिये। कार्तिक मास निर्माणारम्भ के लिये मध्यम है। 1,4,9,14,30 तिथियों को छोड़कर शेष वारों में, जहॉ तक हो सके शुक्ल पक्ष में अग्नि, मृत्यु, बाणादि की शुद्धि देखकर व भूमिशयन न होने पर गृह निर्माणारम्भ करें। वेधरहित चित्रा, अनुराधा, मृगशिरा, रेवती, स्वाती, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, धनिष्ठा, हस्त, पुनर्वसु, शतभिषा, नक्षत्रों में पूर्ववत् लग्न शुद्धि देखकर गृहारम्भ करना चाहिये। चर लग्न को गृहारम्भ में वर्जित करना चाहिये।
तिथ्यादि शुद्धि –

भौमार्करिक्तामाद्यूने चरोनेङ्गे विपंचके।
व्यष्ठान्त्यस्थै: शुभैर्गेहारम्भस्त्रयायारिगै: खलै:।।

मंगल और रविवार को छोड़कर अन्य वारों में 4,9,14,30,1 तथा किसी के मत से अष्टमी को भी त्याग कर शेष तिथियों में, चर लग्न मे, क, तु, म, रहित लग्न में, बाण पंचक स्पष्ट सूर्य के भुक्तांश 2,11,20,29 हों तो अग्नि दोष रहित काल में, लग्न से शुभग्रह 12,8 से अतिरिक्त स्थान में और पापग्रह 3,6,11 वे हो तो गृह निर्माणारम्भ शुभ है।

गृहारम्भ में निषेध –

गृहेशतत्स्त्रीसुतवित्तनाशो
ऽर्केन्द्वीज्यशुक्रे विबलेऽस्तनीचे।
कर्तु: स्थितिर्नो विधुवास्तुनोर्भे।।
पुर: स्थिते पृष्ठगते खनि: स्यात्।।

गृहारम्भ के समय गृहकर्ता के सूर्य, चन्द्रमा, वृहस्पति और शुक्र निर्बल हो, अस्त हो या नीच के हो तो क्रम से गृहेश, उसकी स्त्री, सुख और धन का नाश होता है। चन्द्रमा नक्षत्र तथा वास्तु नक्षत्र सम्मुख पड़े तो गृहकर्ता का उसमें वास न हो, यदि पृष्ठगत पड़े तो खनि (चोरी) होती है।

गृहारम्भ में नक्षत्र और वार से विशेष फल –

पुष्यध्रुवेन्दु हरिसर्पजलै: सजीवै।
स्तद्वासरेण च कृतं सुतराज्यदं स्यात्।।
द्वीशाष्वितक्षवसुपाशिशिवै: सशुक्रै।
वरि सितस्य च गृहं धनधान्यदं स्यात्।।
सारै: करेज्यान्त्यमघाम्बुमूलै: कौजे
ऽह्नि वेश्माग्निसुतार्विदं स्यात्।।
सज्ञै: कदास्रार्यमतक्षहस्तैर्ज्ञस्यैव।
वारे सुखपुत्रदं स्यात्।।
अजैकपादहिर्बुध्न्यशक्रमित्रानिलान्तकै:।
समन्दैर्मन्दवारे स्याद्रक्षोभूतयुते गृहम्।।

पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, श्रवण, आश्लेषा, पूषा इनमें से कोई नक्षत्र में वृहस्पति हो और वृहस्पति वार हो तो गृहारम्भ करने से पुत्र और धन की प्राप्ति हो, तथा विशाखा, अश्विनी, चित्रा, धनिष्ठा, शततारा, आर्द्रा इनमें से किसी नक्षत्र से युक्त शुक्र और शुक्र ही के वार में गृहारम्भ करने से धन–धान्यदायक होता है।

हस्त, पुष्य, रेवती, मघा, पूषा, मूल इनमें से किसी नक्षत्र से युक्त मंगल और मंगलवार भी हो तो गृहारम्भ करने से अग्निभय और पुत्र को पीड़ा हो तथा यदि रोहिणी, अश्विनी, उ0फा0, चित्रा, हस्त इनमें से किसी नक्षत्र से युक्त बुध हो और बुधवार भी हो तो गृहारम्भ करने से पुत्रसुख होता है।

पू0भा0, उ0भा0, ज्येष्ठा, अनुराधा, रेवती, स्वाती, भरणी इनमें से किसी नक्षत्र से युक्त शनि और शनिवार भी हो तो ऐसे योग में गृहारम्भ करने से वह गृह राक्षस और भूत से युक्त होता है।

लक्ष्मीयुक्त गृह के योग –

स्वोच्चे शुक्रे लग्नगे वा गुरौ वेश्मगतेऽथ वा।
शनौ स्वोच्चे लाभगे वा लक्ष्म्यायुक्तं चिरं गृहम्।।

लग्न में उच्च का शुक्र हो या चतुर्थ स्थान में उच्च का वृहस्पति हो अथवा उच्च का शनि एकादश में रहने से गृहारम्भ करने पर गृह दीर्घकाल तक लक्ष्मी से युक्त रहता है।

गृहप्रवेश का मुहूर्त –

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः।
प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्यकार्तिकमासयोः।।
प्रविशेन्नूतनं हर्म्यं ध्रुवैर्मैत्रैः सुखाप्तये।
यद्दिङ्मुखं गृहद्वारं तद्द्वारर्क्षे गृहं विशेत्।।

गृहप्रवेश में माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ मास शुभ तथा मार्गशीर्ष और कार्तिक मास मध्यम है। तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा अथवा द्वार के नक्षत्र में नवीन गृह में प्रवेश करना शुभ है।

विशेष - पूर्वादि दिशा में क्रम से कृत्तिकादि सात – सात नक्षत्र समझना चाहिये। यथा गृह का द्वार पूर्व दिशा में हो तो कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा ये सात नक्षत्र प्रशस्त है।

गृहशांति पूजन –

जब किसी भवन, गृह आदि का निर्माण पूर्ण हो जाता है, एवं गृहप्रवेश के पूर्व जो पूजन किया जाता है, उसे **गृहशांति पूजन** कहते है। यह पूजन एक अत्यंत आवश्यक पूजन है, जिससे गृह-वास्तु-मंडल में स्थित देवता उस मकान आदि में रहने वाले लोगों को सुख, शांति, समृद्धि देने में सहायक होते हैं। यदि किसी नये गृह में गृहशांति पूजन आदि न करवाया जाए तो गृह-वास्तु -देवता लोगों के लिए सर्वथा एवं सर्वदा विध्न करते रहते है। गृह, पुर एवं देवालय के सूत्रपात के समय, भूमिशोधन, द्वारस्थापन, शिलान्यास एवं गृहप्रवेश इन पांचों के आरम्भ में वास्तुशांति आवश्यक है। गृह-प्रवेश के आरंभ में गृह-वास्तु की शांति अवश्य कर लेनी चाहिए। यह गृह मनुष्य के लिए ऐहिक एवं पारलोकिक सुख तथा शान्तिप्रद बने इस उद्देश्य से गृह वास्तु शांति कर्म का प्रतिपादन ऋषियों द्वारा किया गया। कर्मकाण्ड में वास्तुशांति का विषय अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि, जरा सी भी त्रुटि रह जाने से लाखों एवं करोडों रूपये व्यय करके बनाया हुआ गृह जरा से समय मे भूतों का निवास अथवा गृहनिर्माणकर्ता, शिल्पकार अथवा गृहवास्तु शांति कराने वाले विद्वान के लिए घातक हो सकता है। वास्तुशांति करवाने वाले योग्य पंडित का चुनाव ही महत्तवपूर्ण होता है, कारण कि वास्तुशांति का कार्य यदि वैदिक विधि द्वारा पूर्णतः संपन्न नहीं होता तो गृहपिण्ड एवं गृहप्रवेश का मुहूर्त भी निरर्थक हो जाता है। अतः गृह निर्माण कर्ता को कर्मकाण्डी विद्वान का चुनाव अत्यधिक विचारपूर्वक करना चाहिए।

गृहशांति पूजन न करवाने से हानियाँ -

- यदि गृहप्रवेश के पूर्व गृहशांति पूजन नहीं किया जाए तो दुस्वप्न आते हैं, अकालमृत्यु, अमंगल संकट आदि का भय हमेशा रहता है।
- गृहनिर्माता को भयंकर ऋणग्रस्तता, का समना करना पडता है, एवं ऋण से छुटकारा भी जल्दी से नहीं मिलता, ऋण बढ़ता ही जाता है।
- घर का वातावरण हमेशा कलह एवं अशांति पूर्ण रहता है। घर में रहने वाले लोगों के मन में मनमुटाव बना रहता है। वैवाहिक जीवन भी सुखमय नहीं होता।
- उस घर के लोग हमेशा किसी न किसी बीमारी से पीडित रहते है, तथा वह घर हमेशा बीमारीयों का डेरा बन जाता है।
- गहनिर्माता को पुत्रों से वियोग आदि संकटों का सामना करना पड सकता है।
- जिस गृह में वास्तु दोष आदि होते है, उस घर मे बरकत नहीं रहती अर्थात् धन टिकता नहीं है। आय से अधिक खर्च होने लगता है।
- जिस गृह में बलिदान तथा ब्राहमण भोजन आदि कभी न हुआ हो ऐसे गृह में कभी भी प्रवेश नहीं करना चाहिए। क्योंकि वह गृह आकस्मिक विपत्तियों को प्रदान करता है।

गृहशांति पूजन करवाने से लाभ

- यदि गृहस्वामी गृहप्रवेश के पूर्व गृहशांति पूजन संपन्न कराता है, तो वह सदैव सुख को प्राप्त करता है।
- लक्ष्मी का स्थाई निवास रहता है, गृह निर्माता को धन से संबंधित ऋण आदि की समस्याओं का सामना नहीं करना पडता है।
- घर का वातावरण भी शांत, सुकून प्रदान करने वाला होता है। बीमारीयों से बचाव होता है।
- घर मे रहने वाले लोग प्रसन्नता, आनंद आदि का अनुभव करते है।
- किसी भी प्रकार के अमंगल, अनिष्ट आदि होने की संभावना समाप्त हो जाती है।
- घर में वास्तुदोष नहीं होने से एवं गृह वास्तु देवता के प्रसन्न होने से हर क्षेत्र में सफलता मिलती है।
- सुसज्जित भवन में गृह स्वामी अपनी धर्मपत्नी तथा परिवारीकजनों के साथ मंगल गीतादि से युक्त होकर यदि नवीन गृह में प्रवेश करता है तो वह अत्यधिक श्रेष्ठ फलदायक होता है।

6.5 यात्रा मुहूर्त्त -

'यात्रा' मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है। प्रत्येक मानव अपने सम्पूर्ण जीवन काल में विभिन्न उद्देश्यों से कई बार यात्रा करता है। सामान्य तौर पर यात्रा का अभिप्राय किसी विशेष उद्देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थान में प्रस्थान; जाने से है। यात्रा प्रमुख रूप से दो प्रकार की होती है - 1.

सामान्य 2. विजय परक।

जन सामान्य के व्यवहार हेतु विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिये की जानेवाली यात्रा सामान्य यात्रा होती है। किसी राज्य पर विजय प्राप्ति के उद्देश्य से अथवा किसी शत्रु के दमन के उद्देश्य से की जाने वाली यात्रा ''विजय यात्रा'' होती है। यह विशेष रूप से राजाओं या राजपुरूषों के लिये होती है। यथा -

परविषये विजयार्थं गन्तुर्यात्रा तु समरविजयाख्या।
निखिला परयात्रा या सामान्या सा भवेद्द्विधा।।

सामान्य यात्रा का विचार जन साधारण के लिये ही किया जाता है, परन्तु ज्योतिष में विजय परक यात्रा मुहूर्त्त प्रायः राजा को ही उद्देश्य करके लिखे गये है। प्रस्तुत लेख में ज्योतिषोक्त यात्रा का विवेचन किया गया है। यात्रा का सम्बन्ध सर्वप्रथम दिशाओं से है। किसी व्यक्ति को किस दिशा में यात्रा करनी है इसके लिये सर्वप्रथम दिशाओं का ज्ञान आवश्यक है। यथा –

भास्कराभिसुखैर्ज्ञेया दिशोऽथ विदिशः स्फुटाः।
सम्मुखे पूर्वदिग् ज्ञेया पश्चाज्ज्ञेया च पश्चिमा।।
उत्तरा वामभागे या दक्षिणे सा च दक्षिणा।
अग्निकोणस्तथाग्नेयी पूर्वदक्षिणमध्यगा।।
नैऋतो निर्ऋतेः कोणो दक्षिणापरमध्यगा।
पश्चिमोत्तरमध्यस्था वायवी वायुकोणकः।।
ईशानकोण ऐशानी विदिक् पूर्वोत्तरान्तरे।।

पूर्व आदि चार दिशा और आग्नेय आदि चार विदिशा है, जहाँ प्रातःकाल सूर्योदय होता है वह पूर्व दिशा होता है। पूर्व की ओर मुख करके खड़े होने पर वाम भाग में उत्तर, दाहिनी ओर दक्षिण और पीछे पश्चिम दिशा होती है। पूर्व और दक्षिण के बीच के कोण को आग्नेय, दक्षिण और पश्चिम के मध्य कोण को नैर्ऋत्य, पश्चिम और उत्तर के मध्यकोण को वायव्य और उत्तर तथा पूर्व के मध्य कोण को ईशान कोण कहते है। इन्हें विदिशा भी कहा जाता है। उध्र्व और अधः को मिलाकर कुल दिशा एवं विदिशाओं की संख्या 10 होती है। सामान्य तौर पर किसी व्यक्ति को किस दिन और किस दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिये इसके लिये ज्योतिष शास्त्र में आचार्यों ने दिक्शूलविचार का विवेचन इस प्रकार किया है - **शनौ चन्द्रे त्यजेत्पूर्वां दक्षिणां हि दिशं गुरौ। सूर्ये शुक्रे पश्चिमां च बुधे भौमे तथोत्तराम्।।** अर्थात् शनिवार एवं सोमवार को पूर्व दिशा, वृहस्पति वार को दक्षिण दिशा, रविवार और शुक्र के दिन पश्चिम तथा बुध और मंगलवार को उत्तर दिशा की यात्रा नहीं करनी चाहिये।

ऐशान्यां ज्ञे शनौ शूलमाग्नेय्यां गुरूसोमयोः। वायव्यां भूमिपुत्रे तु नैर्ऋत्यां सूर्यशुक्रयोः।। बुध और शनिवार के दिन ईशान कोण में, सोम और गुरूवार को आग्नेय कोण में, मंगलवार को वायव्य कोण में रवि और शुक्र को नैर्ऋत्य कोण में दिक्शूल रहता है। सम्मुख दिक्शूल गमन निषेध है। जिस दिन जिस दिशा में दिक्शूल हो उस दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिये। ज्योतिषशास्त्र की परम्परा में आचार्यो ने जनमानस के लिये कारण के साथ निवारण का भी परिहार के रूप में निरूपण किया है।

दिक्शूल परिहार –

सूर्यवारे घृतं पीत्वा गच्छेत्सोमे पयस्तथा।
गुडमङ्गारवारे तु बुधवारे तिलानपि।।
गुरूवारे दधि प्राश्य शुक्रवारे यवानपि।
माषान्भुक्त्वा शनौ वारे शूलदोषोपशान्तये।।

दिक्शूल में आवश्यक कार्यवश दोष की शान्ति के लिये रविवार को घृत, सोमवार को दूध, मंगलवार को गुड़, बुधवार को तिल, वृहस्पतिवार को दधि, शुक्रवार को यव और शनिवार को उड़द भक्षण कर यात्रा करनी चाहिये।

राशियों की दिशादि संज्ञा –

मेषे च सिंहे धनु इन्द्र भागे।
वृषे च कन्या मकरे च याम्ये।।
युग्मे तुलायां च घटी प्रतीच्यां।
कर्काऽलिमीने दिशि चोत्तरस्यां।।

मेष, सिंह, धनु - पूर्व दिशा वृष, कन्या, मकर - दक्षिण दिशा मिथुन, तुला, कुम्भ - पश्चिम दिशा कर्क, वृश्चिक, मीन - उत्तर दिशा। पूर्व दिशा के लिये मेष, सिंह, धनु दिग्द्वार राशियॉं है। इन्हीं राशियों में इन्हीं लग्नों में पूर्व दिशा में यात्रा करना शुभ होता है तथा इन्हीं राशि लग्नों में पश्चिम में यात्रा करना अशुभ होता है। इसी प्रकार शेष दिशाओं में समझना चाहिये। यात्रा में चन्द्रमा का विचार अत्यावश्यक है। चन्द्रमा मेषादि राशियों के क्रम से घातक चन्द्रमा होता है। जैसे मेष को प्रथम, वृष को पंचम, मिथुन को नवम, कर्क को दूसरा, सिंह को छठा, कन्या को दसवॉं, तुला को तीसरा, वृश्चिक को सातवॉं, धनु को चौथा, मकर को आठवॉं, कुम्भ को ग्यारहवॉं और मीन को बारहवॉं चन्द्रमा घातक है।

नक्षत्रों के अनुसार यात्रा –

अनुराधश्रवो हस्तो मृश्चाश्वो द्वितीद्वयम्।
धनिष्ठा रेवती चैव यात्रायां शुभदा सदा।।

मघोत्तरा विशाखा च सर्पश्चान्ये च मध्यमा
षष्ठी रिक्ता द्वादशी च पर्वाणि च विवर्जयेत्।।
लग्ने कन्या मन्मथश्च वृषभश्च तुलाधारः।
यात्राचन्द्रबले लग्ने शकुनं च विचारयेत्।।
सर्वदिग्गमने हस्तः पूषां च श्रवणो मृगः।
सर्वसिद्धिकरः पुष्यो विद्यारम्भे गुरूर्यथा।।

अश्विनी, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, अनुराधा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती ये नक्षत्र फलयात्रा में उग्र है। उत्तराभाद्रपद, विशाखा और आश्लेषा ये नक्षत्र यात्रा में अशुभ है और अन्य नक्षत्र मध्यम है। षष्ठी, रिक्ता, 4,9,14 और पर्व दिन यात्रा में इनका परित्याग कर देना चाहिये। कन्या, मिथुन, वृष, तुला ये लग्न यात्रा में शुभ है। चन्द्रमा लग्न बल होने पर भी यात्रा शकुन विचार करना चाहिये । हस्त, रेवती, श्रवण, मृगशिरा ये नक्षत्र सर्वत्र सर्व दिशा की यात्रा में शुभ है। पुष्य नक्षत्र सर्व शुभ कार्यों में इस प्रकार सिद्धियों को देने वाली होती है, जैसे विद्या के आरम्भ में गुरू।

6.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि विवाह के पश्चात् वधू का प्रथम बार पतिगृह में प्रवेश (डोली उतरना) वधूप्रवेश कहलाता है। सामान्यत: विवाह से अगले दिन ही वधूप्रवेश लोक में होता हुआ देखा जाता है। लेकिन जब तुरन्त प्रवेश की प्रथा न हो तो विवाह के दिन से १६ दिनों के भीतर सम दिनों में या ५,७,९ दिनों में वधू प्रवेश, शुभ वेला में शकुनादि विचार कर मांगलिक गीत वाद्यादि ध्वनि के साथ करवाना चाहिये। १६ दिनों के भीतर गुरू – शुक्रास्तादि विचार भी नहीं होता है। १६ दिन व्यतीत हो जाने पर एक मास के अन्दर विषम दिनों में तथा १ वर्ष के भीतर विषम महीनों में पूर्ववत् तिथि वारादि शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कहना चाहिये। पॉच वर्ष के पश्चात् यदि वधू प्रवेश हो तो स्वेच्छा से साधारण दिन शुद्धि देखकर वधूप्रवेश कराया जाना चाहिये। सम्प्रति लोक में ये बातें कथित तौर पर ही रह गई है । इधर विवाह संस्कार हुआ और उधर डोली

तथा सीधे वर के गृह में प्रवेश हो जाता है, फिर भी दूसरा दिन सम दिन होने से ग्राह्य हैं तथा दोपहर से पूर्व वधूप्रवेश हो जाए तो शास्त्र का विरोध भी नहीं है , लेकिन उसी दिन विवाह होकर, उसी दिन प्रवेश को वर्जित करना चाहिये। विवाह के दिन से १६ दिन के भीतर सम (२,४,६,८,१०,१२,१४,१६) दिनों में और विषम में ५,७,९ वें दिनों में वधूप्रवेश शुभ होता है । यदि १६ दिन के भीतर नहीं हो सके तो उसके बाद प्रथम मास के विषम (१७,१९,२१,२३,२५,२७,२९ वें) दिनों में एक मास के बाद विषम ३,५,७,९,११ वें मासों में और एक वर्ष के बाद विषम वर्ष

३,५ वर्षों में वधूप्रवेश शुभ होता है। परन्तु ५वें वर्ष के बाद वर्ष मास का विचार नहीं होता है अर्थात् ५वें वर्ष के पश्चात् कभी भी शुभ मुहूर्त देखकर वधू प्रवेश कराना चाहिये। विवाह से एक वर्ष के पश्चात् विषम ३,५ वर्षों में सूर्य, कुम्भ, वृश्चिक और मेष राशि में हो तो अर्थात् सौर फाल्गुन, अग्रहण वैशाख मासों में, कन्या के लिये सूर्य – गुरू की शुद्धि रहने पर शुभग्रहों (चन्द्र, बुध, गुरू एवं शुक्र) के दिन में, मिथुन – मीन – कन्या – तुला – और वृष लग्न में, लघु संज्ञक –ध्रुवसंज्ञक, चरसंज्ञक, मूल और मृदुसंज्ञक नक्षत्रों में द्विरागमन (विलम्बवधू प्रवेश के लिये पितृगृह से पतिगृह का यात्रा) कराना चाहिये। सर्वप्रथम द्वारशुद्धि का विचार कर वृषचक्र के अनुसार नक्षत्र शुद्धि देखें, पंचक धनिष्ठा से रेवती तक के नक्षत्रों को छोड़कर स्थिर अथवा द्विस्वभाव लग्न में गृहारम्भ करना चाहिये। मंगल और सूर्य का अंश, आगे तथा पीछे का चन्द्रमा एवं मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन राशि के सूर्य को छोड़कर गृहारम्भ करना चाहिये। गृहप्रवेश में माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ मास शुभ तथा मार्गशीर्ष और कार्तिक मास मध्यम है। तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा अथवा द्वार के नक्षत्र में नवीन गृह में प्रवेश करना शुभ है। 'यात्रा' मानव जीवन का एक अभिन्न अंग है। प्रत्येक मानव अपने सम्पूर्ण जीवन काल में विभिन्न उद्देश्यों से कई बार यात्रा करता है। सामान्य तौर पर यात्रा का अभिप्राय किसी विशेष उद्देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थान में प्रस्थान; जाने से है। यात्रा प्रमुख रूप से दो प्रकार की होती है - 1. सामान्य परक 2. विजय परक।

जन सामान्य के व्यवहार हेतु विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिये की जानेवाली यात्रा सामान्य यात्रा होती है। किसी राज्य पर विजय प्राप्ति के उद्देश्य से अथवा किसी शत्रु के दमन के उद्देश्य से की जाने वाली यात्रा ''विजय यात्रा'' होती है। यह विशेष रूप से राजाओं या राजपुरूषों के लिये होती है।

6.7 पारिभाषिक शब्दावली

वधूप्रवेश – विवाहोपरान्त कन्या पिता के गृह से पति के गृह में जब प्रथम बार प्रवेश करती है, उसका नाम वधूप्रवेश है।

द्विरागमन – विवाहोपरान्त पति के गृह से पिता के गृह जाकर पुन: द्वितीय बार जब वधू पिता के गृह से पति के गृह में जाती है, उसका नाम द्विरागमन है।

गृहारम्भ – गृहारम्भ का अर्थ है – गृहनिर्माण हेतु आरम्भ की जाने वाली क्रिया।

गृहप्रवेश – गृहारम्भ के पश्चात् जब गृह पूर्णरूपेण निर्मित हो जाता है, तब उसमें पूजनोपरान्त प्रथम बार प्रवेश की क्रिया गृहप्रवेश कहलाती है।

यात्रा – यात्रा का सम्बन्ध एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने से है। यह मुख्यत: दो प्रकार की होती है- 1. सामान्य परक 2. विशेषपरक।

रिक्ता – यह तिथि संज्ञक है। नवमी, चतुर्थी एवं चतुर्दशी तिथि को रिक्ता तिथि कहते हैं।

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्नों के उत्तर

1.क 2. ख 3. ग 4. क 5. घ 6. क 7. घ

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि - मूल लेखक- रामदैवज्ञ, टिका – प्रोफेसर रामचन्द्रपाण्डेय:

2. मुहूर्त्तपारिजात – पं. सोहन लाल व्यास

3. हिन्दू संस्कार पद्धति – डॉ0 राजबलि पाण्डेय

4. मुहूर्त्तचिन्तामणि– पीयूषधारा टिका।

5. मुहूर्त्तमार्तण्ड – नारायण दैवज्ञ।

6.10 सहायक पाठ्यसामग्री

1. मुहूर्त्तचिन्तामणि

2. हिन्दू संस्कार पद्धति

3. वीरमित्रोदय

4. संस्कार विमर्श

5. मुहूर्त्तचिन्तामणि – पीयूषधारा टिका

6.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वधूप्रवेश से आप क्या समझते है?

2. द्विरागमन से क्या तात्पर्य है?

3. गृहारम्भ मुहूर्त्त का परिचय दीजिये।

4. गृहप्रवेश का वर्णन कीजिये।

5. यात्रामुहूर्त्त का विवेचन कीजिये।

खण्ड - 4
व्रत पर्व एवं उत्सवों का धर्मशास्त्रीय निर्णय

इकाई - 1 प्रतिपदा से पंचमी तिथिपरक निर्णय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के चतुर्थ खण्ड की पहली इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – प्रतिपदा से पंचमी तिथिपरक निर्णय। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने विभिन्न मुहूर्त्तों का अध्ययन कर लिया है। अब आप व्रतादि एवं उसके धर्मशास्त्रीय निर्णयादि का अध्ययन करने जा रहे हैं।

भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में व्रतोत्सव तथा पर्व का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से जनमानस के साथ जुड़ा है। सामान्य मानवीय जीवन में उत्तरोतर सर्वतोमुखी विकासार्थ व्रत का महत्व प्रासांगिक है।

इस इकाई में हम प्रतिपदा से लेकर पंचमी तिथि तक के व्रतों का अध्ययन करेंगे तथा उनका धर्मशास्त्रीय निर्णय को भी शास्त्रानुरूप समझने का प्रयास करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- समझ लेंगे कि प्रतिपदा तिथि में कौन-कौन से व्रत होते है।
- जान जायेंगे कि व्रतों का धर्मशास्त्रीय निर्णय कैसे होता है।
- द्वितीया तिथि से पंचमी तिथि तक के व्रतों को भी जान जायेंगे।
- प्रतिपदा से पंचमी तिथिपरक निर्णय का भली-भाँति ज्ञान कर लेंगे।
- व्रतों के महत्व का प्रतिपादन कर सकेंगे।

1.3 व्रत परिचय एवं सम्बन्धित सामान्य जानकारी

व्रत-पर्व महोत्सव तथा जयन्तियों के संदर्भ में पंचांगकारों, ज्योतिषियों, धर्मशास्त्रियों, पुराणज्ञों और लोकव्यवहार में सक्षम विद्वानों द्वारा निर्णय लेना अनिवार्य होता है। धर्मशास्त्र अनुमोदित व्रत-पर्व ही अदृष्ट फल देने में सक्षम होते हैं।
अक्षांश और रेखांश के बदले जाने से अनेक बार तिथि और नक्षत्र के मान में अन्तर आ जाता है। ऐसे में अपवाद स्वरूप कुछ व्रत-पर्व दो दिन हो जाते हैं। सूर्योदय काल में तिथि और नक्षत्र के मान

अल्प होने पर ऐसी घटना यदा-कदा सामने आती है।

एक दिन एक ही तिथि में कई बार अनेक व्रत पड़ते हैं। इन व्रतों का संकल्प और उद्देश्य के माध्यम से व्रतकर्त्ता एक ही दिन में सम्पन्न करता है। अतः इससे कोई समस्या नहीं आती है। उदाहरण के लिए चैत्रशुक्लप्रतिपदा के दिन एक ही व्यक्ति एक ही दिन में अलग-अलग संकल्प के द्वारा इष्टि, वासन्तिक नवरात्रिपाठ, वर्षपतिपूजन, ध्वजारोहण, गौरीयात्रा, धर्मघटदान तथा कल्पादि श्राद्ध कर सकता है। यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्रत के लिए अलग संकल्प लिया जाय और तत्सम्बन्धी देवता का पूजन अलग से किया जाय। अतः एक ही दिन में पड़ने वाले अनेक व्रत एक दूसरे के विरोधी नहीं होते । अलग- अलग व्रतों के माध्यम से अलग-अलग कामनाओं की पूर्ति होती है।

त्रिमुहूर्त्त व्यापिनी तिथि का धर्मशास्त्रीय महत्व होता है। मुहूर्त्तो घटिकाद्वयम् के अनुसार दो घटी का एक मुहूर्त्त होता है। अतः त्रिमुहूर्त्त का अर्थ है छः घटी। एक घटी = 24 मिनट । यदि सूर्योदयकाल के पश्चात् कोई तिथि छः घटी से कम हो तो धर्मकार्य हेतु उस पर गहन विचार कर निर्णय लेना पड़ता है। छः घटी दो घण्टा चौबीस मिनट की होती है।

व्रतादि से सम्बन्धित सामान्य जानकारी यहाँ पाठकों के लिए पूर्व में दी जा रही है -

भारतीय मास - चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ और फाल्गुन ये बारह मास होते हैं।

पक्ष- एक मास में दो पक्ष होते हैं - शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष। शुक्लपूर्णिमा की संख्या 15 तथा कृष्णपक्षीय अमावस्या की संख्या 30 होती है।

संवत्सर - कुल 60 संवत्सर परिगणित हैं। इनका चक्रभमण होता है। इन संवत्सरों का नाम क्रमश: इस प्रकार से है - 1. प्रभव 2. विभव 3. शुक्ल 4. प्रमोद 5. प्रजापति 6. अंगिरा 7. श्रीमुख 8. भाव 9. युवा 10. धाता 11. ईश्वर 12. बहुधान्य 13. प्रमाथी 14. विक्रम 15. वृषभ 16. चित्रभानु 17. सुभानु 18. तारण 19. पार्थिव 20. व्यय 21. सर्वजित् 22. सर्वधारी 23. विरोधी 24. विकृति 25. खर 26. नन्दन 27. विजय 28. जय 29. मन्मथ 30. दुर्मुख 31. हेमलम्ब 32. विलम्ब 33. विकारी 34. शर्वरी 35. प्लव 36. शुभकृत् 37. शोभन 38. क्रोधी 39. विश्वासु 40. पराभव 41. प्लवंग 42. कीलक 43. सौम्य 44. साधारण 45. विरोधकृत् 46. परिधावी 47. प्रमादी 48. आनन्द 49. राक्षस 50. नल 51. पिंगल 52. काल 53. सिद्धार्थ 54. रौद्र 55. दुर्मति 56. दुंदुभी 57. रूधिरोद्गारी 58. रक्ताक्ष 59. क्रोधन 60. क्षय।

आरम्भ के 20 संवत्सर ब्रह्मा, मध्य के 20 विष्णु तथा अन्त के 20 संवत्सर शिव के होते हैं। इन संवत्सरों के अधिपति क्रमषः ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश होते हैं।

चान्द्रवर्ष - व्रत-पर्व में संकल्प लेते समय चान्द्रवर्ष का ही स्मरण किया जाता है -

'चन्द्रवत्सर एव स्मर्तव्यो नान्यः।' चान्द्रतिथि से ही जन्मदिन मनाना चाहिए।

अयन - अयन दो प्रकार का होता है - उत्तरायण एवं दक्षिणायन। एक अयन छः मास का होता है। प्रायश: 14 जनवरी से उत्तरायण तथा 17 जुलाई से दक्षिणायन का आरम्भ होता है।

संक्रान्ति - सूर्य का एक राशि भोग एक सूर्यमास होता है। राशि प्रवेश के दिन को उस राशि की संक्रान्ति के नाम से जाना जाता है। ये बारह सूर्यसंक्रान्तियाँ निम्नवत् हैं -

मेषसंक्रान्ति, वृषसंक्रान्ति, मिथुनसंक्रान्ति, कर्कसंक्रान्ति, सिंहसंक्रान्ति, कन्यासंक्रान्ति, तुलासंक्रान्ति, वृश्चिकसंक्रान्ति, धनुसंक्रान्ति, मकरसंक्रान्ति, कुम्भसंक्रान्ति तथा मीनसंक्रान्ति। संक्रान्ति के दिन पिण्डरहित श्राद्ध किया जाता है- संक्रान्तिषु पिण्डरहितं श्राद्धं कार्यम्।

ऋतु - ऋतुयें छः होती हैं। एक ऋतु में सूर्य की दो राशियाँ होती हैं। ये हैं - मकर, कुम्भ = शिशिर मीन, मेष = वसन्त वृष, मिथुन = ग्रीष्म कर्क,सिंह = वर्षा कन्या, तुला = शरद् वृश्चिक, धनु = हेमन्त।

अधिकमास एवं क्षयमास - जिस मास में संक्रान्ति न हो उसे अधिकमास और जिस मास में दो संक्रान्तियाँ हो, उसे क्षयमास कहते हैं। अधिकमास प्रायश: 32 मास के पश्चात् आता है। क्षयमास 141 वर्षों पर आता है। जिस वर्ष क्षयमास होता है उस वर्ष दो अधिकमास होते हैं। एक क्षयमास से पहले और दूसरा क्षयमास के पश्चात्।

अधिकमास, शुक्रास्त एवं गुर्वस्त में वर्ज्य - श्रावणी, गृहारम्भ-गृहप्रवेश, मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह, तीर्थयात्रा, देवप्रतिष्ठा, कूप-तालाब-वापी का निर्माण, उद्याननिर्माण, नववस्रालंकारधारण, महादान, यज्ञकर्म, अपूर्वतीर्थदर्शन, संन्यास, वृषोत्सर्ग, राज्याभिषेक, दिव्यकर्म, गोदान, अष्टकाश्राद्ध, अन्नप्राशन, व्रतारम्भ तीज, करवाचौथ आदि व्रतोद्यापन मलमास एवं गुरू-शुक्र के अस्त होने पर नहीं करना चाहिए।

युग्मतिथियाँ - जब व्रत दो दिन पड़ता हो या दोनों दिन नहीं पड़ता हो, तब युग्मतिथियों के माध्यम से पूर्वविद्धा या परविद्धा तिथि व्रत ग्राह्य होती है।

1. द्वितीया-तृतीया का वेधग्राह्य है। ये युग्मतिथियाँ हैं। 2. चतुर्थी-पंचमी का वेधग्राह्य

है। ये युग्मतिथियाँ हैं। 3. षष्ठी-सप्तमी का वेधग्राह्य है। ये युग्मतिथियाँ हैं। 4. अष्टमी-नवमी का वेधग्राह्य है। ये युग्मतिथियाँ हैं। 5. एकादषी-द्वादषी का वेधग्राह्य है। ये युग्मतिथियॉ हैं। चतुर्दशी-पूर्णिमा का वेधग्राह्य है। ये युग्मतिथियाँ हैं। 6. अमावस्या-प्रतिपदा का वेधग्राह्य है। ये युग्मतिथियाँ है।

अपवाद युग्म तिथियाँ - 1. भगवती गौरी और भगवान् श्रीगणेश के व्रत में तृतीया और चतुर्थी तिथि का युग्म बनता है - चतुर्थीगणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते। रम्भातृतीया हमेशा द्वितीया विद्धा होती है। 2. श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत एवं दूर्वाष्टमीव्रत सप्तमी अष्टमी विद्धा ग्राह्य है। जन्माष्टमी में मध्यरात्रि में अष्टमी की अनिवार्यता स्वीकृत है। ज्येष्ठा देवी निमित्त अष्टमी व्रत सप्तमी एवं नवमी दोनों से विद्धा ग्राह्य है। कालभैरवाष्टमी मध्यरात्रिक होने से सप्तमी विद्धा भी ग्राह्य है।

उदयातिथि का महत्व - जिस तिथि में सूर्य का उदय होता है वह तिथि स्नान, दान, जप कार्य में सम्पूर्ण दिन ग्राह्य होती है।

यां तिथिं समनुप्राप्य उदयं याति भास्करः।
स तिथिः सकला ज्ञेया स्नानदानजपादिषु।।

यह वचन स्नान, जप तथा नवमी होम के लिए पूर्णतः ग्राह्य है।

व्रत परिभाषा - देवर्षि, ब्रह्मर्षि, ऋषि, मुनि, सिद्ध एवं परमाचार्यों द्वारा आदिष्ट प्रसिद्धि प्राप्त विषय के संकल्पविशेष को 'व्रत' कहते हैं। यह कामनापूर्ति कारक होता है। यह पूजन, उपवास और पारणा से संपुष्ट तीन अंगो वाला होता है। व्रतों के माध्यम से जीवन में अलम्य का लाभ एवं असाध्य की प्राप्ति होती है -

अभियुक्तप्रसिद्धिविशयो यः संकल्पविषेशः स एव व्रतम्।
तत्पूजनोपवासपारणारूपम्। उपवास एव व्रतम्।।

एक भक्त - रात्रि में उपवास करके दूसरे दिन मध्याह्न बीतने के पश्चात् (सूर्यास्त से तीन घण्टा पूर्व) पारण किया जाता है- मध्याह्नान्त्यदले त्रिभागदिवसे स्यादेकभक्तम्। इस व्रत में दोपहर में पूजन किया जाता है। एक भक्त व्रत में चौबीस घण्टे में एक बार दोपहर बाद भोजन ग्रहण कर सकता है। ब्रह्मचारी को एकभक्तव्रत करना चाहिए। एकभक्त व्रत में हमेशा मध्याह्न व्यापिनी तिथि में पूजन किया जाता है **- मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः। (पद्मपुराण, निर्णयसिन्धुः)**

नक्तव्रत- रात्रि में पारण करना नक्तव्रत कहलाता है। नक्तव्रत में तिथि प्रदोषव्यापिनी ग्राह्य होती है –

प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा॥

अयाचितव्रत - बिना मांगे जो कुछ मिल जाए उसे खाकर रहना, यदि नहीं मिले तो बिना खाये रहना 'अयाचितव्रत' कहलाता है। दूसरों से प्राप्त व्रत भी अयाचित कहलाता है। इसमें उपवास की प्रधानता होती है, पूजन की नहीं।

प्रदोष - सूर्यास्त के बाद तीन घटी (72 मिनट) का प्रदोषकाल होता है। प्रदोषो घटिकात्रयम्। स्कन्दपुराण के अनुसार त्रिमुहूर्त्त का प्रदोष होता है- 'त्रिमुहूर्त्तः प्रदोष: स्याद् रवावस्तंगते सति।'

प्रदोषकाल - सूर्यास्त के तीन घटी बाद तक 'प्रदोष काल' होता है। इसमें पूजन करके सूर्यास्त के तीन घटी बाद पारण किया जाता है। दिन भर उपवास रहकर रात्रि में प्रदोष के पश्चात् पारण करना नक्त व्रत है – **'निशायां भोजनं चैवं तज्ज्ञेयं नक्तमेव तु।' अत्रिसंहिता।**

सूर्यास्त से एक मुहूर्त्त (48 मिनट) पूर्व से लेकर नक्षत्र दर्शन काल तक नक्त कहलाता है -

मुहूर्त्तोनं दिनं नक्तं प्रवदन्ति मनीषिण:।
नक्षत्रदर्शनान् नक्तमहं मन्ये गणाधिप॥

व्रत में अनिवार्य - एक साथ दो रात्रि से अधिक उपवास नहीं करना चाहिए- द्विरात्राधिकोपासो न करणीयः। व्रत के दिन दातुन और ब्रश से मुख नहीं धोना चाहिए। पता या बारह कुल्ला से दन्तधावन करना चाहिए। प्रत्येक व्रत के प्रमुखदेवता होते हैं। अतः व्रत में संकल्पपूर्वक प्रधानदेवता का मन्त्र-जप-ध्यान-कथा-पूजन-कीर्तन-श्रवण आदि करना चाहिए। क्षमा-सत्य-दया-दान-शौच-इन्द्रियनिग्रह-देवपूजा-हवन-संतोष-अचौर्य ये दस तत्व व्रत के लिए अनिवार्य होते हैं-

क्षमासत्यंदयादानंशौचमिन्द्रियनिग्रहः। देवपूजा च हवनं सन्तोष: स्तेयवर्जनम्॥

(धर्मसिन्धु, प्रथम परिच्छेद, व्रतपरिभाषा।)

व्रतोपवास नाशकतत्व -

1. बार-बार अनावश्यक रूप से जल पीना। व्रतकाल में दो बार से अधिक जल नहीं पीना चाहिए। प्राणसंकट आने पर अधिक बार भी जल ले सकते हैं।

2. एक बार भी ताम्बूल चबाना। (सौभाग्यवती स्त्रियाँ करवाचौथ, तीजव्रत, गौरीव्रत आदि में उबटन-तेल लगा सकती हैं। साथ ही पान का चर्वण कर सकती है।)

3. व्रत के दिन, दिन में सोना।

4. व्रत के दिन अष्टविध मैथुन करना। (स्मरण, वार्ता, केलि, दर्शन, गुप्तसंवाद, संकल्प, निश्चय और क्रियापूर्ति ये आठ प्रकार का मैथुन होता है।

असकृज्जलपानाच्च सकृत्ताम्बूलचर्वणात्।
उपवासः प्रणश्येत् दिवास्वापाच्च मैथुनात्।।
स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च।।

5. चमड़े में रखा जल पीना।

6. गोदुग्ध के अतिरिक्त दुग्ध लेना।

7. मसूर, जम्बीरी नींबू, चूना ग्रहण करना।

8. अश्रुपात तथा क्रोध करना। जूआ खेलना।

9. झूठबोलना, पक्वान्न की सुगंध लेना। दूसरे के घर फलाहार या पारण करना।

10. तेल-उबटन व्रत गाना। बिना धुला वस्त्र पहनना। असत्य भाषण करना।

11. काँस्य पात्र में भोजन करना। दो बार फलाहार लेना। मधु खाना।

12. कायिक-वाचिक-मानसिक दस पापों को करना। दूसरों की वस्तु लेना, हिंसा करना, परस्त्रीगमन तीनकायिक, परूषवाणी, असत्यभाषण, चुगली, प्रलापकरना चारवाचिक, परधन पर नजर, दूसरे का अनिष्ट, मिथ्या कार्यों को करना ये दस पाप होते हैं।

अभ्यास प्रश्न -

1. एक मुहूर्त्त का मान होता है?

क. 1 घटी ख. 2 घटी ग. 3 घटी घ. 4 घटी

2. भारतीय मास क्रम में आषाढ़ के पश्चात् क्या आता है?

क. भाद्रपद ख. ज्येष्ठ ग. श्रावण घ. आश्विन

3. संवत्सर की संख्या कितनी है?

क. 30 ख. 40 ग. 50 घ. 60

4. अधिकमास कितने मास के पश्चात् आता है?

क. 22 ख. 32 ग.42 घ. 52

5. क्षयमास की पुनरावृत्ति कब होती है?

क. 141 वर्ष बाद ख. 150 वर्ष पश्चात् ग. 120 वर्ष पश्चात् घ. कोई नहीं

6. सूर्यास्त के बाद कितने मिनट के पश्चात् तक का प्रदोषकाल होता है।

क. 24 मिनट ख. 48 मिनट ग. 72 मिनट घ. 96 मिनट

व्रत में ग्राह्य भोज्यपदार्थ - 1. सांवा 2. नीवार (तिन्नी) 3. कुट्टू 4. सिंघाड़ा 5. तिल, 6. कन्द 7. गोदुग्ध 8. गोदही 9. गोघृत 10. आलू 11. आम्रफल 12. केला 13. नारीयल 14. हरें 15. पिप्पली 16. जीरा 17. सोंठ 18. आँवला 19. बड़हल 20. भूमि के भीतर उत्पन्न होने वाला कन्द-मूल आदि सफेद पदार्थ (लाल नही) 21. ईख का रस। इन पदार्थों को तेल में तलना वर्जित है। कोई-कोई गाय का मट्ठा और भैंस का घी भी हविश्य मानते हैं, पर यह सर्वसम्मत नहीं है। धर्मसिन्धुग्रन्थ में तिल, गेहूँ और मूँग को हविश्यान्न (फलाहार) में बतलाया गया है पर प्रायश: व्रती इनको अन्न मानकर ग्रहण नहीं करते।

जल, मूल पृथ्वी के भीतर उत्पन्न भोज्य पदार्थ, फल, दूध, हविश्य, ब्राह्मण की कामना, गुरू का वचन और औषध इन आठ पदार्थो से व्रत का भंग नहीं होता है। गुरू और ब्राह्मण की आज्ञा मानकर व्रत में किया हुआ आचरण व्रत भंग कारक नहीं होता। इसमें दोष आज्ञा देने वाला गुरू और ब्राह्मण के उपर पड़ता है। अतः गुरू और ब्राह्मण को अपने मुख से हमेशा धर्मयुक्त तथा सद्आचारण से युक्त आदेश को ही अपने शिष्य और यजमान से कहना चाहिए -

अष्टैतान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्।।

दो विरूद्ध व्रत - यदि एक ही दिन किसी व्रत का पारण हो और दूसरे व्रत का आरम्भ हो तो ऐसे में व्रत का पारणा करना अनिवार्य होता है - तन्नभोजनमेव कार्यम्। पारण विधि से प्राप्त है। तुलसीदल खाने से पारणा का फल मिलता है और व्रतभंग भी नहीं होता है।

रात्रिभोजन में अनिवार्यता - वारव्रत एवं चतुर्थीव्रत आदि में रात्रि भोजन करना ही प्रशस्त है - एवं रविवारादौ संकष्टचतुर्थ्यादिव्रतेरात्रिभोजनमेवकार्यम्। धर्मसिन्धु, प्रथमपरिच्छेद, व्रत सन्निपात। पारणा के दिन यदि एकादशी उपस्थित हो तो जल से पारणा करके उपवास करना चाहिए। जहाँ भी रूकावट आये वहाँ जल से पारण करनी चाहिए।

मुहूर्त्त - दो घटी (24 मिनट) का एक मुहूर्त कहलाता है - मुहूर्त्तोघटिकाद्वयम्।

ब्राह्म मुहूर्त्त - रात्रि का अन्तिम याम प्रहर 3 घण्टा ब्राह्म मुहूर्त्त कहलाता है - रात्रेस्तुपश्चिमोयामः

मुहूर्त्तोब्राह्मसंज्ञकः। यह सूर्योदय का पूर्ववर्तीकाल होता है।

यहाँ तक आपने व्रत से जुड़ी महत्वपूर्ण जानकारी का अध्ययन कर लिया है। अब आप प्रतिपदादि तिथियों में पड़ने वाले व्रत-निर्णय को समझिये।

1.4 प्रतिपदा से तृतीया तक के व्रत एवं निर्णय

प्रतिपदा के व्रत एवं निर्णय :-

चैत्रशुक्ल प्रतिपदा को संवत्सर आरम्भ की विधि, आरोग्यता हेतु व्रत (आरोग्यप्रतिपदव्रत), विद्याप्राप्ति हेतु व्रत (विद्याव्रत), शिवपूजन, नवरात्र में घटस्थापना, उवटन लेपन, बलिपूजा, गोक्रीडन, वष्टिकाकर्षण, अन्नकूट आदि इत्यादि अनेक व्रतों का उल्लेख प्राप्त होता हैं। आइये विस्तार से क्रमश: इनको समझने का प्रयास करते हैं -

ब्रह्मपुराण में लिखा है कि संवत्सर आरम्भ ज्ञानार्थ सूर्योदय व्यापिनी प्रतिपदा तिथि ही ग्रहण करनी चाहिये। क्योंकि इसी पुराण में लिखा हुआ है कि चैत्रमास की शुक्लप्रतिपदा को ब्रह्माजी ने सृष्टि रचना का आरम्भ किया था, उस दिन प्रतिपदा तिथि उदय व्यापिनी थी। यथा –

चैत्रे मासि जगद्ब्रह्म ससर्ज प्रथमेऽहनि। शुक्लपक्षे समग्रे तु सदा सूर्योदये सति।।

अत्र प्रतिपदसूर्योदयव्यापिनी ग्राह्या।

भविष्योत्तरपुराण में भी लिखा हुआ है कि ब्रह्मा जी ने मधुमास (चैत्रमास) के प्रवृत्त होने पर, उदयव्यापिनी प्रतिपदा तिथि को सृष्टि रचना प्रारम्भ किया था। यहाँ यदि दोनों दिनों की प्रतिपदा उदयव्यापिनी हो, अथवा दोनों दिनों में उदयव्यापिनी न हो तो पहला ग्रहण करना चाहिये। भास्कराचार्य द्वारा रचित सिद्धान्तशिरोमणि में भी सृष्टि रचना उल्लेख में वर्णित है –

लंकानगर्यामुदयाच्च भानो: तस्यैव वारे प्रथमं बभूव:।

मधो: सितादेर्दिनमासवर्ष युगादिकानां युगपत् प्रवृत्ति:।।

यह उक्त कथन का समर्थन करता है कि चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को ही सृष्टि रचना हुई थी।

इसी प्रकार आरोग्यता हेतु विष्णुधर्मोत्तरपुराण में आरोग्यप्रतिपद् व्रत का उल्लेख है। इसमें विधि-विधान से भगवान सूर्यनारायण की पूजा की जाती है तथा अन्न का एक ग्रास ही ग्रहण करना होता है। पश्चात् ब्राह्मण या गुरु की आज्ञानुसार यदि आवश्यकता हो तो शेष आहार ग्रहण कर जल पीना चाहिये। वस्तुत: यह व्रत पन्द्रह दिनों का होता है। जो संवत्सर की समाप्ति के पश्चात् शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ होकर प्रत्येक मास के शुक्ल प्रतिपदा तिथियों में ही (वर्षपर्यन्त) करना होता है। तथा

वर्षान्त में यह अन्तिम मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा तिथि में सम्पन्न होता है। इसे 'संवत्सर व्रत' तथा 'आरोग्यदायक व्रत' के नाम से भी जाना जाता है।

धर्मसिन्धु के अनुसार प्रतिपदा तिथि निर्णय

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा पूजा और व्रतादि में अपराह्णकालव्यापिनी हो, तो पूर्वविद्धा ग्रहण करना चाहिये। सांयकालीनव्यापिनी शुक्लप्रतिपदा भी पूर्वविद्धा ही लेना चाहिये, ऐसा आचार्य माधवाचार्य जी का मत है। यदि ऐसी स्थिति न हो तो द्वितीया से युक्त प्रतिपदा तिथि ग्रहण करना चाहिये। कृष्णपक्ष की कोई भी प्रतिपदा द्वितीया से युक्त हो, वही ग्रहण करना चाहिये। उपवास में दोनों पक्ष की प्रतिपदा पूर्वविद्धा ही लेनी चाहिये और अपराह्णव्यापिनी प्रतिपदा में करने योग्य उपवास आदि का संकल्प प्रभात (सुबह) में करना चाहिये। संकल्प काल में प्रतिपदा आदि तिथि के अभाव में भी संकल्प में प्रतिपदादि ही तिथि कहना उचित है, अमावस आदि नहीं कहना चाहिये। ऐसे ही ''शुद्ध द्वादशी उपवास के योग्य है'' इत्यादि स्थल में एकादशी व्रतप्रयुक्त संकल्प और पूजा आदि में भी एकादशी ही कहना चाहिये, द्वादशी नहीं। सन्ध्या, अग्निहोत्र आदि अन्य कर्मों में तत्कालव्यापिनी द्वादशी आदि लेना ऐसा आचार्य (धर्मसिन्धुकार) का मत है। संकल्प सूर्योदय के पहले उषाकाल में अथवा सूर्योदय के पीछे प्रात:काल के तीन मुहूर्त्तों में से पूर्व के दो मुहूर्त्तों में करना श्रेष्ठ है। प्रात:काल का तीसरा मुहूर्त्त निषेध माना गया है।

निर्णयसिन्धु के अनुसार प्रतिपदा तिथि निर्णय-

शुक्लपक्ष की प्रतिपदा यदि अपराह्ण में व्याप्त हो तो पहली ग्रहण करनी चाहिये। इस विषय में युग्म वाक्य है कि – जो प्रतिपदा अपराह्ण में व्याप्त हो, उसी को ग्रहण करना चाहिये, ऐसा स्कन्दपुराण में लिखा है। दीपिका में भी यह लिखा है कि – यदि प्रतिपदा अपराह्णव्यापिनी हो तो शुक्लपक्ष की प्रतिपदा पहली ही होती है। पाँच भाग करने से दिन के चौथे भाग को अपराह्ण कहते हैं। यदि उस समय न हो तो, सायंव्यापिनी ग्राह्य है। क्योंकि माधवाचार्य की यह उक्ति है, उसके अभाव में सायंव्यापिनी प्रतिपदा ग्रहण करनी चाहिये। मुहूर्त्तदीपिका के अनुसार प्रतिपदा को कूष्माण्ड पेठा अथवा काशीफल का परित्याग करना चाहिये।

द्वितीया के व्रत –

द्वितीया तिथि के अन्तर्गत कार्तिक के शुक्ल पक्ष की द्वितीया को यमद्वितीया कहते हैं। अपराह्णव्यापिनी यह ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि जो मनुष्य कार्तिक के शुक्लपक्ष की द्वितीया को यमुनाजी में स्नान करके अपराह्ण समय यम का पूजन करता है वो यमलोक

को नहीं देखता। किन्नरों से घिरे हुए यमराज, कार्तिक शुक्लपक्ष की द्वितीया के दिन तृप्त और प्रसन्न करने पर पूजन करने वाले को मनवांछित फल देते हैं, ऐसा स्कन्दपुराण में वर्णित है। यदि दो दिन द्वितीया हो, चाहे दोनों ही दिन मध्याह्नव्यापिनी हो, या न हो, तो दूसरी को ही यमद्वितीया माननी चाहिये। श्रावण में पहला तथा भाद्रपद में दूसरा एवं आश्विन में तीसरा और कार्तिक में चौथा ये चार यम द्वितीया होती हैं। श्रावणी का नाम कलुषा, तथा भादोंकी का नाम निर्मला एवं आश्विनकी का नाम प्रेतसंचारा और कार्तिक की द्वितीया का नाम यमद्वितीया है। इन चारों में से पहले में प्रायश्चित तथा दूसरी में सरस्वतीपूजा, तीसरी में श्राद्ध और चौथी यमद्वितीया में यम का पूजन होता है।

कार्तिकशुक्लद्वितीया यमद्वितीया। सा अपराह्न व्यापिनी ग्राह्या। ऊर्जे शुक्लद्वितीयायामपराह्नेऽर्चयेद्यमम्म्। स्नानं कृत्वा भानुजायां यमलोकं न पश्यति। ऊर्जे शुक्लद्वितीयायां पूजितस्तर्पितो यम:।।

द्वितीया तिथिनिर्णय

द्वितीया कृष्णपक्ष की पहली और शुक्लपक्ष की दूसरी ग्रहण करनी चाहिये, यह हेमाद्रि का मत है। दीपिका की उक्ति है कि – कृष्णपक्ष की द्वितीया पहले ग्रहण की जाती है यदि वह पूर्व दिन में हो तो और शुक्लपक्ष की तो दोनों ही प्रकार की दूसरी ग्रहण करनी चाहिये। माधव और अनन्तभट्ट के मत में सब द्वितीयायें पिछली ही होती हैं। माधवाचार्य का मत है कि जो द्वितीया प्रात: समय में न हो और दूसरे दिन तीन मुहूर्त्त हो तो उपवास में वह दूसरी द्वितीया ग्राह्य है और यदि ऐसा न हो तो पूर्वविद्धा अर्थात् प्रतिपदायुक्त ग्रहण करना चाहिये। यथा –

द्वितीयातुकृष्णापूर्वाशुक्लोत्तरेतिहेमाद्रि:। कृष्णाद्वितीयादिमा पूर्वाह्ण्येयदिसासितातुपरत: सतिदीपिकोक्ते:।। माधवानंतभट्टमतेतुसर्वापिद्वितीयापरा। तथाचमाधव: पूर्वेद्युरसतीप्रात:परेद्युस्त्रिमुहूर्त्तगा।। साद्वितीयापरो पोष्यापूर्वविद्धाततोन्यथेति।

तृतीया के व्रत

तृतीया का व्रत भगवती गौरी देवी से सम्बन्धित होता है। यह सौभाग्यप्रदायक होता है। इसमें सौभाग्यतृतीया 2. मनोरथतृतीया 3. अक्षयतृतीया 4. स्वर्णगौरीतृतीया 5. सुकृततृतीया 6. हरितालिकातृतीया 7. रम्भातृतीया आदि विषेश प्रसिद्धि प्राप्त व्रत हैं। त्रिमुहूर्त्तव्यापिनी उदयकालिकी तृतीया सर्वत्र ग्राह्य है। गौरी व्रत में स्वल्प द्वितीया विद्धा तृतीया भी अग्राह्य है- स्वल्पद्वितीया युक्तापि निशिद्धा। तृतीया का क्षय होने पर ही द्वितीया विद्धा तृतीया ग्राह्य होती है- तदा द्वितीया विद्धैव ग्राह्या। तृतीया की वृद्धि होने पर चतुर्थी युक्त तृतीया का ग्रहण करना चाहिए- तदा पूर्वा षुद्धां

शश्टिघटिकामपि त्यक्त्वा चतुर्थीयुतैव गौरीव्रते ग्राह्या। धर्मसिन्धु प्रथम परिच्छेद। ब्रह्मवैवर्तपुराण एवं आापस्तम्ब वचन के अनुसार चतुर्थी युक्त तृतीया ही फल देती है- ''चतुर्थी संयुता या तु सा तृतीया फलप्रदा।'' केवल ज्येश्ठशुक्ल की रम्भा तृतीया द्वितीया विद्धा ग्राह्य होती है। रम्भा तृतीया सूर्यास्त से तीन मुहूर्त्त 6 घटी पूर्व अवश्य प्राप्त होनी चाहिए। ऐसी स्थिति में यह द्वितीया विद्धा होती है। रम्भा तृतीया का निर्णय अपवाद है। अप्सरा रम्भा ने भगवती गौरी की आराधना कर सौभाग्य प्राप्त किया था।

तृतीया तिथिनिर्णय –

सभी आचार्यो के मत में रम्भा नाम की तृतीया को छोड़ अन्यत्र सभी दूसरी ही ग्राह्य है। अतएव रम्भा नाम की तृतीया के व्रत में युग्म वाक्य है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में लिखा है कि – हे द्विजोत्तम! रम्भा तृतीया के व्रत को छोड़कर अन्य सम्पूर्ण कार्यो में चतुर्थी युक्त तृतीया श्रेष्ठ मानी गयी है। गौरी के व्रत में माधव ने विशेषता कही है कि दूसरे दिन यदि तृतीया मुहूर्त्त मात्र भी हो तो भी गौरी का व्रत उसी दूसरे दिन करना चाहिये। यदि शुद्ध तृतीया की वृद्धि हो गई तो भी दूसरे ही दिन गौरी व्रत कर्त्तव्य है, क्योंकि चतुर्थीसमन्वित तृतीया की आचार्यो ने प्रशंसा भी की है। यथा -

तृतीयातुसर्वमतेरंभाव्यतिरिक्तापरैव। तेनयुग्मवाक्यंरंभाव्रतविषयम्।।
रंभाख्यांवर्जयित्वातुतृतीयांद्विजसत्तम।। अन्येषुसर्वकार्येषुगुणयुक्ताप्रशस्यतइतिब्रह्मवैवर्त्तात्।
गौरीव्रतेतुविशेषमहामाधव: मुहूर्त्तमात्रसत्वेपिदिनेगौरीव्रतंपरे।।
शुद्धाधिकायामप्येवंगायोगप्रशंसनादिति।।

1.5 चतुर्थी से पंचमी पर्यन्त व्रत तथा तिथिपरक निर्णय

चतुर्थी के व्रत

चतुर्थी का व्रत भगवान श्रीगणेश से सम्बन्धित होता है। इस व्रत को करने से विद्या, संतान, निर्विघ्नता, जीविका, सफलता तथा समृद्धि की प्राप्ति होती है। तृतीया विद्धा चतुर्थी हमेशा शुभ होती है। देवगुरू वृहस्पति के अनुसार -

चतुर्थी गणनाथस्य मातृविद्धा प्रशस्यते। मध्याह्नव्यापिनी चेत् स्यात् परतश्चेत् परेऽहनि।।

शुक्लपक्ष की चतुर्थी मध्याह्न ग्राह्य होती है। कृष्णपक्ष की चतुर्थी चन्द्रोदयव्यापिनी ग्राह्य है। शुक्लपक्षीय चतुर्थी को वैनायिकी तथा कृष्णपक्षीय चतुर्थी को संकष्टी कहते हैं। धर्मसिन्धु प्रथम परिच्छेद के अनुसार -

गौरीविनायकयोस्तु मध्याह्नव्यापिनीग्राह्या। संकष्टीचतुर्थी तु चन्द्रोदयव्यापिनीग्राह्या।।

पंचमी के व्रत

चैत्रशुक्ल पंचमी कल्प के आदि की तिथि कही गई है, यह हेमाद्रि ग्रन्थ में मत्स्य पुराण में कहा है कि ब्रह्मा जी के दिन के आदि की जो तिथि है, उसे कल्पादि तिथि कहते हैं, ये सात हैं – 1. वैशाख शुक्ल तृतीया 2. फाल्गुन कृष्ण तृतीया 3. चैत्रशुक्ल पंचमी 4. चैत्र कृष्ण पंचमी 5. माघ शुक्ल त्रयोदशी 6. कार्तिक शुक्ल सप्तमी 7. मार्गशीर्ष शुक्ल नवमी। पंचमी तिथि में प्रमुख रूप से नागपंचमी, वसन्तपंचमी, ऋषिपंचमी आदि व्रत होता हैं।

माघ शुक्ल पंचमी को वसन्त की प्रवृत्ति मानते हैं, यह तिथि मध्याह्नव्यापिनी ग्रहण करनी चाहिये। यदि दो दिन यह मध्याह्नव्यापिनी हो अथवा दोनों ही दिन न हो तो पूर्व का ग्रहण करना चाहिये, इसमें भगवान विष्णु की पूजा करनी चाहिये। मुख्यतया वसन्त पंचमी को सरस्वती पूजा के रूप में मनाने का प्रचलन है। नागपंचमी भाद्रपद शुक्ल पंचमी को मनाने का विधान है। द्वादश महानाग हैं – अनन्त, वासुकि, शेष, पद्म, कंबल, कर्कोटक, अश्वतर, धृतराष्ट्र, शंखपाल, कालिय, तक्षक एवं पिंगल। इनकी श्रावण आदि मासों में क्रम से पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार श्रावण शुक्ल की पंचमी को नागदष्टव्रत का भी विधान कहा गया है।

पंचमी तिथि के व्रतों में एक प्रमुख व्रत ऋषिपंचमी भी है। यह व्रत भाद्रपद शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को धारण करना चाहिये। इस व्रत का विधान मध्याह्न व्यापिनी तिथि में कहा गया है।

हारीत की उक्ति है कि – चाहें देवकार्य हो अथवा पितृकार्य हो और चाहें कृष्णपक्ष हो अथवा शुक्लपक्ष हो परन्तु पंचमी चतुर्थी युक्त ही ग्राह्य है, षष्ठीयुक्त नहीं। हारीत के मतानुसार कृष्णपक्ष की पंचमी पहली और शुक्लपक्ष की दूसरी श्रेष्ठ है। हारीत की यह युक्ति उपवास के विषय में है।

अभ्यास प्रश्न – 2

1. किस पुराण के अनुसार ब्रह्मा जी ने सृष्टि रचना चैत्रशुक्ल प्रतिपदा को आरम्भ किया था?
   क. पद्मपुराण ख. लिंग पुराण ग. स्कन्द पुराण घ. ब्रह्मपुराण
2. शुक्लपक्ष की प्रतिपदा पूजा और व्रतादि में अपराह्नकालव्यापिनी हो, तो कब ग्रहण करना चाहिये
   क. पूर्वविद्धा ख. परविद्धा ग. अपराह्नव्यापिनी घ. मध्याह्नव्यापिनी
3. द्वितीया कृष्णपक्ष की पहली और शुक्लपक्ष की दूसरी ग्रहण करनी चाहिये, यह किसका मत है?
   क. कमलाकर ख. हेमाद्रि ग. व्रतराजकार का घ. भास्कर का
4. तृतीया विद्धा चतुर्थी हमेशा कैसी होती है?
   क. शुभ ख. अशुभ ग. सामान्य घ. कोई नहीं

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि व्रत-पर्व महोत्सव तथा जयन्तियों के संदर्भ में पंचांगकारों, ज्योतिषियों, धर्मशास्त्रियों, पुराणज्ञों और लोकव्यवहार में सक्षम विद्वानों द्वारा निर्णय लेना अनिवार्य होता है। धर्मशास्त्र अनुमोदित व्रत-पर्व ही अदृष्ट फल देने में सक्षम होते हैं।

अक्षांश और रेखांश के बदले जाने से अनेक बार तिथि और नक्षत्र के मान में अन्तर आ जाता है। ऐसे में अपवाद स्वरूप कुछ व्रत-पर्व दो दिन हो जाते हैं। सूर्योदय काल में तिथि और नक्षत्र के मान अल्प होने पर ऐसी घटना यदा-कदा सामने आती है।

एक दिन एक ही तिथि में कई बार अनेक व्रत पड़ते हैं। इन व्रतों का संकल्प और उद्देश्य के माध्यम से व्रतकर्त्ता एक ही दिन में सम्पन्न करता है। अतः इससे कोई समस्या नहीं आती है। उदाहरण के लिए चैत्रशुक्लप्रतिपदा के दिन एक ही व्यक्ति एक ही दिन में अलग-अलग संकल्प के द्वारा इष्टि, वासन्तिक नवरात्रिपाठ, वर्षपतिपूजन, ध्वजारोहण, गौरीयात्रा, धर्मघटदान तथा कल्पादि श्राद्ध कर सकता है। यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्रत के लिए अलग संकल्प लिया जाय और तत्सम्बन्धी देवता का पूजन अलग से किया जाय। अतः एक ही दिन में पड़ने वाले अनेक व्रत एक दूसरे के विरोधी नहीं होते । अलग- अलग व्रतों के माध्यम से अलग-अलग कामनाओं की पूर्ति होती है।

त्रिमुहूर्त्त व्यापिनी तिथि का धर्मशास्त्रीय महत्व होता है। मुहूर्त्तो घटिकाद्वयम् के अनुसार दो घटी का एक मुहूर्त्त होता है। अतः त्रिमुहूर्त्त का अर्थ है छः घटी। एक घटी = 24 मिनट । यदि सूर्योदयकाल के पश्चात् कोई तिथि छः घटी से कम हो तो धर्मकार्य हेतु उस पर गहन विचार कर निर्णय लेना पड़ता है। छः घटी दो घण्टा चौबीस मिनट की होती है।

1.6 पारिभाषिक शब्दावली

व्रत – देवर्षि, ब्रह्मर्षि, ऋषि, मुनि, सिद्ध एवं परमाचार्यों द्वारा आदिष्ट प्रसिद्धि प्राप्त विषय के संकल्पविशेष को 'व्रत' कहते हैं।

अधिकमास – जिस चान्द्रमास में सूर्य की कोई संक्रान्ति न हो, उसका नाम अधिमास है। यह 32 मास के पश्चात् आता है।

क्षयमास – जिस चान्द्रमास में सूर्य की दो संक्रान्ति हो, उसका नाम क्षयमास है। यह 141 वर्ष के पश्चात् आता है।

मधुमास – चैत्र मास का वैदिक नाम मधुमास है।

कल्प – ब्रह्मा के दिनमान की इकाई का नाम 'कल्प' है।

महानाग – महानागों की संख्या 12 हैं।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1.ख 2. ग 3. घ 4. ख 5. क 6. ग

अभ्यास प्रश्न – 2 की उत्तरमाला

1. घ 2. क 3. ख 4. क

1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. व्रतराज - मूल लेखक- विश्वनाथ शर्मा, टिका – माधवाचार्य
2. निर्णयसिन्धु – कमलाकर
3. धर्मसिन्धु –
4. मुहूर्तचिन्तामणि– पीयूषधारा टिका।
5. आपस्तम्ब धर्मसूत्र–

1.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. व्रतराज
2. धर्मसिन्धु
3. निर्णयसिन्धु
4. आपस्तम्ब धर्मसूत्र
5. मुहूर्तचिन्तामणि – पीयूषधारा टिका

1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्रत का परिचय दीजिये?
2. प्रतिपदा से तृतीया तिथि तक के व्रतों का वर्णन कीजिये।
3. चतुर्थी एवं पंचमी तिथि निर्णय का उल्लेख कीजिये।
4. प्रतिपदा से पंचमी तिथि निर्णय का प्रतिपादन कीजिये।
5. चतुथी एवं पंचमी तिथि के व्रतों का वर्णन कीजिये।

इकाई - 2 षष्ठी से दशमी तिथिपरक निर्णय

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के चतुर्थ खण्ड की दूसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – षष्ठी से दशमी तिथि परक निर्णय। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने प्रतिपदा से पंचमी तिथि तक के व्रत एवं उसके निर्णयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप उसके आगे षष्ठी तिथि से दशमी तिथि पर्यन्त के व्रतों एवं तिथिपरक निर्णयों का अध्ययन करने जा रहे हैं।

यद्यपि प्रत्येक तिथि में व्रत का विधान होता हैं, किन्तु कई बार उसके निर्णयों में भेद दिखलाई पड़ता है। अत: षष्ठी से दशमी तिथिपरक निर्णय का शास्त्रीय अध्ययन कर आप उसे समझ सकेगें।

इस इकाई में हम षष्ठी से लेकर दशमी तिथि तक के व्रतों का अध्ययन करेंगे तथा उनका धर्मशास्त्रीय निर्णय को भी शास्त्रानुरूप समझने का प्रयास करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात् आप –

- समझ लेंगे कि षष्ठी से दशमी तिथि में कौन-कौन से व्रत होते है।
- जान जायेंगे कि व्रतों का धर्मशास्त्रीय निर्णय कैसे होता है।
- षष्ठी तिथि से दशमी तिथि तक के व्रतों को भी जान जायेंगे।
- षष्ठी से दशमी तिथिपरक निर्णय का भली-भाँति ज्ञान कर लेंगे।
- व्रतों के महत्व का प्रतिपादन कर सकेंगे।

2.3 षष्ठी तिथि के व्रत एवं तिथिपरक निर्णय

व्रतराज ग्रन्थानुसार षष्ठी तिथि में ललिताव्रत, कपिलाषष्ठी, सूर्यषष्ठी (छठ), स्कन्धषष्ठी एवं चम्पाषष्ठी आदि व्रत का विधान हैं। इन व्रतों में बिहार, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश तथा उत्तरभारत के कई प्रान्तों में मनाने जाने वाला सूर्यषष्ठी (छठ) प्रमुख है।

ललिताव्रत भाद्रपद शुक्लपक्ष के षष्ठी तिथि को होता है। यह हेमाद्रि ने भविष्यपुराण को लेकर लिखा है। यहाँ मध्याह्नव्यापिनी तिथि लेना चाहिये, मध्याह्नव्यापिनी हो अथवा न हो पूर्वा ही

ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि इसमें जागरण प्रधान है, जागरण रात में होता है उसमें तिथि रहनी ही चाहिये। यह गुर्जर देश में प्रसिद्ध है।

भाद्रशुक्लषष्ठयां ललिताव्रतं हेमाद्रौ भविष्ये। सा मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या। दिनद्वये तव्द्याप्तावव्याप्तौ वा पूर्वा, जागरणप्रधानत्वात्। इदं गुर्जर देशे प्रसिद्धम्।।

कपिलाषष्ठी का व्रत भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की षष्ठी तिथि को मनाने का विधान है। यह व्रत योग विशेष रूप से पूर्वविद्धा और परविद्धा दोनों में ही होता है। अर्थात् जो योग चाहिये वह जिसमें हों, वही ग्रहण कर ली जाती है। पुराणों के अनुसार जिस भाद्रपद कृष्णषष्ठी के दिन हस्त नक्षत्र में सूर्य हो एवं व्यतीपात रोहिणी नक्षत्र और मंगलवार का योग हो तो वह कपिला कहायेगी, यह ब्रह्माजी का निर्देश है।

सूर्यषष्ठी व्रत (छठ व्रत) कार्तिकशुक्ल पक्ष की षष्ठी को मनाने का विधान है। यह तीन दिवस का व्रत है। जो कि खरना से आरम्भ होकर तीसरे दिन की सूर्योदय के अर्घ्य के पश्चात् समाप्त होता है।

स्कन्दषष्ठी कार्तिक में होता है। यह पंचमी योगवाली ग्राह्य है। क्योंकि भृगुस्मृति में यह कहा है कि, कृष्णजन्म की अष्टमी, स्वामी कार्तिकेय कि व्रत की षष्ठी और शिवरात्रि व्रत की चतुर्दशी ग्रहण करनी चाहिये, किन्तु पारण व्रत की तिथियों के अन्त में ही करना चाहिये। अर्थात् कृष्णाष्टमी का नवमी में, स्कन्दषष्ठी का सप्तमी में, शिवरात्रि का अमावस्या में। और तिथिभान्ते च पारणम् यह भी सिद्धान्त वचन है अर्थात् तिथिप्रधान व्रत तिथि के अन्त में और नक्षत्रप्रधान व्रत नक्षत्र के अन्त में समाप्त करने चाहिये।

चम्पाषष्ठी का व्रत भाद्रपद या मार्गशीर्ष मास में शुक्लपक्ष की षष्ठी के दिन होता है, यह हेमाद्रि ग्रन्थ में स्कन्दपुराण से कहा गया है। यह सप्तमी के साथ सम्बन्ध रखने वाली ग्राह्य हैं, क्योंकि षट् –छठ और मुनि-सात यह दोनों का वाक्य है अर्थात् इन दोनों तिथियों के सम्मेलन में पूर्वा ग्रहण करनी चाहिये, यह सिद्धान्त है।

षष्ठी तिथि निर्णय

स्कन्द के व्रत को छोड़ और सर्वत्र षष्ठी सभी आचार्यो के मत में युग्मवाक्य से पिछली ही होती है। स्कन्दपुराण में लिखा है कि पंचमीयुक्त छठ कदापि ग्राह्य नहीं है। निर्णयामृत में लिखा है कि – सप्तमीयुक्त षष्ठी हो और उसी दिन रविवार हो तो पद्मकनामक योग होता है और वह योग सूर्य के करोड़ो ग्रहणों के समान माना गया है।

षष्ठीसर्वमतेस्कन्दव्रतातिरिक्तापरैव। युग्मवाक्यात्। नागविद्धानकर्त्तव्या षष्ठीचैवकदाचनेस्तिककांदाच्च।। निर्णयामृते षष्ठीचसप्तमीचैवारश्चेदंशुमालिन:।।

योगोयंपद्मकोनामसूर्यकोटिग्रहै: सम:।।

2.3.1 सप्तमी के व्रत एवं निर्णय -

सप्तमी तिथि में व्रतों के अन्तर्गत गंगा सप्तमी, शीतलासप्तमी, मुक्ताभरणसप्तमी, रथसप्तमी एवं अचलासप्तमी प्रमुख रूप से हैं।

गंगासप्तमी वैशाख शुक्ल में आती है, इस दिन गंगाजी पुन: प्रकट हुई थीं। इसमें गंगा जी का पूजन होता है। पृथ्वी चन्द्रोदय ग्रन्थ में ब्रह्मपुराण से कहा है कि, राजर्षि जह्नु से पहले क्रोध में आ गंगा पीली थी पीछे इस सप्तमी को उनके कान से नग्न कन्या के रूप में दिगम्बर ही प्रकट हुई, अतएव इस दिन ऐसी ही गंगा का पूजन करना चाहिये।

शीतलासप्तमी व्रत शुक्ल पक्ष से मासारम्भ के मानानुसार श्रावण वदि सप्तमी को करना चाहिये, जब कि सप्तमी मध्याह्न व्यापिनी हो। ऐसे ही कालमाधव में हारीतस्मृतिका प्रमाण मिलता है कि पूजाप्रधान व्रतों में मध्याह्नव्यापिनी तिथि ग्राह्य है।

भविष्यपुराण के प्रमाण से हेमाद्रि में निरूपित मुक्ताभरण व्रत भाद्रपदशुक्लसप्तमी में होता है। इसमें मध्याह्नव्यापिनी का ग्रहण होता है। यदि दोनों दिन मध्याह्नव्यापिनी हो अथवा दोनों ही दिन न हो तो पराका ग्रहण होता है। रथसप्तमी व्रत अरूणोदयव्यापिनी ग्राह्य है।

अचलासप्तमी व्रत का विधान भी सप्तमी तिथि को ही हैं। यह माघसूदी सप्तमी में स्नान-दान का महत्व है।

सप्तमी तिथि निर्णय

स्कन्दपुराण के अनुसार सप्तमी षष्ठीसहित ग्रहण करनी चाहिये। यह युग्मवाक्य से पहले ही ग्राह्य है।

सप्तमीपूर्वैवयुग्मवाक्यात् षष्ठ्यायुतासप्तमीचकर्त्तव्यातातसर्वदेतिस्कांदाच्च।।

2.3.2 अष्टमी के व्रत और निर्णय

शुक्ल एवं कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि में अनेक महत्वपूर्ण व्रत होते हैं। इनका अपना अलग प्रभाव प्रभाव एवं स्थिति होती है। कतिपय महत्वपूर्ण व्रतों पर विचार किया जा रहा है -

1. भवानी अष्टमीव्रत - चैत्र शुक्ल अष्टमी तिथि को भवान्यष्टमी व्रत होता है। आज के दिन भवानी की उत्पत्ति हुई थी। यह नवमी विद्धा ग्राह्य होती है - भवानीं यस्तु पश्येत शुक्लाष्टम्यां मधौ नरः। न जातु शोकं लभते सदानन्दमयो भवेत्।। इस व्रत को करने से शोक का नाश और आनन्द की प्राप्ति होती है।

2. अशोकाष्टमीव्रत - 1.चैत्र शुक्ल अष्टमी तिथि में पुनर्वसु नक्षत्र एवं बुधवार हो तो अतिप्रशस्त अशोकाष्टमी व्रत होता है। आज के दिन अशोक की आठ कलिका का भक्षण करना शोक मुक्ति का

कारक होता है- अशोककलिकाश्चाष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ। चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः।। हेमाद्रि।

कलिका भक्षण करने से पूर्व निम्नलिखित प्रार्थना करनी चाहिए -

त्वामशोक वराभीष्टं मधुमाससमुद्भवम्। पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरू।।

3. बुधाष्टमी व्रत - शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि यदि बुधवार को पड़े तो बुधाष्टमी व्रत होता है। यह व्रत परविद्धा अर्थात् नवमीविद्धा किया जाता है। चातुर्मास, चैत्रमास एवं संध्या में इस व्रत को नहीं करना चाहिए- चैत्रे मासि च सन्ध्यायां प्रसूते च जनार्दने। बुधाष्टमी न कर्तव्या हन्ति पुण्यं पुराकृतम्।।

4. जन्माष्टमी व्रत - भाद्रपद-कृष्णपक्ष की मध्यरात्रि में अष्टमी तिथि और रोहिणी नक्षत्र के योग में श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत होता है। इसे करने से भगवाऩ वासुदेव श्रीकृष्ण की कृपा होती है।

5. ज्येष्ठादेवी अष्टमीव्रत - भाद्रपद शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि और ज्येष्ठा नक्षत्र के योग से दुःख दारिद्रय नाशक ज्येष्ठा अष्टमी व्रत होता है। ज्येष्ठा और अष्टमी का योग चाहे सप्तमी विद्धा में हो अथवा नवमी विद्धा में हो, प्रशस्त होता है। सूर्य के कन्या राशि में होने पर यह व्रत और महत्वपूर्ण होता है। ज्येष्ठा देवी के पूजन से सुख, सम्पत्ति, आयु की प्राप्ति होती है। अनुराधा में देवी का आवाहन, ज्येष्ठा में व्रत-पूजन तथा मूल नक्षत्र में विसर्जन करना चाहिए।

6. दुर्वाष्टमीव्रत- भाद्रपद शुक्ल अष्टमी तिथि को दूर्वा की पूजा करने से वंशवृद्धि एवं आयुवृद्धि होती है। यह पूर्वविद्धा ग्राह्य है। कन्या के सूर्य में ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र में इसे नहीं करना चाहिए। सिंह के सूर्य में यह प्रशस्त होती है- शुक्लाष्टमी तिथिर्या तु मासि भाद्रपदे भवेत्। दूर्वाष्टमीति विज्ञेया नोत्तरा सा विधीयते। सिंहार्के एव कर्तव्या न कान्यार्के कदाचन। इसे अगस्त्योदय से पहले करना चाहिए। यह अधिक मास के सिंहार्क में भी किया जाता है। पवित्र भूमि से दूर्वा उखाड़कर उसके उपर शिवलिंग की स्थापना कर भगवान् त्रिलोचन शिव की पूजा की जाती है। उनके उपर सफेद दूर्वा और शमी चढ़ाई जाती है। इस व्रत के प्रभाव से व्यक्ति विद्या, पुत्र, पुत्री, धर्म, अर्थ और पुण्य को प्राप्त करता है। दूर्वाष्टमी व्रत करने से सात पीढ़ियों तक संतान सुखी रहती है। दूर्वा पूजन का मन्त्र निम्नवत् है -

त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दितासि सुरैरपि। सौभाग्यं सन्ततिं देहि सर्वकार्यकारी भव। यथा शाखाप्रशाखाभिर्विस्तृतासि महीतले। तथा विस्तृतसंतानं देहि त्वमजरामरे।

7. महालक्ष्मी अष्टमीव्रत - भाद्रपद शुक्ल अष्टमी से आरम्भ कर आश्विनकृष्ण अष्टमी चन्द्रोदय व्यापिनी तक चलने वाला यह व्रत 'महालक्ष्मी व्रत' कहलाता है। यह सोलह दिनों का होता है।

ज्येष्ठा नक्षत्र अष्टमी के योग से यह और उत्तम होता है। इसके अभाव में भी अर्धरात्रि व्यापिनी अष्टमी में इसे आरम्भ किया जाता है। काशी के लक्ष्मी कुण्ड पर स्थिति लक्ष्मी मंदिर में पूजन का विषेश महत्व है। श्री, लक्ष्मी, वरदा, विष्णुपत्नी, क्षीरसागरवासिनी, हिरण्यरूपा, सुवर्णमालिनी, पद्मवासिनी, पद्मप्रिया, मुक्तालंकारिणी, सूर्या, चन्द्रानना, विश्वमूर्ति, मुक्ति, मुक्तिदात्री, ऋद्धि, समृद्धि, तुष्टि, पुष्टि, धनेश्वरी, श्रद्धा, भोगिनी, भोगदात्री, धात्री इन चौबीस नामों से भगवती की पूजा की जाती है।

8. महाष्टमी व्रत- आश्विन मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि के दिन दक्षयज्ञविनाशिनी, भगवती भद्रकाली का प्रादुर्भव हुआ था। सप्तमी विद्धा अष्टमी सर्वथा त्याज्य होती है। उदयकाल में त्रिमुहूर्त्त न्यून होने पर भी सप्तमी रहिता ही करना चाहिए। इसे नवमी विद्धा करनी चाहिए- स्तोकापि सा तिथिः पुण्या यस्यां सूर्योदयो भवेत्। अष्टमी के क्षय में सप्तमी विद्धा भी की जाती है - अलाभे तु सप्तमीयुतैव कार्या। आज के दिन सप्तशती का पाठ करके भगवती को प्रसन्न किया जाता है।

9. अशोकाष्टमीव्रत - आश्विन मास के कृष्णपक्ष के अष्टमी तिथि के दिन अशोकाष्टमी व्रत होता है। आदित्यपुराण में इसका वर्णन प्राप्त है। इसमे चन्द्रोदय से पूर्व पारणा कर लेन चाहिए। इस व्रत के प्रभाव से जीवन शोकरहित होता है। व्रतराज ।

10. कालभैरवाष्टमीव्रत - मार्गषीर्श मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को कालभैरवाष्टमी कहते है। यह रात्रिव्यापिनी ग्राह्य है - सा च रात्रिव्यापिनी ग्राह्या। आज की रात्रि में ही कालभैरव की उत्पत्ति हुई थी। काशी के कालोदक कुण्ड में स्नान करके तर्पण करने का भी महत्व है। इस व्रत के प्रभाव से शिवलोक की प्राप्ति होती है ।

11. श्रीशीतलाष्टमीव्रत - यह व्रत चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़मास की अष्टमी उदया तिथि में किया जाता है। इसमें बासी पर्युशित खीर-पुड़ी प्रसाद ग्रहण किया जाता है। यह एक वर्श में चार बार आता है।

अभ्यास प्रश्न

1. निम्न में सूर्यषष्ठी को किस अन्य नाम से भी जानते हैं?

   क. स्कन्दषष्ठी ख. लोलार्कषष्ठी ग. छठ पर्व घ. कोई नहीं

2. किस पुराण के अनुसार पंचमीयुक्त छठ कदापि ग्राह्य नहीं है?

   क. भविष्य पुराण ख. मार्कण्डेय पुराण ग. स्कन्द पुराण घ. विष्णु पुराण

3. मार्गषीर्श मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को क्या कहते हैं?

क. जन्माष्टमी   ख. अशोकाष्टमी   ग. महाष्टमी   घ. कालभैरवाष्टमी

4. चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़मास की अष्टमी उदया तिथि में किये जाने वाले व्रत का क्या नाम है?

क. शीतलाष्टमी   ख. महाष्टमी   ग. भैरवाष्टमी   घ. अशोकाष्टमी

5. भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि रोहिणी नक्षत्र में कौन सा व्रत होता है?

क. जन्माष्टमी   ख. नन्दाष्टमी   ग. अशोकाष्टमी   घ. महाष्टमी

अष्टमी तिथि निर्णय

सभी व्रतों में शुक्लपक्ष के अन्तर्गत परविद्धा अष्टमी ग्रहण करना चाहिये तथा कृष्णपक्ष में पूर्वविद्धा। मिश्रित शिवशक्ति के उत्सव में कृष्णपक्ष की दूसरे दिन की ही ग्रहण करनी चाहिये। शुक्लपक्ष में बुधाष्टमी प्रभात से आरम्भ करके अपराह्नकाल अर्थात् तीसरे प्रहर तक दो घड़ी भी बुधवार से युक्त हो वह ग्रहण करनी चाहिये। सायंकाल में चैत्र, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन मासों में और कृष्णपक्ष में होने वाली बुधाष्टमी नहीं ग्रहण करनी चाहिये। जब-जब शुक्लपक्ष की अष्टमी को बुधवार आवे, तब-तब एकभक्त आदि व्रत में उसको ग्रहण करना चाहिये। सन्ध्या के समय चैत्रमास में और देवशयन में बुधाष्टमी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उपरोक्त निषिद्ध समय में बुधाष्टमी करने से पूर्वजन्मार्जित पुण्यों का भी यह नाश कर देती है।

जन्माष्टमी व्रतम् -

कृष्णादिमासेन भाद्रकृष्णाष्टम्यां जन्माष्टमीव्रतम्। तच्च अर्धरात्रव्यापिन्यां कार्यम् ''रोहिण्या सहिता कृष्णा मासि भाद्रपदेऽष्टमी।। अर्धरात्रे तु योगोऽयं तारापत्युदये तथा। नियतात्मा शुचि: सम्यक्पूजां तत्र प्रवर्तयेत्।''

भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि रोहिणी नक्षत्र में जन्माष्टमी व्रत होता है। इसमेंअर्धरात्रव्यापिनी अष्टमी होनी चाहिये। इसमें रात्रिपूजन का विधान है। कारण यह है कि भगवान श्रीकृष्ण का जन्म भाद्रपद कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में अर्धरात्रि को हुआ था, और उन्हीं के जन्मोत्सव के रूप में जन्माष्टमी व्रत का विधान है। अत: निशिथव्यापिनी अष्टमी में ही इस व्रत को धारण करना चाहिये।

अब प्रश्न उठता है कि यदि अष्टमी दो दिन हो तो क्या होगा? ऐसी परिस्थिति में आचार्यों का कथन है कि यदि दो दिन अर्धरात्रव्यापिनी अष्टमी मिले तो पर का अर्थात् बाद की तिथि को ग्रहण करना चाहिये। इसके तीन कारण है – प्रथम तो यह है कि परा (बाद की) मानने से प्रात:काल व्रत संकल्प

में अष्टमी मिल जायेगी। दूसरा यह कि रात-दिन यह अष्टमी रहेगी। और तीसरा की ब्रह्मवैवर्तपुराण में ऐसा कहा है कि सप्तमी के साथ रहनेवाली अष्टमी को प्रयत्नपूर्वक छोड़ देना चाहिये। इन तीनों कारणों से दो दिन अर्धरात्रव्यापिनी होने या न होने में परा का ही ग्रहण करना चाहिये। पूर्व का ग्रहण उस समय होता है जबकि प्रथम दिन अर्धरात्रव्यापिनी अष्टमी हो, दूसरे दिन रोहिणी नक्षत्र के साथ अष्टमी हो, पर निशीथ का स्पर्श न करती हो, इसमें कारण यही है कि पूर्व में अर्धरात्र के पूजन के समय अष्टमी बनी रहती है पर उत्तरा में नहीं रहती।

तिथि और नक्षत्र व्यतीत हो जाने पर व्रत के पारण का विधान बतलाया गया है। अष्टमी तिथि और रोहिणी नक्षत्र के रहते पारण निषेध है।

2.4 नवमी एवं दशमी तिथि के व्रत और निर्णय –

नवमी तिथि के व्रतों में मुख्य रूप से रामनवमी, नवरात्र, अक्षयनवमी, महानवमी, भद्रकाली एवं अदु:खनवमी व्रत आदि है।

रामनवमी – चैत्रशुक्लनवम्यां रामनवमीव्रतम्। इदं च परविद्धायां मध्याह्नव्यापिन्यां कार्यम्। तदुक्तमगस्त्यसंहितायाम्- चैत्रशुक्ला तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि। सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्। दिनद्वये ऋक्षयोगे मध्याह्नव्याप्तावेकदेशव्याप्तौ वा पराऽन्यथा पूर्वा। ततुक्तं तत्रैव – नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणै:। उपोषणं नवम्यां वै दशम्यां पारणं भवेत्। तत्रैव – चैत्रमासे नवम्यां तु जातो राम: स्वयं हरि:।। पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा तिथि: सर्वकामदा।। श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिका।। केवलापि सदोपोष्या नवमीशब्दसंग्रहात्।। तस्मात्सर्वात्मना सर्वै: कार्यं वै नवमीव्रतम्।।

चैत्रशुक्लपक्ष की नवमी तिथि को रामनवमी व्रत होता है। इस व्रत को मध्याह्नव्यापिनी दशमी विद्धा नवमी में करना चाहिये। अगस्त्यसंहिता का कथन है कि - यदि चैत्र शुक्ल नवमी, पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त हो और वही मध्याह्न के समय व्याप्त हो तो प्रशस्त होता है। यदि दो दिन नक्षत्र का योग और मध्याह्नव्याप्ति हो अथवा एक देश व्याप्ति हो अर्थात् दोनों दिन तिथि या नक्षत्र में से मध्याह्न के समय एक न एक रहे तो परा (बाद) का ग्रहण करना चाहिये, नहीं तो पूर्वा ही लेनी चाहिये। यह भी अगस्त्य संहिता में कहा है कि, अष्टमी विद्धा नवमी को विष्णुभक्तों को छोड़ देनी चाहिये। उन्हें नवमी में व्रत तथा दशमी में पारण करना चाहिये। निर्णयसिन्धु में भी लिखा है –दशम्यां चैव पारणम्।।

नवरात्र व्रतम् –

नवाणां रात्रिणां समाहार इति नवरात्रम्।। अर्थात् नवरात्र नवरात्रियों का समाहार है। इन नव दिनों में माँ

दुर्गा के नव रूपों– शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, कूष्माण्डा, स्कन्दमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी तथा सिद्धिदात्री की पूजा होती है। नवरात्र के भी चार प्रकार है – जिनमें दो प्रचलित और दो गुप्त नवरात्र के रूप में जाने जाते हैं। प्रचलित नवरात्र में एक चैत्रशुक्लप्रतिपदा से आरम्भ होकर नवमी तिथि पर्यन्त होता हैं तथा दूसरा आश्विन शुक्लपक्ष से आरम्भ होकर नवमी तिथि पर्यन्त होता है। गुप्त नवरात्रों में एक माघ तथा दूसरा कार्तिक मास में मनाये जाने का विधान है। यह वस्तुत: साधकों के लिए होता है। नवरात्र पूजन में घट स्थापना का महत्व है। नवरात्र में कलशस्थापना अभिजिन्मुहूर्त्त में करने का विधान कहा गया है।

अक्षयनवमी – यह कार्तिक शुक्ल नवमी को होता है। इस दिन किये गये पुण्य कार्य का कभी क्षय नहीं होता। इस दिन धात्रीफल का पूजन होता है। इसी तिथि को द्वापर युग का आरम्भ हुआ था। इस तिथि में दान का विशेष महत्व है, दानादि क्रिया में पूर्वाह्न व्यापिनी तथा उपवास में अपराह्नव्यापिनी का विधान है।

निर्णयसिन्धु के अनुसार नवमी तिथि निर्णय –

नवमी तु सर्वमते पूर्वायुग्मवाक्यात् नकुर्यान्नवमींतातदशम्यांतुकदाचनेति स्कांदाच्च।

अर्थात् नवमी तो युग्म वाक्यानुसार पहली ही ग्रहण करनी चाहिये। स्कन्दपुराण में लिखा है कि हे तात! दशमी संयुक्त नवमी तिथि को कदापि ग्रहण नहीं करनी चाहिये।

दशमी तिथि के व्रत –

दशमी तिथि में प्रमुख रूप से विजयादशमी, आशादशमीव्रत, दशावतारव्रतम् आदि है। आश्विन शुक्लपक्ष की दशमी तिथि को विजयादशमी कहते हैं। जो तारों के उदयकाल में व्याप्त हो उस तिथि को ही ग्रहण करना चाहिये। चिन्तामणि ग्रन्थ में यही कहा है कि, आश्विनशुक्ल दशमी के दिन तारों के उदय में जो समय रहता है, उससे विजय का सम्बन्ध है। वह सिद्धियों को देने वाला होता है।

आश्विनशुक्लदशम्यां विजयादशमी। सा च तारकोदयव्यापिनी ग्राह्या तदुक्तं चिन्तामणौ आश्विनस्य सितेपक्षे दशम्यां तारकोदये। सकालो विजयो नाम सर्वकामार्थसाधक:।

आषाढ़शुक्ल दशमी तिथि, मन्वन्तर की आदि तिथि है, इसे पूर्वाह्न व्यापिनी ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि पद्मपुराण में लिखा हुआ है कि शुक्लपक्ष की मन्वादि तिथि पूर्वाह्न लेनी चाहिये। जो मन्वादि तिथियों में कृत्य होते हैं वे सब इसमें भी करने चाहिये। आशादशमीव्रत किसी भी शुक्लपक्ष की दशमी के दिन होता है यह भविष्यपुराण से लेकर हेमाद्रि ने लिखा है।

दशावतार व्रत – भाद्रपद शुक्ल दशमी के दिन होता है, वह भविष्योत्तर पुराण में लिखा है।

दशमी तिथि निर्णय -

दशमीतुपूर्वापरावेतिहेमाद्रि: कृष्णापूर्वोत्तराशुक्लादशम्येवंव्यवस्थितेति माधव: वस्तुतस्तुमुख्यानवमीयुतैवग्राह्या दशमीतुप्रकर्त्तव्यासदुर्गाद्विजसत्तमेत्यापस्तंबोक्ते: यत्तु संपूर्णादशमीकार्यापूर्वयापरयाथवेत्यंगिरसोक्तम्। तन्नवमीयुक्तालाभेऔदयिकीग्राह्यत्येवंनेयम्।।

अर्थात् दशमी पहली और पिछली दोनों होती है यह हेमाद्रि का मत है। और माधवभट्ट के मत में यह व्यवस्था है कि कृष्णपक्ष की दशमी पहली और शुक्लपक्ष की दूसरी होती है। वस्तुत: मुख्य तो नवमीयुक्त ही लेनी चाहिये। क्योंकि आपस्तम्ब की यह उक्ति है हे द्विजसत्तम नवमी युक्त दशमी करनी चाहिये और अंगिरा नें जो यह कहा है कि सम्पूर्ण दशमी नवमी अथवा एकादशी युक्त कर लेनी चाहिये। यह वाक्य तब समझना चाहिये जब नवमीयुक्त दशमी नहीं मिलती हो तो सूर्योदय की ही दशमी लेनी चाहिये।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि व्रतराज ग्रन्थानुसार षष्ठी तिथि में ललिताव्रत, कपिलाषष्ठी, सूर्यषष्ठी (छठ), स्कन्धषष्ठी एवं चम्पाषष्ठी आदि व्रत का विधान हैं। इन व्रतों में बिहार, झारखण्ड, उत्तरप्रदेश तथा उत्तरभारत के कई प्रान्तों में मनाने जाने वाला सूर्यषष्ठी (छठ) प्रमुख है। ललिताव्रत भाद्रपद शुक्लपक्ष के षष्ठी तिथि को होता है। यह हेमाद्रि ने भविष्यपुराण को लेकर लिखा है। यहाँ मध्याह्नव्यापिनी तिथि लेना चाहिये, मध्याह्नव्यापिनी हो अथवा न हो पूर्वा ही ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि इसमें जागरण प्रधान है, जागरण रात में होता है उसमें तिथि रहनी ही चाहिये। यह गुर्जर देश में प्रसिद्ध है। कपिलाषष्ठी का व्रत भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष की षष्ठी तिथि को मनाने का विधान है। यह व्रत योग विशेष रूप से पूर्वविद्धा और परविद्धा दोनों में ही होता है। अर्थात् जो योग चाहिये वह जिसमें हों, वही ग्रहण कर ली जाती है। पुराणों के अनुसार जिस भाद्रपद कृष्णषष्ठी के दिन हस्त नक्षत्र में सूर्य हो एवं व्यतीपात रोहिणी नक्षत्र और मंगलवार का योग हो तो वह कपिला कहायेगी, यह ब्रह्माजी का निर्देश है। सप्तमी तिथि में व्रतों के अन्तर्गत गंगा सप्तमी, शीतलासप्तमी, मुक्ताभरणसप्तमी, रथसप्तमी एवं अचलासप्तमी प्रमुख रूप से हैं। सभी व्रतों में शुक्लपक्ष के अन्तर्गत परविद्धा अष्टमी ग्रहण करना चाहिये तथा कृष्णपक्ष में पूर्वविद्धा। मिश्रित शिवशक्ति के उत्सव में कृष्णपक्ष की दूसरे दिन की ही ग्रहण करनी चाहिये। शुक्लपक्ष में बुधाष्टमी प्रभात से आरम्भ करके अपराह्नकाल अर्थात् तीसरे प्रहर तक दो घड़ी भी बुधवार से युक्त हो वह ग्रहण करनी चाहिये। सायंकाल में चैत्र, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक इन मासों में और

कृष्णपक्ष में होने वाली बुधाष्टमी नहीं ग्रहण करनी चाहिये। जब-जब शुक्लपक्ष की अष्टमी को बुधवार आवे, तब-तब एकभक्त आदि व्रत में उसको ग्रहण करना चाहिये। सन्ध्या के समय चैत्रमास में और देवशयन में बुधाष्टमी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि उपरोक्त निषिद्ध समय में बुधाष्टमी करने से पूर्वजन्मार्जित पुण्यों का भी यह नाश कर देती है। नवमी तिथि के व्रतों में मुख्य रूप से रामनवमी, नवरात्र, अक्षयनवमी, महानवमी, भद्रकाली एवं अदु:खनवमी व्रत आदि है। दशमी संयुक्त नवमी तिथि को कदापि ग्रहण नहीं करनी चाहिये। दशमी तिथि में प्रमुख रूप से विजयादशमी, आशादशमीव्रत, दशावतारव्रतम् आदि है। आश्विन शुक्लपक्ष की दशमी तिथि को विजयादशमी कहते हैं। जो तारों के उदयकाल में व्याप्त हो उस तिथि को ही ग्रहण करना चाहिये। चिन्तामणि ग्रन्थ में यही कहा है कि, आश्विनशुक्ल दशमी के दिन तारों के उदय में जो समय रहता है, उससे विजय का सम्बन्ध है। वह सिद्धियों को देने वाला होता है।

2.6 पारिभाषिक शब्दावली

सूर्यषष्ठी – सूर्यषष्ठी व्रत को व्यवहार में 'छठ' पर्व के नाम से जानते हैं। शास्त्रीय नाम सूर्यषष्ठी ही है। यह मुख्यत: बिहार, झारखण्ड तथा उत्तरप्रदेश में मनाया जाने वाला पर्व है।

मध्याह्नव्यापिनी – मध्याह्न के समय व्याप्त।

कृष्णपक्ष – प्रतिपदा से अमावस्या पर्यन्त तक की तिथि कृष्णपक्ष कहलाती है। इसे कालापक्ष के नाम से भी जानते है।

शुक्लपक्ष – प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त की तिथि शुक्लपक्ष कहलाती है। इसे सित (श्वेत) पक्ष के नाम से भी जानते है।

मार्गशीर्ष – चैत्रादि द्वादस मासों में एक मास का नाम है – मार्गशीर्ष। इसे अगहन के नाम से भी जानते है।

पूर्वाह्न– मध्याह्न से पहले का समय।

अपराह्न – मध्याह्न के पश्चात् का समय।

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1.ग 2. ग 3. घ 4. क 5. क

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. व्रतराज - मूल लेखक- विश्वनाथ शर्मा, टिका – माधवाचार्य

2. निर्णयसिन्धु – कमलाकर

3. धर्मसिन्धु –

4. मुहूर्तचिन्तामणि– पीयूषधारा टिका।

5. आपस्तम्ब धर्मसूत्र–

2.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. व्रतराज

2. धर्मसिन्धु

3. निर्णयसिन्धु

4. आपस्तम्ब धर्मसूत्र

5. मुहूर्तचिन्तामणि – पीयूषधारा टिका

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्रत किसे कहते है?

2. षष्ठी-सप्तमी तिथि के व्रतों का वर्णन कीजिये।

3. अष्टमी एवं नवमी तिथि निर्णय का उल्लेख कीजिये।

4. दशमी तिथि निर्णय का प्रतिपादन कीजिये।

5. अष्टमी से दशमी तिथि के व्रतों का वर्णन कीजिये।

इकाई - 3 एकादशी से पूर्णिमा/ अमावस्या तिथिपरक निर्णय

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के चतुर्थ खण्ड की तीसरी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – एकादशी से पूर्णिमा/ अमावस्या तिथि परक निर्णय। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने प्रतिपदा से लेकर दशमी तिथि तक के व्रतों एवं उनके तिथिपरक निर्णयों को जान लिया है। अब आप उससे आगे एकादशी से पूर्णिमा/अमावस्या तिथि परक व्रतों एवं निर्णयों का अध्ययन करेंगे।

तिथियों के क्रम में दशमी के पश्चात् एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा कृष्णपक्ष में अमावस्या एवं शुक्लपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि के रूप में पूर्णिमा आता है। इन तिथियों में भी अलग-अलग कई व्रतों का विधान बतलाया गया है।

आइए हम सभी उपर्युक्तानुसार एकादशी से पूर्णिमा/ अमावस्या तिथि तक के व्रतों को जानने का प्रयास करते हैं।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आज जान लेंगे कि –

- एकादशी तिथि का निर्णय कैसे होता है।
- एकादशी से पूर्णिमा तिथि तक कौन-कौन से व्रत होते हैं।
- अमावस्या तिथि में किस व्रत का विधान है।
- एकादशी से पूर्णिमा/ अमावस्या पर्यन्त की तिथि निर्णय किस प्रकार होता है।
- तिथि निर्णय में शास्त्रोक्त वचन क्या है।

3.3 एकादशी तिथि परक निर्णय

एकादशी व्रत निर्णय –

भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में व्रत एवं पर्वों की एक लम्बी परम्परा सदियों से चली आ रही है, और इन व्रत-पर्वों का निर्णय ज्योतिष विद्या के अनुसार ही किया जाता रहा है। वस्तुत: सभी व्रतों के धर्मशास्त्रीय निर्णय की अपेक्षा एकादशी व्रत का निर्णय अधिक कठिन है तथा सामान्य विद्वानों को शास्त्र देखने पर भी भ्रम एवं सन्दहोत्पादक है। अत: यहाँ पाठकों के सुलभता हेतु सरल तरीके से एकादशी तिथि परक निर्णय का वर्णन किया जा रहा है।

प्रथमतया तिथि और उसके वेधों के प्रकार जान लेना आवश्यक है। तिथि दो प्रकार की होती है- १. सम्पूर्णा (शुद्धा) २. सखण्डा (विद्धा)। सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन के सूर्योदय तक ६० घटी रहनेवाली तिथि को पूर्णा कहते हैं और इसी बीच में दूसरी तिथि आ जाय तो वह सखण्डा कहलाती है। सखण्डा भी दो प्रकार की होती है – १. सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक रहनेवाली एवं शिवरात्रि इत्यादि व्रतों में अर्धरात्रि तक रहनेवाली शुद्धा और इससे अन्य विद्धा।

तिथियों का वेध भी दो प्रकार से होता है – १. प्रातर्वेध २. सायंवेध। यह दोनों वेध सामान्यत: ६ घटी का होता है, कहीं प्रात: वेध विशेषत: ४ घटी का भी कहा गया है। जैसे प्रात:वेध में तिथि का मान सूर्योदय काल से ६ (या कम से कम ४ घटी) का हो तो वह अग्रिम तिथि को वेधित करेगी, इससे अल्पमान की होने पर स्वत: अग्रिम तिथि द्वारा वेधित होगी। इसी प्रकार सायं वेध ये सूर्यास्त से न्यूनतम ६ घटी पूर्व जिस तिथि का आरम्भ होगा, वह पूर्ववर्ती तिथि का वेध करेगी, अन्यथा स्वत: उससे वेधित होगी। यह तिथि विषयक सामान्य वेध विचार है, किन्तु एकादशी व्रत निर्णय में दशमी तिथि के विशेष वेधों का विचार किया जाता है।

एकादशी व्रत के मुख्य चार भेद है एवं तदनुसार ४ प्रकार के वेधों के आधार से उनका निर्णय किया जाता है। १. स्मार्त्त = ६० घटी का वेध, २ वैष्णव = ५६ घटी का वेध,३. रामानुज एवं बल्लभमतानुयायी वैष्णव = ५५ घटी का वेध, ४. निम्बार्क सम्प्रदाय के चक्रांकित महाभागवतों का वेध = ४५ घटी का है। अर्थात् सूर्योदय समय में दशमी हो तो स्मार्त, सूर्योदय से पहले ४ घटी के भीतर दशमी हो तो वैष्णव, सूर्योदय से पूर्व ५घटी के भीतर दशमी हो तो रामानुज एवं बल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव जन तथा सूर्योदय से पूर्व १५ घटी के भीतर दशमी उपलब्ध हो तो निम्बार्क सम्प्रदाय के महाभागवत उस एकादशी को दशमी विद्धा मानते हैं। दशमीविद्धा एकादशी में व्रत करना सर्वानुमतेन वर्जित है। अब यहाँ विशिष्ट निर्णायक नियम बतालाये जाते है –

१. एकादशी विद्धा हो या शुद्धा, किन्तु उसकी पारण के लिए दूसरे दिन द्वादशी प्राप्त हो तो वह स्मार्तों के व्रतोपवास योग्य होती है। गृहस्थों को त्रयोदशी में पारण का निषेध है।
२. सूर्योदय से ४ घटी पूर्व तक अरूणोदय काल कहलाता है। अरूणोदयविद्धा एकादशी सर्व वैष्णवों को त्याज्य होती है अर्थात् यदि दशमी ५६ घटी से १ पल भी अधिक हुई तो उस एकादशी को वैष्णवमात्र त्याग कर अगली द्वादशी तिथि में एकादशी का व्रत करते हैं।
३. इसी भाँति यदि दशमी ५५ घटी से किंचित् भी अधिक हुई तो रामानुज एवं बल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव जन उस एकादशी का व्रत करते हैं।
४. केवल निम्बार्क सम्प्रदाय के चक्रांकित महाभागवत (वैष्णवजन) कपाल-वेधी एकादशी का त्याग कर द्वादशी में व्रत करते हैं अर्थात् दशमी ४५ घटी से १पल भी अधिक होने से

एकादशी का कपाल वेध करती है। अत: उपर्युक्त सम्प्रदाय के वैष्णवों के लिए कपालवेधी एकादशी त्याज्य होती हैं, अन्य सब स्मार्त एवं वैष्णवों का व्रत पूर्व दिन एकादशी को ही होता है।

उपर्युक्त वेधजन्य विशिष्ट स्थितियों में एकादशी का व्रत द्वादशी में करनेवाले वैष्णवजन को त्रयोदशी में पारण का दोष नहीं है।

एकादशी के क्षय, वृद्धि की स्थिति में विचार – प्रथम दिन सम्पूर्ण एकादशी के उपरान्त दूसरे दिन किंचित भी एकादशी प्राप्त हो तो सर्व वैष्णव एवं स्मार्त भी दूसरे ही दिन व्रत करते हैं, काशी की जनपदीय बोली में इसी की एकादशी का सठिया जाना जाता हैं। एकादशी की वृद्धि होने पर हेमाद्रि के मतानुसार दोनों दिन एकादशी का उपवास करना चाहिए। एकादशी की वृद्धि में वैष्णव मत से पर दिन में द्वादशी न हो तो विद्ध भी शुद्ध एकादशी मानी जाती है एवं पर दिन में द्वादशी हो तो शुद्ध भी विद्ध एकादशी मानी जाती है। उदयकाल में थोड़ी सी एकादशी, मध्य में पूरी द्वादशी और अन्त में किंचित् त्रयोदशी हो तो वह महत्पुण्यदायिका त्रिस्पृशा योगवती एकादशी होती है। उसमें व्रत करनेवाले वैष्णवादि को त्रयोदशी में पारण करने से महत् पुण्य होता है, यथा – कलात्येकादशी यत्र परतो द्वादशी न चेत्। तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यां तु पारणम्। स्मार्त तो पूर्व दिन (दशमी को) व्रत कर उदया एकादशी के दिन द्वादशी लगने पर पारण करते हैं। एकादशी का क्षय हो तो स्मार्त दशमी को व्रत कर अगले दिन द्वादशी में पारण करें तथा सर्व वैष्णवजन द्वादशी में व्रत कर त्रयोदशी में पारण करें। एकादशी के क्षय होने पर उस एकादशी के प्रशस्त नक्षत्र का द्वादशी से योग हो तो स्मार्तों को भी दशमीविद्धा में व्रत न कर द्वादशी में ही व्रत करना चाहिए। द्वादशी का पहला चरण हरिवासर संज्ञक होता है, उसको सदैव पारण में वर्जित करना चाहिए।

शुद्ध या विद्ध एकादशी हो और द्वादशी की वृद्धि हो तो माधव के मत से स्मार्तों का व्रत एकादशी में और वैष्णवों का द्वादशी में होगा, हेमाद्रि के मत से सबका द्वादशी में ही व्रतोपवास होगा। आजकल माधव के मत से ही एकादशीव्रत का निर्णय किया जाता है। दशमी तिथि के क्षय के विषय में कहा है –नवमी पलमेकं तु दशमी च क्षयंगता। तत्र एकादशी त्यक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्।। अर्थात् यदि नवमी एक पल भी हो और दशमी का क्षय हो गया हो तो दूसरे दिन की एकादशी को पूर्वविद्धा मानकर त्याग दे और तीसरे दिन द्वादशी को (एकादशी का) व्रत करें, किन्तु वस्तुत: उदया नवमी और क्षय दशमी दोनों के घटी पल का योग ५६ घटी में अधिक हो तभी एकादशी पूर्वविद्धा होती है, अन्यथा नहीं।

एकादशी व्रत निर्णय के लिए याद रखने योग्य सारभूत श्लोक –

दशम्यर्कोदये चेत् स्मार्तानां वेध इष्यते। वैष्णवानां तु पूर्वं स्याद घटिकानां चतुष्टये।

बल्लभाः पंचनाडीषु केविद्यामद्वय जगुः। पूर्वां सूर्योदयाद्वेध्र निर्णये वैष्णवेः समाः।।

अर्थात् सूर्योदय समय में दशमी हो तो स्मार्तों को और उससे पहले ४ घटी के भीतर दशमी हो अर्थात् पूर्व दिन की दशमी ५६ घटी के उपरान्त हो तो उससे एकादशी का वेध वैष्णवों को इष्ट है। बल्लभ मत के लोग सूर्योदय से ५ घटी पूर्व अर्थात् ५५ घटी के उपर और कोई –कोई आधीरात के उपर ही दशमी का वेध एकादशी को मानते हैं, किन्तु निर्णय में वैष्णवों के समान हैं।

अन्य श्लोक के अनुसार –

यो द्वादशीविरामाहः स्मार्तैस्तत्प्रथमं दिनम्। उपोष्यमिति हेमाद्रिर्माधवस्य मतं श्रुणु।

द्वादश्यां वृद्धिगामिन्यामविर्द्धकादशी यदि। लभ्यते सा व्रते ग्राह्यान्यत्र हेमाद्रिनिर्णयः।।

वे चिदाहुर्विष्णुभक्तै स्मार्तैं कार्यः व्रतद्वयम्। विद्धायां वा विवृद्धायामेकादश्यां परेह्नि च ।

समाप्येत परेहनद्यस्मिन् द्वादशी यदि नान्यथा। माधवीयमतस्यैव प्रचारो व्रतनिर्णये।।

अर्थात् जिस सूर्योदय से अग्रिम सूर्योदय तक द्वादशी समाप्त होती हो, उसके पहले दिन एकादशी का उपवास करना, यह हेमाद्रि का मत है। माधव के मतानुसार –द्वादशी वृद्धिगामिनी हो (पहले दिन ६० घटी होकर दूसरे दिन भी कुछ हो) उस अवस्था में जो सूर्योदयकालिक वेध से रहित एकादशी मिले तो उसी को व्रत में लेना चाहिए और अन्य सभी स्थितियों में हेमाद्रि के समान निर्णय कर लेना। कोई कोई आचार्य कहते हैं कि सूर्योदय वेध की एकादशी के दिन और उसके दूसरे दिन, इसी तरह पूर्वोक्तवत् वृद्धिगामिनी एकादशी के दिन तथा उसके दूसरे दिन, यों दो व्रत विष्णु की भक्ति करनेवाले स्मार्त करें। परन्तु जब उक्त दूसरे दिन द्वादशी पूरी हो जाती हो, तभी, अन्यथा दो व्रत नहीं करना। आजकल एकादशीव्रत - निर्णय में माधव के मत का ही प्रचार है।

एकादशी द्वादशी वा वृद्धिगा चेत् तदा व्रते। शुद्धाद्यैकादशी त्याज्या सदा विद्धापि वैष्णवं।

एकादशी व्रतं कार्यं परेऽहिन तयाज्यवासरात्। असूयाऽनुगमे नात्र कार्या विद्वद्भिरर्थये।।

अर्थ – एकादशी या द्वादशी पूर्वोक्तानुसार वृद्धिगामिनी हो तो पहले एकादशी शुद्ध भी मिलती रहने पर वैष्णव उसे त्याग करें और विद्धा को भी त्याग करें। जो ये त्याज्य दिन कहे हैं, उनके दूसरे दिन एकादशी का व्रत करना चाहिए, यह वैष्णवों का निर्णय हुआ।

एकादशी व्रत की पारण – मार्गशीर्ष में गोमूत्र, पूस में गोबर, माघ में गाय का दूध,फाल्गुन में गाय की दही,चैत्र में गाय का घी, वैशाख में कुशोदक, ज्येष्ठ में तिल, आषाढ़ में यव का चूर्ण, श्रावण में दूर्वा, भाद्रपद में कुष्माण्ड (कोहड़ा), आश्विन में गुड़ और कार्तिक में बेलपत्र या तुलसी पत्र से एकादशी व्रत की पारणा होती है।

एकादशी व्रत को करने से भगवान विष्णु की कृपा एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। यह व्रत दो प्रकार का होता है - 1. स्मार्त एकादशी व्रत 2. वैष्णव एकादशी व्रत। विष्णु मन्त्र से दीक्षित व्यक्ति को वैष्णव कहते है। गृहस्थ और यति स्मार्त्त में गिने जाते हैं। इन दोनों के व्रत में भेद होता है। जब भी दशमी तिथि 55 घटी की होगी तो एकादशी का सम्पूर्ण वेध लगेगा। ऐसे में वैष्णव लोग द्वादशी के दिन एकादशी व्रत करेंगे। स्मार्त लोग द्वादशी विद्धा एकादशी का व्रत कभी नहीं करते। अतः स्थूल से निम्नलिखित परिस्थितियाँ बनती हैं-

1.यदि दशमी 55 घटी 0 पल, एकादशी 55 घटी 0 पल हो तो एकादशी के दिन स्मार्तएकादशीव्रत होगा। द्वादशी के दिन वैष्णव एकादशी व्रत होगा।

2.यदि दशमी 55 घटी 0 पल, एकादशी 60 घटी 1 पल हो तो स्मार्त एवं वैष्णव दोनों का व्रत द्वितीय दिन एकादशी में होगा।

3.यदि दशमी 55 घटी 0 पल, एकादशी 58 घटी 0 पल हो और द्वादशी 60 घटी 1 पल हो तो एकादशी के दिन स्मार्तएकादशी व्रत होगा तथा द्वादशी के दिन वैष्णव व्रतएकादशी व्रत होगा। 54 घटी से अधिक दशमी, 58 घटी से अधिक एकादशी, 59 घटी से अधिक द्वादशी होने पर वैष्णवों की एकादशी व्रत द्वादशी को होगा। इसे 'शुद्धा अधिकवती एकादशी' कहते है।

4.यदि एकादशी का क्षय हो तो इस परिस्थिति में द्वादशी में ही वैष्णव व्रत करेंगे।

5.यदि द्वादशी का क्षय हो तो इस परिस्थिति में स्मार्त एकादशी के दिन व्रत करेंगे और वैष्णव क्षय द्वादशी में व्रत करेंगे।

6.वैष्णव लोग प्रत्येक स्थिति में क्षय एकादशी का त्याग कर द्वादशी में व्रत करते है।

7.यदि एकादशी दशमी से युक्त हो तो द्वादशी से नहीं तो दशमी विद्धा एकादशी में स्मार्त लोग व्रत करेंगे अथवा एकादशी का क्षय हो तो भी स्मार्त्त उसी दिन व्रत करेंगे-

विद्धाऽप्येकादशी कार्यापरतो द्वादशी न चेत्। मत्स्यपुराण।

कूर्मपुराण के अनुसार - मुहूर्ता द्वादशी न स्यात् त्रयोदश्यां महामुने। उपोश्या दषमीविद्धा सदैवैकादशी तदा।

8.यदि दो दिन एकादशी मिल रही हो तो दशमी विद्धा एकादशी नहीं करनी चाहिए। गांधारी ने ऐसी गलती थी। उसके सौ पुत्र नष्ट हो गये – 'तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तं परिवर्जयेत्।'

9.स्मार्तो को द्वादशी विद्धा एकादशी न करके दशमी विद्धा एकादशी करनी चाहिए- एकादशी न लभते सकला द्वादशी भवेत्। उपोश्या दशमीविद्धा यतिभिर्गृहिभिस्तदा।

3.3.1 द्वादशी एवं त्रयोदशी तिथि का व्रत एवं निर्णय –

द्वादशी तिथि के व्रतों में चैत्र शुक्ल द्वादशी को 'दमनोत्सव' का विधान है। रामार्चन चन्द्रिका में लिखा हुआ है कि चैत्र शुक्ल द्वादशी के दिन दमनोत्सव प्रतिवर्ष करना चाहिए। ऐसा बौधायनादिकों ने कहा है। दमन या दमनक अशोक के फल का नाम है। पद्मपुराण में लिखा हुआ है कि कार्तिक में व्रत, चैत्रमें दोला और श्रावण में तन्तुपूजन, पवित्रारोहण एवं चैत्र में दमनोत्सव इनको न करके अध:पतन होता है। यह रामार्चनचन्द्रिका में लिखा है। इसको शुक्र के अस्तादिकों में भी करना चाहिए, क्योंकि वृद्ध गार्ग्य का वचन है कि – उपाकर्म (श्रावणी) उत्सर्जन (वेद का उत्सर्जन) पवित्रारोपण, दमनोत्सव, ईशान की बलि, शयनी, परिवर्तिनी न को गुरु और शुक्र के अस्तादिक में भी निश्चय ही करना चाहिये।

अष्ट महाद्वादशी –

१. जिस दिन सूर्योदय काल में एकादशी हो, पश्चात् द्वादशी के क्षय से अगले सूर्योदय के समय त्रयोदशी आ जाती हो तो इस प्रकार एक अहोरात्र में तीन तिथियों का स्पर्श करने से वह क्षय १२ त्रिस्पृशा नामवाली महाद्वादशी होती है।
२. अरूणोदयकाल में ११ तिथि १० से अविद्ध हो (अर्थात् दशमी तिथि ५६ घटी से कम हो) और ११ की वृद्धि हो जाय तो उस वृद्ध एकादशी तिथि के दिन उन्मीलनी नामक महाद्वादशी होती है।
३. सूर्योदयकाल में दशमी एकादशी तिथि का स्पर्श न करती हो और द्वादशी की वृद्धि हो जाय तो वह वृद्ध द्वादशी वंजुली नामावाली महाद्वादशी होती है।
४. पूर्णिमा या अमावस्या तिथि बढ़ जाय तो उस पक्ष की द्वादशी पक्षवर्धिनी नाम वाली होती है।
५. शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि पुष्य नक्षत्र से युक्त हो तो वह जया नामक महाद्वादशी होती है।
६. शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि श्रवण नक्षत्र से युक्त हो तो वह विजया नामक महाद्वादशी होती है।
७. शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि पुनर्वसु नक्षत्र से युक्त हो तो वह जयन्ती नामक महाद्वादशी होती है।
८. शुक्लपक्ष में द्वादशी तिथि रोहिणी नक्षत्र से युक्त हो तो वह पापनाशिनी नामक महाद्वादशी होती है।

वैशाख शुक्ल द्वादशी हेमाद्रि ने इसमें योग विशेष कहा है कि वैशाख शुक्ल द्वादशी के दिन सिंह के गुरु और मंगल हो मेष के रवि एवं पाशा हस्त नक्षत्र से युक्त हो तो इसमें व्यतीपात योग होगा। इस

योग में गौ, भूमि, सोना, वस्त्र इनका दान करने से सब पापों को परित्याग करके मनुष्य देवपना, इन्द्रपना, निरोगता और राजापन की प्राप्ति करताहै। पंचानन सिंह राशि को कहते है पाशानाम की तिथि द्वादशी है। करभनाम हस्तनक्षत्र का है।

आषाढ़ शुक्ल द्वादशी के दिन पारणा हेमाद्रि ने भविष्य पुराण से लेकर लिखा है कि, अनुराधा योग से रहित आषाढ़ शुक्ल द्वादशी के दिन पारण करनी चाहिए, इसका प्रमाण यह है कि आषाढ, भाद्रपद एवं कार्तिक मास के शुक्ल पक्षों में मैत्र, श्रवण और रेवती के संगम में भोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि इसमें भोजन करने से बारह द्वादशियों को नष्ट करता है। व्रतराज के रचयिता कहते है कि उक्त मासों के शुक्ल द्वादशीयों में क्रम से अनुराधा, श्रवण और रेवती के योग में पारण नहीं करनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न –

1. तिथि कितने प्रकार की होती है?

   क. दो ख. तीन ग. चार घ. 5

2. मुख्यत: एकादशी व्रत के कितने भेद है?

   क. 5 ख. 6 ग. 4 घ. 8

3. तिथियों का वेध कितने प्रकार से होता है?

   क. 3 ख. 4 ग. 5 घ. 2

4. गृहस्थों को एकादशी व्रत का पारण किस तिथि में करना निषेध हैं?

   क. द्वादशी ख. त्रयोदशी ग. एकादशी घ. कोई नहीं

5. शुक्ल पक्ष में द्वादशी तिथि पुष्य नक्षत्र से युक्त हो तो क्या होता है?

   क. विजया नामक महाद्वादशी ख. जया नामक महाद्वादशी ग. जयन्ती घ. पापनाशिनी

6. यदि दशमी ५५ घटी से किंचित् भी अधिक होती है तो किसके लिए एकादशी व्रत धारण योग्य है?

क. गृहस्थों के लिए ख. वैष्णव के लिए ग. रामानुज एवं बल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव जन के लिए घ. स्मार्तो के लिए

श्रावण शुक्ल द्वादशी को दधिव्रतम् का विधान है। इसमें तक्र आदि का निषेध नहीं है, क्योंकि इसमें दही का व्यवहार नहीं होता। पवित्रारोपण भी इसी द्वादशी के दिन विष्णुरहस्य में कहा है जिसे हेमाद्रि

ने उद्धृत किया है कि, श्रावण शुक्लपक्ष में कर्कट पर सूर्य के रहते भगवान के लिए पवित्रारोपण कहा गया है। हे द्विज! श्रावण शुक्ल या श्रावणनक्षत्र युक्त द्वादशी अथवा पंचमी के दिन सभी के अनुकूल रहने पर पवित्रारोपण करना चाहिए। गौणकाल भी रामार्चन चन्द्रिका में कहा है कि, यदि विघ्नों के कारण पवित्रारोपण श्रावण में न किया जा सके तो कार्तिक तक शुक्रास्त में भी कर देना चाहिए,

ऐसा नारद जी का कथन है।

सोने, चाँदी, ताँबे, क्षौम, रेशम, पद्म, कुश,काश, कपास इनके ब्राह्माणों के हाथ से तैयार किये हुए सूत को तिल्लर करके फिर भी उसकी तीन लर करके शोधन करे, ३६० का उत्तम पवित्र होता है, २७० का मध्यम होता है, १८० का कनिष्ठ होता है एवं साधारण पवित्र तीन सूत्रों का पवित्र होता है। भाद्रपद मास के शुद्ध द्वादशी को दुग्धव्रत होता है उसमें ही दुग्धव्रत का संकल्प किया जाता है। दुग्ध के व्रत (त्याग) में खीर आदि दुग्ध के वे पदार्थ जिनमें कि दूध का वही रुप बना हो तो उनका तो त्याग कहा है, पर दधि घृत आदि उन विकारों का तो ग्रहण ग्रहण ही होता है जो कि प्रकृति से गुणान्तर में परिणाम पा चुके है। इस पर शंका करते हैं कि यदि ऐसा मानोगे कि प्रकृति के ग्रहण में उसके गुणान्तर में परिणत हुए विकार ग्रहण न होंगे तो ग्यावन गाय के दूध का निषेध किया है उसी तरह उसके दूध के विकारों का भी उसी वचन से निषेध किया गया है इस कारण उसके विकारों का भी ग्रहण नहीं होगा।

द्वादशी तिथि के व्रतों में एक सुरूप द्वादशी व्रत का भी विधान है, जो पौष कृष्ण द्वादशी के दिन होता है, यह गुर्जर देश में प्रसिद्ध है। इसकी कथा उमा-महेश का परस्पर संवाद है। जिसमें उमा भगवान शिव से सुरूपता के लिए व्रत विधान की जिज्ञासा प्रकट करती है और भगवान शिव इसी सुरूप द्वादशी व्रत का विधान बतलाते है। इस व्रत से व्यक्ति को सुन्दर रूप मिलता है तथा यह महापापों को भी नष्ट करने वाली है।

त्रयोदशी तिथि के अन्तर्गत जयापार्वतीव्रत, गोत्रिरात्रव्रतम्, अशोकरात्रिरात्रव्रतम्, शनि प्रदोषव्रत, प्रदोषव्रत तथा अनंगत्रयोदशीव्रतम् प्रमुख हैं।

जयापार्वतीव्रत आषाढ़ शुक्ल त्रयोदशी के दिन होता है, यह भविष्योत्तर पुराण में लिखा है। इस व्रत के प्रभाव से सन्तान की उत्पत्ति होती है तथा व्यक्ति सभी प्रकार के भौतिक सुखों को भी प्राप्त कर पाता है।

गोत्रिरात्रव्रतम् भाद्रपद शुक्ल त्रयोदशी के दिन किया जाता है। इस व्रत को धारण करने से व्यक्ति सभी प्रकार के दु:खों से निवृत्ति पा सकता है। यह अत्यन्त पुण्यफलदायक है। इस व्रत के प्रभाव से लक्ष्मी

की प्राप्ति होती है। इसे धर्मराज युधिष्ठिर ने भगवान मुधुसूदन से सुना था। यह गुजरात प्रदेश में अत्यधिक प्रसिद्ध है।

अशोक त्रिरात्रव्रत चैत्रशुक्ल त्रयोदशी के दिन किया जाता है। इसे पूर्वा ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि दीपिका का कथन है कि, त्रयोदशी तिथि शुक्ल पूर्वा और कृष्णा उत्तरा ली जाती है। जहाँ दो त्रयोदशी हैं, वहाँ का यह विचार है। अशोक त्रिरात्रव्रत को धारण करने से व्यक्ति शोकरहित हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। माता सिता जी ने भी त्रिजटा के कहने पर लंका में शोकरहित हेतु इस व्रत को धारण किया था।

शनिप्रदोष व्रत – स्कन्दपुराण में कहा गया है कि कार्तिक या श्रावण की शनिवारी त्रयोदशी के दिन क्रमश: पूर्वापरा जया ग्रहण करनी चाहिये।

प्रदोष व्रत - त्रयोदशी तिथि के व्रतों में 'प्रदोष व्रत' प्रमुख माना जाता है। इस व्रत का वर्णन स्कन्द पुराण में किया गया है। नि:सन्तान दम्पत्ती सन्तान पाने की इच्छा से इस व्रत को धारण करती हैं। यह व्रत दोनों पक्षों की त्रयोदशी तिथि को धारण किया जाता है। यह वर्ष पर्यन्त दोनों पक्षों की त्रयोदशी तिथि को धारण किये जाने वाला व्रत है। यह व्रत दोनों पक्षों के त्रयोदशी तिथि के सूर्यास्त में जब तीन घटी (७२ मिनट) शेष रह जाय तब धारण करना चाहिये।

3.3.2 चतुर्दशी एवं पूर्णिमा तिथियों के व्रत एवं निर्णय

चतुर्दशी तिथि के व्रत – नृसिंहचतुर्दशी व्रत, अनन्त चतुर्दशी व्रत, कदली व्रत, नरक चतुर्दशी, बैकुण्ठ चतुर्दशी, शिवरात्रि व्रत आदि।

पूर्णिमा तिथि के व्रत – पूर्णिमा व्रत, वटसावित्री व्रत, गोपद्मव्रत, कोकिला व्रत, रक्षाबन्धन, उमामहेश्वर व्रत, कोजागरव्रत, कार्तिकमासव्रत का उद्यापन, होलीकोत्सव आदि।

चतुर्दशी तिथि निर्णय – यदि किसी पक्ष में दो चतुर्दशी तिथि पड़ जाय तो उसमें कौन सा व्रत के लिए धारण करें अथवा कौन सा नहीं? यह निर्णय का विषय है। कृष्ण पूर्वा शुक्ल उत्तरा ली जाती है। उपवास में दोनों पक्षों की चतुर्दशी परा अर्थात् बाद वाली लेनी चाहिए। व्रतराजकार भी कहते है कि चैत्र शुक्ल चतुर्दशी पूर्वा लेनी चाहिए। प्रमाण के लिए कहते है कि ब्रह्मवैवर्त पुराण में लिखा है कि रात्रि में भूत और शक्तियों के साथ शिव जी विचरण करते रहते हैं। इस कारण रात्रि में चतुर्दशी के रहते ही उनका पूजन हो सकेगा। परा में रात्रि को पूजन के समय चतुर्दशी नहीं मिल सकती, इस कारण पूर्वा का ही ग्रहण होगा। हेमाद्रि में महर्षि बौधायन का भी मत है कि चैत्र और श्रावण की शुक्ल चतुर्दशी रात्रिव्यापिनी का ग्रहण होता है। दूसरी शुक्ल का ग्रहण नहीं होता, इस विषय में निर्णयसिन्धु और इन दोनों का एक ही मत है।

नृसिंह चतुर्दशी व्रत वैशाख शुक्ल चतुर्दशी के दिन होता है, जब चतुर्दशी प्रदोषकालव्यापिनी हो तब इस व्रत को करना चाहिये। यही नृसिंहपुराण से हेमाद्रि ने कहा है कि, वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को प्रदोषकाल में मेरे जन्म का होने वाला (नृंसिहावतार) पवित्र व्रत समस्त पापों का नाश करने वाला है। यह मेरी तुष्टि करने वाला व्रत है इसे प्रतिवर्ष करना चाहिये।

अनन्तचतुर्दशी व्रत – सा परा कार्या पूजनकालव्यापित्वात्। अनन्तं पूजयेद्यस्तु प्रात:काले समाहित:।।

अनन्तां लभते सिद्धिं चक्रपाणे: प्रसादत:।। इति ब्रह्मपुराणात्।। तदभावे पूर्वा। उभयदिने सूर्योदयव्यापित्वे पूर्णायुक्तत्वेन परैव ग्राह्या।। भाद्रे सिते चतुर्दश्यामनन्तं पूजयेत्सुधी:।। ह्रासेन सर्वकर्माणि प्रातरेव हि पूजनम्।। शुक्लापि भाद्रपदस्था अनन्ताख्या चतुर्दशी। उदयव्यापिनी ग्राह्या घटिकैकापि या भवेत्।।

अनन्तचतुर्दशी व्रत के लिए विधान है कि इसे परा लेना चाहिये क्योंकि, परा ही पूजन के समय रहेगी, क्योंकि ब्रह्मपुराण में लिखा हुआ है कि, जो एकाग्रचित्त से प्रात:काल अनन्त का पूजन करता है वह भगवान की कृपा से अनन्त सिद्धि को पाता है। इस वचन से यह सिद्ध हो गया कि पूजा का मुख्य समय प्रात:काल है, उस समय में रहनेवाली में व्रत करना चाहिये। यदि प्रात:काल में चतुर्दशी न मिले तो पूर्वा ही ग्रहण कर लेनी चाहिये। यदि प्रात:काल में चतुर्दशी न मिले तो पूर्वा ही ग्रहण कर लेनी चाहिये। भाद्रपद शुक्लपक्ष के चतुर्दशी तिथि को ही अनन्त व्रत का विधान है। उदयव्यापिनी चतुर्दशी हो तो नि:सन्देह ही अनन्त व्रत धारण करना चाहिये। निर्णयसिन्धुकार के अनुसार ''मध्याह्ने भोज्यवेलायाम्'' में भोजन के समय अनन्त व्रत कथा (५२ श्लोक से) से पूजा और व्रत में मध्याह्नव्यापिनी ली जाती है। पर प्रात:काल की व्याप्ति ही उचित है, क्योंकि प्रात:काल से पूजन प्रारम्भ होकर पूजनादि कार्यो में मध्याह्न हो सकता है।

कदली व्रत – भाद्रपद, कार्तिक, माघ, वैशाख मासों की शुक्ल चतुर्दशी के दिन यह व्रत होता है। यह भविष्योत्तर पुराण का कथन है। इसे पूर्वाह्नव्यापिनी ग्रहण करना चाहिये।

नरक चतुर्दशी – पौर्णिमान्त मास के अनुसार कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी को कहते हैं। भविष्य पुराण ने कहा है कि उसमें तिल के तैल से स्नान करें। कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के दिन चन्द्रमा के उदय में नरक से डरने वालों को अवश्य ही तिल के तेल से स्नान करना चाहिये। यदि दो दिन चन्द्रोदय के समय चतुर्दशी रहे तो कार्तिक शुक्ल पूर्वविद्धा चतुर्दशी के दिन प्रयत्नपूर्वक प्रत्यूष के समय स्नान करना चाहिये, इस निर्णय दीपिका के कथन से पूर्व दिन ही उबटन करना चाहिये। पर दिन ही अभ्यङ्ग करना चाहिये।

वैकुण्ठ चतुर्दशी – यह व्रत कार्तिक शुक्ल चतुर्दशी को होता है, इसे अरुणोदयव्यापिनी ग्रहण करना चाहिये। निर्णयसिन्धुकार ने कहा है कि, इसे विष्णुपूजा में रात्रिव्यापिनी लेना चाहिये। यदि दो दिन ऐसे ही हो तो प्रदोष से निशीथ तक रहनेवाली लेनी चाहिये। उपवास तो पहले दिन करना चाहिये क्योंकि सनत्कुमारसंहिता में लिखा हुआ है कि, हेमलम्बनामक वर्ष के कार्तिक मास की शुक्ल चतुर्दशी में अरुणोदय के समय महादेव जी की तिथि में मणिकर्णिका के घाट पर विश्वेश्वर विष्णु ने स्नान करके देवीसहित विश्वेश्वर का पूजन किया था, उस समय आपने आत्मस्वरूप पाशुपति व्रत करते हुए ज्योति के संक्षेप के रूप में उसकी प्रतिष्ठा भी की थी। भगवान विष्णु इसी वैकुण्ठ चतुर्दशी को बैकुण्ठ धाम से काशी में मणिकर्णिका घाट पर आकर विश्वेश्वर शिव की एक सहस्र कमलों से आराधना-पूजा की थी। पूजन के समय एक कमल भगवान शिव ने छुपा लिया था, तब भववान विष्णु ने अपने एक कमल रूपी नयन को शिव जी को चढ़ाया तभी भगवान शिव प्रसन्न होकर उन्हें सृष्टि का पालनकर्त्ता होने का वरदान देते हैं। इस प्रकार इस दिवस का नाम वैकुण्ठ चतुर्दशी के नाम से जाना गया।

शिवरात्रि व्रत- अमान्तमासेन माघकृष्णचतुर्दश्यां शिवरात्रिव्रतम्।। तच्चार्धरात्रव्यापिन्यां कार्यम्। तदुक्तं नारदसंहितायाम् - अर्धरात्रयुता यत्र माघकृष्णचतुर्दशी।। शिवरात्रिव्रतं तत्र सोऽश्वमेधफलं लभेत्।। ईशान संहितायामपि माघकृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि। शिवलिंगमभूत्तत्र कोटिसूर्यसमप्रभम्।। तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथि:।। माघकृष्णत्वं चात्रामान्तमासपरत्वेन।। अतएव चतुर्दश्यां तु कृष्णायां फाल्गुने शिवपूजनम्।। तामुपोष्य प्रयत्नेन विषयान्परिवर्जयेत्।।

शिवरात्रिव्रत अमान्तमान से माघकृष्ण चतुर्दशी तथा पूर्णिमान्त मान से फाल्गुनकृष्ण चतुर्दशी के दिन होता है। इसे अर्धरात्रिव्यापिनी चतुर्दशी में धारण करने का विधान है। चाहें ऐसे पूर्वा हो चाहें परा हो जो अर्धरात्रव्यापिनी हो उसे ही ग्रहण करना चाहिये। नारदसंहिता में ऐसा ही कहा गया है कि जिस दिन माघ (फाल्गुन) कृष्ण चतुर्दशी अर्धरात्रि के साथ योग रखती हो उस दिन जो शिवरात्रव्रत करता है वह अनन्त फल को पाने वाला होता है।

इसमें तीन पक्ष हैं एक तो चतुर्दशी को प्रदोषव्यापिनी दूसरा निशीथ व्यापिनी एवं तीसरी उभय व्यापिनी लेता है। इनमें व्रतराजकार का मुख्य पक्ष निशीथव्यापिनी को ही ग्रहण करना चाहिये। यही निर्णयसिन्धु और धर्मसिन्धु का भी मत है। परन्तु यदि दोनों ही दिन प्रदोषव्यापिनी मिले या दोनों ही दिन न मिले तब प्रदोषव्याप्ति वाली परा का ग्रहण करते हैं। इस तरह इनके मत में परा के ग्रहण करने में प्रदोष व्याप्ति का उपयोग होता है। तब निशीथ व्याप्ति में तो निशीथ है ही अव्याप्ति में प्रदोषव्याप्ति

ले रहे हैं। इससे यह व्यक्त होता है कि निशीथव्याप्ति मुख्य तथा प्रदोषव्याप्ति गौण है।

पूर्णिमा व्रत – चैत्री पूर्णिमा सामान्य निर्णय से परा ही ली जाती हैं। इस व्रत में निर्णयामृत में विष्णु स्मृति के वाक्यों से कुछ विशेष लिखा है कि चैत्री पूर्णिमा चित्रानक्षत्र से युक्त हो तो रंगे वस्त्र देने से सौभाग्य की प्राप्ति होती है। ब्राह्मपुराण में लिखा है कि यदि चैत्र का शनि, रवि, और गुरुवार हो तो उसमें स्नान श्राद्ध करने से अश्वमेध यज्ञ का फल होता है। वैशाखी पूर्णिमा के विषय में भविष्य पुराण में कुछ विशेष कहते हुए कहा है कि वैशाखी, कार्तिकी और माघी पूर्णिमा तिथि अत्यन्त श्रेष्ठ हैं अत: इन व्रतों को अवश्य करना चाहिये। इन्हें स्नान दान से रहित नहीं जाने देना चाहिये।

वटसावित्रीव्रत - पूर्णिमामावास्ये पूर्वविद्धे ग्राह्ये। भूतविद्धा न कर्तव्या अमावास्या च पूर्णिमा।। वर्जयित्वा मुनिश्रेष्ठ सावित्रीव्रतमुत्तमम्।। इति ब्रह्वैवर्ताद्।।

ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा या अमावस्या के दिन वटसावित्री व्रत होता है इसमें पूर्णिमा और अमावस्या पूर्वविद्धा ग्रहण करनी चाहिये क्योंकि ब्रह्मवैवर्त में लिखा हुआ है कि अमावस्या और पूर्णिमा ये दोनों एक उत्तम सावित्रीव्रत को छोड़कर पूर्वविद्धा नहीं करनी चाहिये। स्कन्द और भविष्य पुराण में लिखा है कि ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा के दिन यह व्रत भक्तिपूर्वक पूर्ण करना चाहिए। इसे तीन दिन उपवास करके विधिवत् पूजन के साथ किया जाता है।

गोपद्मव्रत – यह व्रत आषाढ़ पूर्णिमा के दिन होता है। इसमें मुख्यत: भगवान नारायण का पूजन किया जाता है।

कोकिलाव्रत – यह व्रत आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन होता है, जब आषाढ़ का अधिक मास हो उस दिन कोकिला व्रत का अनुष्ठान करना चाहिये।

रक्षाबन्धन – भविष्य पुराण का कथन है – कृष्ण उवाच – संप्राप्ते श्रावणे मासि पौर्णमास्यां दिनोदये। स्नानं कुर्वीत मतिमाञ्च्छ्रुतिस्मृतिविधानत:।। ततो देवान्पितॅंश्चैव तर्पयेत्परमाम्भसा।। उपाकर्मादि चैवौक्तमृषीणां चैव तर्पणम्।। कुर्वीत ब्राह्मणै: सार्धं वेदानुद्दिश्य शक्तित:।। शूद्राणां मन्त्ररहित स्नानं दानं च शस्यते।। ततोऽपराह्णसमये रक्षापोटलिकां शुभाम्।। कारयेच्चाक्षतैस्तद्वतद्वत्सिद्धार्थैर्हेमचर्चिते:।।

रक्षासूत्र बाँधने का मन्त्र - येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबल:। तेन त्वामभिबध्नामि रक्षे माचल माचल।।

श्रावण मास की पूर्णिमा तिथि को भद्रारहित काल में रक्षाबन्धन होता है यह भविष्य पुराण में लिखा गया है। कृष्ण के वचन के अनुसार श्रावण की पूर्णिमा तिथि को प्रात:काल सूर्योदय के समय श्रुति और स्मृतियों के विधान के अनुसार स्नान करना चाहिये। गंगा जल से देव और पितरों का तर्पण करें,

उपाकर्म आदि करके ऋषियों का तर्पण करना चाहिये। ये कर्म ब्राह्मणों के साथ वेद का उद्देश्य लेकर शक्ति के अनुसार करने चाहिये।

रक्षाबन्धन मन्त्र का अर्थ – जिस रक्षा से महाबली दानवेन्द्र बली राजा बाँधा था तुझे मैं उसी से बाँधता हूँ। तुम सर्वत्र अचल रहना। रक्षाबन्धन का निषिद्ध काल भद्रा है। इसमें रक्षाबन्धन नहीं होना चाहिये। भद्रा में श्रावणी (उपाकर्म) एवं रक्षाबन्धन दोनों ही त्याज्य है।

होलिकोत्सव - फाल्गुन पौर्णमास्यां होलिकोत्सव:। युधिष्ठिरकृत प्रश्नेन कृष्णेन इतिहासे रघुं प्रति वसिष्ठवयो भविष्यपुराणे। वसिष्ठ उवाच।। पंचदशी शुक्ला फाल्गुनस्य नराधिप।। अभयं चैव लोकानां दीयतां पुरुषर्ष।। यथा ह्यशंखिनो लोका रमन्तु च हसन्तु च।। दारूजानि च खण्डानि गृहीत्वातु समुत्सुका:।। योधा इव विनिर्यान्तु शिशव: संप्रहर्षिता:।। संचयं शुष्ककाष्ठानामुपलानां च कारयेत्।। तत्राग्निं विधवद्दत्वा रक्षोघ्नैर्मन्त्रविस्तरै:।। तत: किलकिलाशब्दैस्तालशब्दैर्मनोहरै:।। तमग्निं त्रि: परिक्रम्य गायन्तु च हसन्तु च।। जल्पन्तु स्वेच्छया लोका नि:शंका यस्य यन्मतम्।। तेन शब्देन सा पापा होमेन च निराकृता।। अट्टा ट्टहा सैर्डिम्भानां राक्षसी क्षयमेष्यति।। ढुण्ढाख्या राक्ष्ज्ञसी। तत्रैव युधिष्ठिरं प्रति कृष्णवचनम् – सर्वदुष्टापहो होम: सर्वरोगोपशान्तये।। क्रियतेऽस्यां द्विजै: पार्थ तेन सा होलिका मृता।। तत्र पूर्णिमा प्रदोषव्यापिनी भद्रारहिता ग्राह्या –तपस्य पौर्णमास्यां तु राजन्यां होलिकोत्सव:। न कर्तव्यो दिवा विष्ट्यां रिक्तायां प्रति पत्स्वपि।

होलिकोत्सव फाल्गुन मास की पूर्णिमा तिथि को होता है। भविष्य पुराण में युधिष्ठिर जी के प्रश्न पर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने रघु के प्रति जो वसिष्ठ जी के वचन हैं, उनका उदाहरण दिया है। वसिष्ठ जी बोले कि, हे राजन फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा के दिन सब मनुष्यों को अभय दे दीजिये। जिससे मनुष्य नि:शंक होकर हंसे और विचरें, हर्षोल्लास करते हुए बालक योद्धाओं की तरह काठ के टुकड़े लेकर चले जायें। सूखा काठ और उपलों का उँचा ढेर बनाया जाय, उसमें बहुत से रक्षोघ्न मंत्रों से विधि के साथ अग्नि दी जाय।

होलिका निर्णय – इसमें यह भद्रा रहित प्रदोषव्यापिनी लेनी चाहिये, क्योंकि दुर्वासा ने कहा है कि फाल्गुन पूर्णिमा के दिन-रात को होली का उत्सव होता है। उसे दिवा विष्टि (भद्रा) रिक्ता और प्रतिपदा में नहीं करना चाहिये। नारद जी का भी कथन है कि प्रतिपदा, चतुर्दशी और भद्रा के दिन, होलिका का पूजन होने से वह वर्ष भर राष्ट्र को जलाती रहती है, अत: सदैव फाल्गुन की पूर्णिमा को प्रदोषव्यापिनी ग्रहण करना चाहिये। इसमें भद्रा के मुख को छोड़कर प्रदोष में होली का पूजन हो। दो दिन प्रदोषव्यापिनी हो तो परा का ही ग्रहण करना चाहिये। यदि निशीथ के बाद भद्रा का अवसान मिल जाय तो भद्रा के मुख को छोड़कर भद्रा में ही प्रदोष के समय आग दे दे, क्योंकि दिनार्ध से

उपरि यदि फाल्गुन की पूर्णिमा हो तब रात को भद्रा के अवसान में होलिका जलानी चाहिए। यदि पूर्व दिन प्रदोषकाल में पूर्णिमा न रहती हो अथवा उसके रहने पर भद्रा बिना समय न मिले एवं दूसरे दिन प्रदोषकाल में पूर्णिमा न हो तो भद्रा की पुच्छ में अग्नि देकर होलिका जलानी चाहिए। फाल्गुन मलमास हो तो शुद्ध मास होने पर होली होती है।

3.4 अमावस्या तिथि परक निर्णय

अमावस्या के व्रत –

कुशोत्पाटनी, पिठोरीव्रत, महालक्ष्मी व्रत (दीपावली), गौरी व्रत, महाव्रत, सोमवती अमावस्या व्रत, अर्धोदय व्रत, मलमास व्रत, स्वस्तिक व्रत आदि।

भाद्रपद की अमावस्या के दिन कुश ग्रहण करना चाहिये। इसी दिन कुशों का संचय करने पर इसका नाम 'कुशोत्पाटनी' पड़ा। इन्हीं कुशों का प्रयोग पश्चात् पूजन, श्राद्ध-तर्पण आदि कार्यों में वर्षपर्यन्त करना चाहिए।

पिठोरी व्रत अमावस्या के दिन होता है। यह मध्यप्रदेश मे पोला नाम से प्रसिद्ध है, इसे प्रदोषव्यापिनी लेना चाहिए।

महालक्ष्मी व्रत अथवा दीपावली कार्तिक मास की अमावस्या तिथि के दिन होता है। प्रदोषकाल में लक्ष्मी पूजन करना चाहिये। कार्तिकामावस्यायां लक्ष्मीव्रतं बलिराज्योत्सवश्च।। प्रदोषसमये पूजयेदिन्दिरां शुभाम्।।

सोमवती अमावस्या – अमावस और सोमवार का योग जहाँ-जहाँ मिल जाय वहाँ-वहाँ ही यह व्रत मनाने का विधान है। क्योंकि तीर्थ, कपिलधार, गंगा, पुष्कर, एवं दिव्य अन्तरिक्ष और भूमि के जो सब तीर्थ हैं, सोमवारी दर्श के दिन वहाँ ही रहते हैं।तिथि और वार का योग यथाकाल मिल जाय, भानु के अन्त वा मध्याह्न में वही पुण्यकाल है, अन्यथा नहीं है। यहीं अश्वत्थ के मूल में विष्णु के पूजन का मन्त्र है।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में व्रत एवं पर्वों की एक लम्बी परम्परा सदियों से चली आ रही है, और इन व्रत-पर्वों का निर्णय ज्योतिष विद्या के अनुसार ही किया जाता रहा है। वस्तुत: सभी व्रतों के धर्मशास्त्रीय निर्णय की अपेक्षा एकादशी व्रत का निर्णय अधिक कठिन है तथा सामान्य विद्वानों को शास्त्र देखने पर भी भ्रम एवं सन्दहोत्पादक है। अत: यहाँ पाठकों के सुलभता हेतु सरल तरीके से एकादशी तिथि परक निर्णय का

वर्णन किया जा रहा है। प्रथमतया तिथि और उसके वेधों के प्रकार जान लेना आवश्यक है। तिथि दो प्रकार की होती है- १. सम्पूर्णा (शुद्धा) २. सखण्डा (विद्धा)। सूर्योदय से लेकर दूसरे दिन के सूर्योदय तक ६० घटी रहनेवाली तिथि को पूर्णा कहते हैं और इसी बीच में दूसरी तिथि आ जाय तो वह सखण्डा कहलाती है। सखण्डा भी दो प्रकार की होती है – १. सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक रहनेवाली एवं शिवरात्रि इत्यादि व्रतों में अर्धरात्रि तक रहनेवाली शुद्धा और इससे अन्य विद्धा। तिथियों का वेध भी दो प्रकार से होता है – १. प्रातर्वेध २. सायंवेध। यह दोनों वेध सामान्यत: ६ घटी का होता है, कहीं प्रात: वेध विशेषत: ४ घटी का भी कहा गया है। जैसे प्रात:वेध में तिथि का मान सूर्योदय काल से ६ (या कम से कम ४ घटी) का हो तो वह अग्रिम तिथि को वेधित करेगी, इससे अल्पमान की होने पर स्वत: अग्रिम तिथि द्वारा वेधित होगी। इसी प्रकार सायं वेध ये सूर्यास्त से न्यूनतम ६ घटी पूर्व जिस तिथि का आरम्भ होगा, वह पूर्ववर्ती तिथि का वेध करेगी, अन्यथा स्वत: उससे वेधित होगी। यह तिथि विषयक सामान्य वेध विचार है, किन्तु एकादशी व्रत निर्णय में दशमी तिथि के विशेष वेधों का विचार किया जाता है। एकादशी व्रत के मुख्य चार भेद है एवं तदनुसार ४ प्रकार के वेधों के आधार से उनका निर्णय किया जाता है। १. स्मार्त्त = ६० घटी का वेध, २ वैष्णव = ५६ घटी का वेध,३. रामानुज एवं बल्लभमतानुयायी वैष्णव = ५५ घटी का वेध, ४. निम्बार्क सम्प्रदाय के चक्रांकित महाभागवतों का वेध = ४५ घटी का है। अर्थात् सूर्योदय समय में दशमी हो तो स्मार्त, सूर्योदय से पहले ४ घटी के भीतर दशमी हो तो वैष्णव, सूर्योदय से पूर्व ५घटी के भीतर दशमी हो तो रामानुज एवं बल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णव जन तथा सूर्योदय से पूर्व १५ घटी के भीतर दशमी उपलब्ध हो तो निम्बार्क सम्प्रदाय के महाभागवत उस एकादशी को दशमी विद्धा मानते हैं। दशमीविद्धा एकादशी में व्रत करना सर्वानुमतेन वर्जित है। द्वादशी तिथि के व्रतों में चैत्र शुक्ल द्वादशी को 'दमनोत्सव' का विधान है। रामार्चन चन्द्रिका में लिखा हुआ है कि चैत्र शुक्ल द्वादशी के दिन दमनोत्सव प्रतिवर्ष करना चाहिए। ऐसा बौधायनादिकों ने कहा है। दमन या दमनक अशोक के फल का नाम है। पद्मपुराण में लिखा हुआ है कि कार्तिक में व्रत, चैत्रमें दोला और श्रावण में तन्तुपूजन, पवित्रारोहण एवं चैत्र में दमनोत्सव इनको न करके अध:पतन होता है। त्रयोदशी तिथि के अन्तर्गत जयापार्वतीव्रत, गोत्रिरात्रव्रतम्, अशोकरात्रिरात्रव्रतम्, शनि प्रदोषव्रत, प्रदोषव्रत तथा अनंगत्रयोदशीव्रतम् प्रमुख हैं।यदि किसी पक्ष में दो चतुर्दशी तिथि पड़ जाय तो उसमें कौन सा व्रत के लिए धारण करें अथवा कौन सा नहीं? यह निर्णय का विषय है। कृष्ण पूर्वा शुक्ल उत्तरा ली जाती है। उपवास में दोनों पक्षों की चतुर्दशी परा अर्थात् बाद वाली लेनी चाहिए। व्रतराजकार भी कहते है कि चैत्र शुक्ल चतुर्दशी पूर्वा लेनी चाहिए। कुशोत्पाटनी, पिठोरीव्रत, महालक्ष्मी व्रत (दीपावली), गौरी

व्रत, महाव्रत, सोमवती अमावस्या व्रत, अर्धोदय व्रत, मलमास व्रत, स्वस्तिक आदि व्रत अमावस्या तिथि के प्रमुख व्रत माने जाते हैं।

3.6 पारिभाषिक शब्दावली

शुद्धा तिथि – तिथि के मुख्यत: दो भेद है – एक शुद्धा, दूसरा विद्धा। शुद्धा तिथि का मान सम्पूर्ण होता है, इसलिए इसे सम्पूर्ण तिथि के नाम से भी जानते हैं।

विद्धा तिथि – सखण्डा तिथि को विद्धा तिथि कहते हैं।

सायं वेध – तिथियों का वेध भी दो प्रकार से किया जाता है। सायंकालीन की जाने वाली तिथि वेध सायं वेध कहलाती है।

जया महाद्वादशी – शुक्ल पक्ष में द्वादशी तिथि पुष्य नक्षत्र से युक्त हो तो उसे जया महाद्वादशी कहते हैं।

वैष्णव – विष्णु के उपासक वैष्णव कहलाते हैं।

अर्धोदय – आधा उदय।

अमावस्या – कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि का नाम अमावस्या है। इसमें चन्द्रमा अदृश्य होता है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न की उत्तरमाला

1.क 2. ग 3. घ 4. ख 5. ख 6. ग

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. व्रतराज - मूल लेखक- विश्वनाथ शर्मा, टिका – माधवाचार्य

2. निर्णयसिन्धु – कमलाकर

3. धर्मसिन्धु –

4. मुहूर्त्तचिन्तामणि– पीयूषधारा टिका।

5. स्कन्द पुराण

6. भविष्य पुराण

7. ब्रह्मवैवर्त पुराण

3.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. व्रतराज

2. धर्मसिन्धु

3. निर्णयसिन्धु

4. आपस्तम्ब धर्मसूत्र

5. मुहूर्त्तचिन्तामणि – पीयूषधारा टिका

6. स्कन्द पुराण

7. भविष्य पुराण

8. ब्रह्मवैवर्त पुराण

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एकादशी तिथि के व्रत का वर्णन कीजिये।

2. एकादशी तिथि का व्रत निर्णय का उल्लेख कीजिये।

3. द्वादशी एवं त्रयोदशी तिथि के व्रत निर्णय का विवेचन कीजिये।

4. चतुर्दशी एवं पूर्णिमा के व्रत कौन-कौन से है।

5. अमावस्या के व्रतों का संक्षिप्त उल्लेख कीजिये।

इकाई - 4 वारपरक व्रत का निर्णय

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के चतुर्थ खण्ड की चौथी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – वारपरक व्रत का निर्णय। इससे पूर्व की इकाई में आपने तिथिपरक निर्णयों को जान लिया है। आइये अब वारपरक व्रतों का अध्ययन करते हैं।

वार से तात्पर्य सोमवार से रविवार पर्यन्त हैं। इन वारों में पड़ने वाले व्रतों का निर्णय किस प्रकार ज्योतिषशास्त्र के माध्यम से किया जाता है?

प्रिय अध्येताओं! हम सब जानते हैं कि व्रत का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन के साथ जुड़ा है। अत: आइये उक्त विषयों की चर्चा हम इस इकाई में करते है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि वारपरक व्रत किसे कहते हैं।
- वार परक व्रतों में मुख्य क्या होता है।
- वारपरक व्रत का निर्णय कैसे किया जाता है।
- व्रतों का क्या महत्व होता है।

4.3 रविवार एवं सोमवार के व्रत

वारों में प्रथम वार रविवार के व्रत में सर्वप्रथम सूर्यव्रत का विधान है। समस्त रोगों के निवारण के लिए, आयु, ऐश्वर्य तथा आरोग्यता के लिए भगवान सूर्य का व्रत धारण रविवार को करना चाहिए। हम सब जानते हैं के रविवार के स्वामी भगवान सूर्य है। द्वादशादित्य के पूजन से समस्त प्रकार के दु:खों से निवृत्ति मिल जाती है। आदित्यहृदय स्तोत्र का पाठ भगवान सूर्य के प्रसन्नार्थ ही किया जाता है। अत: प्रत्येक रविवार को इसका पाठ करना चाहिये। भगवान श्रीरामचन्द्र जी ने रावण वध के लिए इस पवित्र स्तोत्र का पाठ किया था। रविवार के व्रतों में सूर्यव्रत, सूर्यषष्ठी (छठ) आशादित्य व्रत, दानफलव्रत आदि प्रमुख है। आशादित्य व्रत आश्विन मास के प्रथम रविवार से करने का विधान है। कुष्ठ रोग निवारण में इस व्रत का अत्यधिक महत्व है। दानफल व्रत आश्विन

शुक्ल के अन्तिम रविवार से आरम्भ कर माघ शुक्ल सप्तमी पर्यन्त किया जाता है। सूर्यषष्ठी व्रत का वर्णन पूर्व के इकाई में किया जा चुका है। पुराणों के अनुसार सूर्य कश्यप एवं अदिति के नन्दन अर्थात् पुत्र हैं।

सूर्य का मन्त्र - जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम्। तमोऽरिं सर्वपापघ्नं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।

सोमवार के व्रत -

स्वयं तथा परिवार के क्षेम, स्थिरता, विजय, आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए उमा महेश्वर की प्रीति के लिए **सोमवार व्रत** किया जाता है। यह व्रत न्यूनतम एकमास या एकवर्ष से लेकर चौदहवर्षों तक के लिए उठाया (संकल्पित किया) जाता है। श्रावणमास, चैत्रमास, वैशाखमास, ज्येष्ठमास तथा मार्गशीर्षमास के सोमवार को व्रत करना पुण्यदायक होता है। जैसा कि व्रतराज में लिखा हुआ है- **श्रावणे चैत्रवैशाखे ज्येष्ठेवा मार्गशीर्षके। सोमवारव्रतं पुण्यं कथ्यमानं निबोध में।।** सम्पूर्ण श्रावणमास में सोमवारव्रत करने से श्री, समृद्धि, संतति, सौभाग्य, अक्षयलोक एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस व्रत के प्रभाव से सात जन्मों के पाप विनष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति वर्षपर्यन्त सोमवार का व्रत करता है उसके ऊपर भगवती पार्वती एवं भगवान शिव की कृपा होती है।

भगवान शिव का ध्यान मन्त्र निम्नवद् है –

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजगगिरिनिभं चारूचन्द्रावतंसं। रत्नाकल्पोज्ज्वलांगं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्। पद्मासीनं समन्तात्स्तुतममरगणैव्याघ्रकृत्तिं वसानं। विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पंचवक्त्रं त्रिनेत्रम्।।

ऊँ नम: शिवाय मन्त्र से भगवान शिव की पूजा षोडशोपचारविधि से करनी चाहिए। भगवान् शिव की पूजा से इस लोक में सुख, स्वर्गलोक में संस्थिति और शिवलोक में मोक्षदायक स्थान प्राप्त होता है। केवल सोमवार के दिन शिव की पूजामात्र से भी इस पृथ्वी पर कुछ भी अप्राप्तव्य नहीं रहता- केवलं चापि ये कुर्यु: सोमवारे शिवार्चनम्। न तेषां विद्यते किंचिदिहामुत्र च दुर्लभम्।।

सोमवार के दिन शिव की पूजा करके ब्रह्मचारी, गृहस्थ, यति प्रभृति पुरूष और अविवाहिता, विवाहिता, विधवा आदि स्त्रियाँ अभीष्ट वर को प्राप्त करती हैं। सोमवार व्रत में श्वेत पुष्प, श्वेत मदार, मालती, श्वेत कमल, चम्पा, कुन्द तथा पुन्नाग पुष्प को भगवान शिव एवं भगवती पार्वती के उपर चढ़ाया जाता है। सूर्यास्त के पश्चात् शिवपार्वती की पूजा करके पारण की जाती है। बिल्वपत्र चढ़ाते समय महामृत्युंजय मंत्र को बोलना चाहिए। साथ ही बिल्वपत्र अर्पण का निम्नलिखित मंत्र बोलना चाहिए – त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रयायुधम्। त्रिजन्मपापसंहारं बिल्वपत्रं शिवार्पणम्।।

भक्तिपूर्वक अर्धनारीश्वरस्तोत्र, शिवमहिम्नस्तोत्र, शिवताण्डवस्तोत्र, विश्वनाथाष्टक, रूद्राष्टक, रूद्रसूक्त आदि का पाठ करना चाहिए। ऊँ नम: शिवाय इस पंचाक्षर मन्त्र का रूद्राक्ष की माला पर जाप करना चाहिए। भगवान शिव एवं भगवती पार्वती की धूप, दीप, नैवेद्य से पूजन कर अन्त में आरती करनी चाहिए। अंजलि में पुष्प लेकर निम्नलिखित प्रार्थना करनी चाहिए-

भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमते। उग्राय चोग्रनाशाय शवार्य शशिमौलिने।

रूद्राय नीलकण्ठाय शिवाय भवहारिणे। ईशानाय नमस्तुभ्यं सर्वकामप्रदाय च।।

सोमेश्वरस्तथेशान: शंकरो गिरिजाधव:। महेश: सर्वभूतेश: स्मरारिस्पिुरान्तक:।

शिव: पशुपति: शम्भुस्त्रयम्बक: शशिशेखर:। गंगाधरो महादेवो वामदेव: सदाशिव:।।

सोमवार व्रत के उद्यापन में हवन अवश्य करना चाहिए। सपत्नीकगुरूपूजा कर दान देना चाहिए। पूजन कराने वाले विप्र को वस्रादि के साथ स्वर्ण या गौ आदि का दान करना चाहिए। दान अपनी क्षमता के अनुसार थोड़ा या अधिक किया जाता है। इस व्रत के प्रभाव से व्रतकर्त्ता भगवान शिव के लोक को प्राप्त करता है।

4.4 भौमवार से शनिवार तक के व्रत

भौमवार के व्रत -

मंगलवार को अरुणोदय के समय अपामार्ग की दातुन करके तिल और आमले की पिठी से नदी आदि वा घर में स्नान करके धुले हुए लालवस्त्र/ उपवस्त्र धारण कर तॉबे के पात्र में रक्त चन्दन, अक्षत, पुष्प डालकर 'अग्निर्मूर्धा ...0.'' वैदिक भौम के मन्त्र से १०८ अर्घ्य देकर भौम का पूजन करना चाहिए। पुत्रार्थी और धनार्थी को पत्नी के साथ मंगल का व्रत तथा पूजन करना चाहिये। मंगलवार का व्रत पुत्र, धन, ऐश्वर्य तथा ऋणमोचन के लिए किया जाता है।

भौमवारे अरुणोदयेवेलायामपामार्गेण दन्तधावनं विधाय तिलामलकचूर्णेन नद्यादौ गृहे वा स्नात्वा धौतमारक्तवस्त्रं परिधाय रक्तोत्तरीयं च परिदध्यात्।। ततस्ताम्रपात्रे रक्ताक्षतरक्तपुष्परक्तचन्दनानि निक्षित्य अग्निर्मूर्धेति मन्त्रेणाष्टोत्तशताघ्यान्दिद्यात्। तधो गृहहमागत्य गोमयेन भूमिं विलिप्य शुद्धप्रदेशे पुत्रार्थी धनार्थी च पत्न्या सह मंगलपूजामारभेत्।। मासपक्षाद्युल्लिख्य ऋणव्याधिविनाशार्थं पुत्रधनप्राप्तये च भौमव्रतं करिष्ये तदंगत्वेन भौमपूजनमहं करिष्ये इति संकल्प्य प्रार्थयेत्।।

मन्त्र :- असृजमरुणवर्णं रक्त्माल्यांगरागं कनककमलमालामालिनं विश्ववन्द्यम्।। अतिललितकराभ्यां बिभ्रतं शक्तिशूले भजत धरणिसूनुं मंगलं मंगलानाम्।।

प्रार्थना मन्त्र - ऋणहर्त्रे नमस्तेऽस्तु दु:खदारिद्रनाशक। सुखसौभाग्यधनदो भव में धरणीसुत।। ग्रहराज नमस्तेऽस्तु सर्वकल्याणकारक।। प्रसादात्तव देवेश सदा कल्याणभाजन।। देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसपन्नगा:।। प्राप्नुवन्ति शिवं सर्वे सदा पूर्णमनोरथा:।। प्रसादं कुरु मे भौम सौभाग्यं मंगलप्रद।। बाल: कुमारको यस्तु स भौम: प्रार्थितो मया। उज्जयिन्यां समुत्पन्न नमो भौम चतुर्भुज।। भरद्वाज कुले जात शूलशक्तिगदाधर।।

अभीष्ट प्राप्ति के पश्चात् अथवा एक निश्चित कालावधि के पश्चात् मंगलवार व्रत का उद्यापन भी अवश्य करना चाहिये। बिना उद्यापन किये किसी व्रत को छोड़ना अशुभकारी होता है।

बुधवार के व्रत –

अथात: संप्रवक्ष्यमामि रहस्यं ह्येतदुत्तमम्। येन लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टि पुष्टि: कान्तिश्च जायते।। विशाखासु बुधं गृह्य सप्त नक्तान्यथाचरेत्।। बुधं हेममयं कृत्वा स्थापितं कांस्यभाजने।। शुक्लवस्त्रयुगच्छन्नं शुक्लमाल्यानुलेपनम्। गुडोदनोपहारन्तु ब्राह्मणाय निवेदयेत्।। बुधं त्वं बोधजनो बोधद: सर्वदा नृणाम्। तत्वावबोधं कुरु ते सोमपुत्र नमोनम:।। होमं घृततिलै: कुर्याद्बुधनाम्ना च मन्त्रवित्। समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा। होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव घृतेन च।। बुधशान्तिरिति प्रोक्ता बुधवैकृतनाशनम्।। बुधदोषेषु कर्तव्ये बुधशान्तिक पौष्टिके।।

अर्थात् यहाँ बुधवार को केन्द्रित कर एक उत्तम रहस्य को कहा गया है जिससे लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि और कांति हो जाती हैं। विशाखा नक्षत्र बुधवार को ग्रहण करके सात नक्तव्रत करने को कहा गया है। सोने की बुध प्रतिमा बनाकर कांसे के पात्र में रखकर दो श्वेत वस्त्र पहनायें तथा श्वेत माला और अनुलेपन भी श्वेत ही करें। इस प्रकार तत्व का बोध कराने वाले बुध की पूजा करें। बुध के वैदिक मन्त्र ''उद्बुधयस्व....0'' से घृत, तिल पायस से होम कराये, अपामार्ग की एक सौ आठ समिधा से हवन करना चाहिये। यह बुध की विकृतता को नष्ट करती है।

बुधवार के व्रत में गणेश जी की उपासना करते हैं। बुधवार के व्रत धारण करने से निर्विघ्न कार्य सम्पन्न होते हैं। आयु, सुख, शान्ति, समृद्धि तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। दूर्वा एवं मोदक भगवान गणेश जी को अर्पित करना चाहिये। बुध को चन्द्र सुत भी कहा गया है।

मन्त्र – प्रियंगुकलिकाश्यामं रूपेणाअप्रतिमं बुधम्।। सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्राणमाम्यहम्।।
अभीष्ट प्राप्ति के पश्चात् अथवा एक निश्चित कालावधि के पश्चात् बुधवार व्रत का उद्यापन भी अवश्य करना चाहिये। बिना उद्यापन किये किसी व्रत को छोड़ना अशुभकारी होता है।

वृहस्पतिवार व्रत –

अथात: संप्रवक्ष्यामि रहस्यं ह्येतदुत्तमम्। येन लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टि: पुष्टि: कान्तिश्च जायते।। गुरुं चैवानुराधासु पूजयेद्भक्तितो नर:। पूर्वोक्तविधियोगेन सप्तनक्तात्यथाचरेत्।। हैमं हेममये पात्रे स्थापयित्वा वृहस्पतिम्।। पीताम्बरयुगच्छन्नं पीतयज्ञोपवीतकम्।। पादुकोपानहच्छन्नं कमण्डलुविभूषितम्।। भूषितं पीतकुसुमै: कुंकुमेन विलेपितम्।। धूपदीपादिभिर्दिव्यै: फलैश्चन्दनतण्डुलै:। खण्डखाद्योपहारैश्च गुरोरग्रे निवेदयेत्।। धर्मशास्त्रार्थतत्वज्ञ ज्ञानविज्ञानपारग। विबुधार्तिहराचिन्त्य देवाचार्य्य नमोऽस्तुते।। होमं घृतितिलै: कुर्याद्गुरुनाम्ना च मन्त्रवित्। समिधोऽष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा।। होतव्या मधुसर्पिभ्यां दघ्ना चैव कृतेन च।। पिप्पल्य: समिधो ज्ञेया: शास्त्रान्तरसवादत:।। एतद्व्रतं महापुण्यं सर्वपापहरं शिवम्।। तुष्टिपुष्टिकरं नृणां गुरुवैकृतनाशनम्। विषमस्थे गुरौ कार्य्या जीवशान्तिरियं नृभि:।।

यहाँ वृहस्पति को केन्द्र में रखकर उत्तम रहस्य को कहा गया है, जिससे लक्ष्मी, धृति, पुष्टि, तुष्टि और कांति हो जाती है। वृहस्पति अनुराधा नक्षत्र में भक्ति के साथ गुरु की पूजा करना चाहिये। सोने के पात्र में सोने के वृहस्पति जी को स्थापित करके दो पीताम्बर चढ़ायें। पीला वस्त्र और उपवस्त्र पहनायें। पादुका, उपानह, छत्र और कमण्डलु से सुशोभित करें। पश्चात् प्रणाम करके 'वृहस्पतेऽअतियदय् र्यो.....0'' वैदिक मन्त्र से वृहस्पति का पूजन करना चाहिये।

स्त्री अपने पति की रक्षा के लिए तथा पतिप्रिया होने के लिए वृहस्पति व्रत को धारण करती हैं। वृहस्पतिवार के दिन विधिपूर्वक भगवान विष्णु का पूजन करना चाहिए।

मन्त्र - देवानां च ऋषीणं च गुरु कांचनसन्निभम्।। बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम्।।

वृहस्पति स्तोत्र –

वृहस्पति: सुराचाय् र्यो दयावाञ्दुभलक्षण:। लोकत्रयगुरु: श्रीमान सर्वत: सर्वदो विभु:।।
सर्वेश: सर्वदा तुष्ट: सर्वांग: सर्वपूजित:। अक्रोधनो मुनि प्रेष्ठो नीतिकर्ता जगप्रिय:।।
विश्वात्मा विश्वकर्ता च विश्वयोरियोनिज:। भूर्भुव: स्व: पिता चैव भर्ता जीवो महाबल:।।
पंचविंशति नामानि पुण्यानि शुभदानि च। प्रातरुत्थाय यो नित्यं कीर्तयेत् सुसमाहित:।।
विपरीतोऽपि भगवान् प्रीतस्तत्र वृहस्पति:। नन्दगोपगृहे यच्च विष्णुना परिकीर्तितम्।।
य: पठेत्तु गुरुस्तोत्रं चिरंजीवी न संशय:। गोसहस्रफलं पुण्यं विष्णुर्वचनमब्रवीत्।।
बृहस्पति: सुराचार्य्य: सुरासुरसुपूजित:। अभीष्टफलद: श्रीमान् शुभग्रह नमोऽस्तुते।।

वृहस्पति, सुराचार्य, दयावान, शुभलक्षण, लोकत्रयगुरु, श्रीमान, सभी और से सब देने वाले, विभु, सर्वेश, सर्वदा, तुष्ट, सर्वांग, सर्वपूजित, अक्रोधन, मुनिश्रेष्ठ, नीतिकर्ता, जगत्प्रिय, विश्वात्मा,

विश्वकर्ता, विश्वयोनि, अयोनिज, भू:, भुव:, स्व:, पिता, भर्ता, जीव, महाबल, ये पच्चीस नाम पुण्य देने वाले हैं। अत: वृहस्पति के इन 25 नामों का उच्चारण जो जातक श्रद्धापूर्वक प्रात:काल पूजन के समय करता है, उसकी समस्त मनोकामनायें पूरी होती हैं, ऐसा शास्त्रों का वचन है।

अभीष्ट प्राप्ति के पश्चात् अथवा एक निश्चित कालावधि के पश्चात् गुरुवार व्रत का उद्यापन भी अवश्य करना चाहिये। बिना उद्यापन किये किसी व्रत को छोड़ना अशुभकारी होता है।

अभ्यास प्रश्न –

1. आशादित्य व्रत किस वार को धारण करना चाहिये।
   क. रविवार ख. सोमवार ग. बुधवार घ. वृहस्पतिवार
2. शास्त्रानुसार सोमवार का व्रत न्यूनतम कितने दिनों के लिए धारण करना चाहिये।
   क. एक मास ख. एक वर्ष ग. एक दिन घ. एक मास अथवा एक वर्ष
3. भौमवार व्रत में किस वर्ण का विशेष महत्व है।
   क. श्वेत ख. रक्त ग. पीत घ. श्याम
4. सौम्य किस ग्रह का पर्याय है।
   क. मंगल ख. बुध ग. गुरु घ. शुक्र
5. 'सर्वेश:' नाम किसका है?
   क. शनैश्चर का ख. वृहस्पति का ग. बुध का घ. कोई नहीं

शुक्रवार व्रत –

शुक्रवार के दिन वरलक्ष्मीव्रत का विधान है। यह भविष्य पुराण का कथन है। शुक्रवार के दिन वैभव लक्ष्मी का व्रत भी महिलायें धारण करती हैं। वरलक्ष्मीव्रत श्रावणमास के शुक्रवार के दिन होता है। इस व्रत के प्रभाव से धन, सुख, शांति, समृद्धि, ऐश्वर्य, श्री आदि की प्राप्ति होती है। वैभव लक्ष्मी के व्रत से दरिद्रता दूर होती है तथा सन्तान की भी प्राप्ति होती है।

ध्यान एवं आवाहन का मन्त्र -

ब्राह्मी हंसमारूढा धारिण्यक्षकमण्डलू। विष्णुतेजोऽधिका देवी सा मां पातु वरप्रदा।।

महेश्वरी महादेवि आसनं ते ददाम्यहम्।। महैश्वर्य समायुक्तं ब्रह्माणि ब्रह्मण: प्रिये।।

अभीष्ट प्राप्ति के पश्चात् अथवा एक निश्चित कालावधि के पश्चात् शुक्रवार व्रत का उद्यापन भी अवश्य करना चाहिये। बिना उद्यापन किये किसी व्रत को छोड़ना अशुभकारी होता है।

शनिवार का व्रत –

श्रावण के शनिवार को शनैश्चरव्रत धारण का विधान है। अश्वत्थ (पीपल) के मूल में वेदी बनाकर उस पर धनुषाकार मण्डल लिखकर उस पर लोहे की बनी हुई भैंसे पर चढ़ी हाथों में दण्ड और पाश लिए हुए दुभुजी शनैश्चर की मूर्ति स्थापित करके पूजन करना चाहिये।
मन्त्र – नीलांजन समाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम्। छायामार्तण्ड सम्भूतं तं नमामि शनैश्चरम्।।
पीपल के वृक्ष के समीप कोणस्थ, पिंगल, बभ्रु, कृष्ण, रौद्र, अन्तक, यम, सौरि, शनैश्चर, मन्द, पिप्पलादसंस्तुत, शनिदेव के इन बारह नामों का उच्चारण करने शनि देव प्रसन्न होते हैं, और जपने वालों को कभी शनैश्चरकृत पीड़ा नहीं होती हैं।

अभीष्ट प्राप्ति के पश्चात् अथवा एक निश्चित कालावधि के पश्चात् शनिवार व्रत का उद्यापन भी अवश्य करना चाहिये। बिना उद्यापन किये किसी व्रत को छोड़ना अशुभकारी होता है।
किसी भी वारपरक व्रत का त्याज्य बिना उद्यापन के नहीं करना चाहिये। ऐसा शास्त्र का वचन है। विधिपूर्वक व्रत का धारण के साथ उसका त्याज्य भी विधिपूर्वक उद्यापन के साथ करनी चाहिए।

4.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि वारों में प्रथम वार रविवार के व्रत में सर्वप्रथम सूर्यव्रत का विधान है। समस्त रोगों के निवारण के लिए, आयु, ऐश्वर्य तथा आरोग्यता के लिए भगवान सूर्य का व्रत धारण रविवार को करना चाहिए। हम सब जानते हैं के रविवार के स्वामी भगवान सूर्य है। द्वादशादित्य के पूजन से समस्त प्रकार के दु:खों से निवृत्ति मिल जाती है। आदित्यहृदय स्तोत्र का पाठ भगवान सूर्य के प्रसन्नार्थ ही किया जाता है। अत: प्रत्येक रविवार को इसका पाठ करना चाहिये। भगवान श्रीरामचन्द्र जी ने रावण वध के लिए इस पवित्र स्तोत्र का पाठ किया था। रविवार के व्रतों में सूर्यव्रत, सूर्यषष्ठी (छठ) आशादित्य व्रत, दानफलव्रत आदि प्रमुख है। आशादित्य व्रत आश्विन मास के प्रथम रविवार से करने का विधान है। कुष्ठ रोग निवारण में इस व्रत का अत्यधिक महत्व है। स्वयं तथा परिवार के क्षेम, स्थिरता, विजय, आयु, आरोग्य और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए उमा महेश्वर की प्रीति के लिए **सोमवार व्रत** किया जाता है। यह व्रत न्यूनतम एकमास या एकवर्ष से लेकर चौदहवर्षों तक के लिए उठाया (संकल्पित किया) जाता है। श्रावणमास, चैत्रमास, वैशाखमास, ज्येष्ठमास तथा मार्गशीर्षमास के सोमवार को व्रत करना पुण्यदायक होता है। जैसा कि व्रतराज में लिखा हुआ है - **श्रावणे चैत्रवैशाखे ज्येष्ठेवा मार्गशीर्षके। सोमवारव्रतं पुण्यं कथ्यमानं निबोध मे।।** सम्पूर्ण श्रावणमास में सोमवारव्रत करने से

श्री, समृद्धि, संतति, सौभाग्य, अक्षयलोक एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस व्रत के प्रभाव से सात जन्मों के पाप विनष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति वर्षपर्यन्त सोमवार का व्रत करता है उसके ऊपर भगवती पार्वती एवं भगवान शिव की कृपा होती है। इसी प्रकार मंगलवार में मंगल व्रत, बुध में गणेशव्रत, गुरुवार को वृहस्पतिव्रत, शुक्रवार को वैभव लक्ष्मी व्रत तथा शनिवार को शनैश्चरव्रत का विधान है।

वारों में वर्ज्य पदार्थ -

रविवार को तेल नहीं लगाना चाहिये। मंगलवार में क्षौर कर्म नहीं करना तथा बुधवार को स्त्री संसर्ग नहीं करना चाहिये।

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

सूर्यषष्ठी – सूर्यषष्ठी व्रत को व्यवहार में 'छठ' पर्व के नाम से जानते हैं। शास्त्रीय नाम सूर्यषष्ठी ही है। यह मुख्यत: बिहार, झारखण्ड तथा उत्तरप्रदेश में मनाया जाने वाला पर्व है।

आशादित्य – आशादित्य व्रत आश्विन मास के प्रथम रविवार से करने का विधान है। कुष्ठ रोग निवारण में इस व्रत का अत्यधिक महत्व है।

कृष्णपक्ष – प्रतिपदा से अमावस्या पर्यन्त तक की तिथि कृष्णपक्ष कहलाती है। इसे कालापक्ष के नाम से भी जानते है।

शुक्लपक्ष – प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त की तिथि शुक्लपक्ष कहलाती है। इसे सित (श्वेत) पक्ष के नाम से भी जानते है।

सौम्य – बुध ग्रह का पर्याय।

रविपुत्र – शनि को कहा गया है।

कश्यपनन्दन – सूर्य को।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – 1 की उत्तरमाला

1.क 2. घ 3. ख 4. ख 5. ख

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. व्रतराज - मूल लेखक- विश्वनाथ शर्मा, टिका – माधवाचार्य
2. निर्णयसिन्धु – कमलाकर
3. धर्मसिन्धु – टिकाकार – रविदत्त शास्त्री
4. मुहूर्त्तचिन्तामणि– पीयूषधारा टिका।

5. आपस्तम्ब धर्मसूत्र–

4.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. व्रतराज
2. धर्मसिन्धु
3. निर्णयसिन्धु
4. भविष्य पुराण
5. मुहूर्तचिन्तामणि – पीयूषधारा टिका

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सोमवार के व्रत का वर्णन कीजिये?
2. भौमवार एवं बुधवार के व्रतों का निर्णय कैसे होता है।
3. गुरुवार एवं शुक्रवार के व्रतों का उल्लेख कीजिये।
4. शनिवार के व्रत का वर्णन कीजिये।
5. गुरु से लेकर शनिवार तक के व्रत निर्णय का विवेचन कीजिये।

इकाई – 5 नक्षत्र, योग एवं करण परक निर्णय

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के चतुर्थ खण्ड की पाँचवी इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – नक्षत्र, योग एवं करण परक निर्णय। इसके पूर्व की इकाई में आपने वारों का व्रत एवं उसके निर्णयों का अध्ययन कर लिया है। अब आप नक्षत्र, योग एवं करण परक निर्णय का अध्ययन करने जा रहे है।

नक्षत्र, योग एवं करण परक निर्णय से तात्पर्य यह है कि नक्षत्रों, योगों एवं करणों पर आधारित व्रत कौन-कौन से हैं तथा उनका निर्णय शास्त्रसम्मत कैसे किया जाता है।

आप इस इकाई में मुख्यतया नक्षत्रों, योगों एवं करणों पर आधारित व्रतों को जानेंगे और फिर उनके निर्णयों का भी अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- जान लेंगे कि व्रत किसे कहते हैं।
- नक्षत्र परक व्रतों में मुख्य क्या होता है।
- योग परक व्रत कौन-कौन है एवं उसका निर्णय कैसे किया जाता है।
- करण परक व्रत कौन है। उनके निर्णय विधान क्या है।

5.3 नक्षत्र परक निर्णय

न क्षरतीति नक्षत्रम्। अर्थात् जो स्थिर है, उसका नाम नक्षत्र हैं। अश्विनी से रेवती पर्यन्त २७ नक्षत्र ज्योतिषशास्त्र में कहे गये हैं। यहाँ हम उक्त नक्षत्रों में कौन-कौन से व्रत होते हैं तथा उनका निर्णय शास्त्र की दृष्टिकोण से कैसे किया जाता है। इसका वर्णन करने जा रहे हैं। प्रमुखता के दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो प्राय: समस्त पर्वो में तिथि के साथ नक्षत्रों का योग तो होता ही हैं। कई व्रतों एवं पर्वों में तिथि-नक्षत्र दोनों की महत्ता होती हैं। कुछ में नक्षत्र प्रधान हैं। देखा जाय तो पूरे वर्ष कोई न कोई व्रत अथवा त्योहार होता ही हैं। किन्तु उनमें भी कई प्रमुख तो कई सामान्य होते हैं। अत: व्रतों एवं पर्वों में जन्माष्टमी, नवरात्र/ विजयादशमी, महाशिवरात्रि, रक्षाबन्धन, दीपावली आदि प्रमुख रूप

से जाने जाते हैं। जन्माष्टमी, नवरात्र/ विजयादशमी, महाशिवरात्रि आदि में नक्षत्रों का निर्णय महत्वपूर्ण हैं।

जन्माष्टमी पर्व में नक्षत्र निर्णय – सामान्यतया हम सब जानते हैं कि भगवान कृष्ण का जन्म भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष में अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में हुआ था। यहाँ रोहिणी नक्षत्र से सम्बन्धित निर्णय इस प्रकार हैं। निशिथव्यापिनी रोहिणी नक्षत्र और अष्टमी तिथि का संयोग होना आवश्यक है जन्माष्टमी के लिए। रोहिणी से युत हुई अष्टमी में भी पूर्व दिन में ही अर्धरात्रिविषे अष्टमी और रोहिणी को योग हो और परदिन में अर्धरात्रविषे रोहिणी का योग हो और दोनों दिनों में अर्धरात्रविषे रोहिणी का योग हो ऐसे ये तीन पक्ष हैं। प्रथम दिन में अर्धरात्रविषे रोहिणी का और अष्टमी का योग –जैसे, सप्तमी ४० घड़ी होवे और उस दिन में कृत्तिका नक्षत्र ३५ घडी हो और अष्टमी ४६ घडी हो और अष्टमी के दिन में रोहिणी ३६ घडी हो तो यहाँ पूर्वविद्धा ही अष्टमी लेना उचित होगा। परन्तु दिन में अर्धरात्रिविषे रोहिणी और अष्टमी का योग – जैसे सप्तमी ४२ घडी हो और सप्तमी के दिन कृत्तिका ५० घडी हो और अष्टमी ४७ घडी हो और अष्टमी के दिन रोहिणी ४६ घडी हो यहाँ परविद्धा अष्टमी लेनी चाहिये, दोनों दिनों में अर्धरात्रिविषे रोहिणी का योग – जैसे, सप्तमी ४२ घडी हो, तब यहाँ पर परविद्धा अष्टमी लेनी चाहिये और रोहिणी से युत हुई अष्टमी में ही दोनों दिन अर्धरात्रि में रोहिणी के योग का नहीं होना बहुत प्रकार से होता हैं।

विजयादशमी में नक्षत्र निर्णय – विजयादशमी पर दिन में ही अपराह्नकालव्यापिनी हो तो परविद्धा लेनी चाहिए। दोनों दिनों में अपराह्नकाल में व्याप्ति हो अथवा दोनों दिनों में श्रवण नक्षत्र का योग हो अथवा नहीं हो तब पूर्वविद्धा ही लेनी चाहिए। ऐसे ही दोनों दिनों में अपराह्नकाल में व्याप्ति नहीं हो और श्रवणनक्षत्र का योग हो अथवा नहीं तो भी पूर्वविद्धा ही दशमी लेनी चाहिये। दोनों दिनों में अपराह्नव्यापित हो अथवा नहीं हो और एक कोई से दिन में श्रवण नक्षत्र का योग हो तो जिस दिन श्रवण नक्षत्र का योग हो वही तिथि लेनी चाहिये। निर्णयसिन्धु में तो यह भी कहा है कि पर दिन में अपराह्नकाल में पहले ही श्रवण नक्षत्र हो तब भी पर दिन की ग्रहण करना चाहिये। जो अपराह्नकाल के पहले ही श्रवण नक्षत्र की समाप्ति हो तो पहली वाली दशमी ग्रहण करना चाहिये।

करण परक निर्णय – भद्रा से वर्जित और छ: घटीकाओं से अधिक उदयकाल में व्याप्त होने वाली ऐसी पौर्णमासी में अपराह्नकालविषे अथवा प्रदोषकालविषे रक्षाबन्धन मनानी चाहिये। उदयकाल में ६ घटीकाओं से कम पूर्णिमा हो तो पहले करना चाहिये, परन्तु भद्रा से रहित प्रदोषकाल में रक्षाबन्धन मनाने का शास्त्रीय विधान है।

नक्षत्र परिचय -

भचक्र का 27 वाँ भाग अर्थात् 13^0 ।20 अंशादि के बराबर एक नक्षत्र होता है। ज्यौतिषशास्त्र के अनुसार नक्षत्रों की संख्या 27 मानी गई है। प्रत्येक नक्षत्र के चार समान भाग (1 अंश = 3^0।20) होते है । ये भाग चरण या पाद कहलाते हैं। एक राशि में 9 चरण या सवा दो नक्षत्र होते है।

अश्विनी भरणी चैव कृत्तिका रोहिणी मृग:।
आर्द्रा पुनर्वसु: पुष्यस्तत: श्लेषा मघा तथा।।
पूर्वाफाल्गुनिका तस्मादुत्तराफाल्गुनी तत:।
हस्तश्चित्रा तथा स्वाती विशाखा तदनन्तरम्।।
अनुराधा ततो ज्येष्ठा तथा मूलं निगद्यते।
पूर्वाषाढोत्तराषाढा अभिजिच्छ्रवणस्तत:।।
धनिष्ठा शतताराख्यं पूर्वाभाद्रपदा तत:।
उत्तराभाद्रपाच्चैव रेवत्येतानि भानि च।।

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, पू0फा0, उ0फा0, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूल, पू0षा0, उ0षा0, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पू0भा0, उ0भा0, रेवती। ये 27 नक्षत्र कहे गये है।

शुभाशुभ नक्षत्र –

रोहिण्यश्विमृगा: पुष्यो हस्तचित्रोत्तरात्रयम्।
रेवती श्रवणश्चैव धनिष्ठा च पुनर्वसु:।।
अनुराधा तथा स्वाती शुभान्येतानि भानि च।
सर्वाणि शुभकार्याणि सिद्ध्यन्त्येषु च भेषु च।।
पूर्वात्रयं विशाखा च ज्येष्ठार्द्रा मूलमेव च।
शतताराभिधैष्वेव कृत्यं साधारणं स्मृतम्।।
भरणी कृत्तिका चैव मघा आश्लेषा तथैव च।
अत्युग्रं दुष्टकार्यं यत् प्रोक्तमेषु विधीयते।।

रोहिणी, अिश्वनी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, चित्रा, तीनों उत्तरा, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, पुनर्वसु, अनुराधा, और स्वाती ये नक्षत्र शुभ कहे गये हैं, इनमें शुभ कर्म प्रशस्त हैं।
तीनों पूर्वा, विशाखा, ज्येष्ठा, आर्द्रा, मूल तथा शततारा इनमें साधारण कृत्य शुभ हैं।

भरणी, कृत्तिका, मघा, आश्लेषा, इनमें अति उग्र या दुष्टकर्म सिद्ध होते हैं।

ध्रुवनक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म -

उत्तरात्रय – रोहिण्यो भास्करश्च ध्रुवं स्थिरम् ।

तत्र स्थिरं बीजगेहशान्त्यारामादिसिद्धये ।।

तीनों उत्तरा, रोहिणी और रविवार ये ध्रुव संज्ञक और स्थिर संज्ञक हैं । इनमें स्थायी गृहारम्भ विवाह, उपनयन, कृषि, शान्ति और वाटिका लगाना आदि कार्य शुभ होते हैं ।

चरनक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म –

स्वात्यादित्ये श्रुतेस्त्रीतिण चन्द्रश्चापि चरं चलम् ।

तस्मिन् गजादिकारोहो वाटिकागमनादिकम् ।।

स्वाती, पुनर्वसु, श्रवण, धनिष्ठा, शततारा तथा ये चर और चल संज्ञक हैं, इनमें यात्रा, बागीचा गमन, हाथी आदि सवारी पर चढ़ना, नृत्य गीतादि अल्पकालीन सम्पन्न होने योग्य सभी कार्य सिद्ध होते है

उग्र नक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म –

पूर्वात्रयं याम्यमघे उग्रं क्रूरं कुजस्तथा ।

तस्मिन् घाताग्निशाठयानि विषशस्त्रादि सिद्धयति ।।

तीनों पूर्वा, भरणी, मघा और मंगलवार उग्र और क्रूर संज्ञक हैं, इनमें घात, अग्नि, शठता, विष, शस्त्र, मारण आदि क्रूरकर्म की सिद्धि होती है ।

मिश्र नक्षत्र और उनमें कृत्यकर्म –

विशाखाग्नेयभे सौम्ये मिश्रं साधारणं स्मृतम् ।

तत्राऽग्निकार्यं मिश्रं च वृषोत्सर्गादि सिद्धयति ।।

विशाखा, कृत्तिका, और बुधवार ये मिश्र और साधारण संज्ञक हैं, इनमें अग्निकार्य, मिश्रकार्य और वृषोत्सर्गादिकार्य सिद्ध होते हैं ।

लघु नक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म –

हस्ताश्वि पुष्याऽभिजित: क्षिप्रं लघु गुरूस्तथा ।

तस्मिन् पुण्यरतिज्ञानं भूषाशिल्प कलादिकम् ।।

हस्त, अश्विनी, पुष्य, अभिजित् और वृहस्पतिवार ये लघु और क्षिप्र संज्ञक हैं, इनमें यात्रा, बाजार लगाना, मंगलकार्य, वस्त्र, भूषण, रति, शिल्प कला कार्य सिद्ध होते हैं ।

मृदु नक्षत्र और उनमें कृत्य कर्म –

मृगान्त्यचित्रामित्रर्क्षं मृदु मैत्रं भृगुस्तथा ।

तत्र गीताम्बरक्रीडा मित्रकार्यं विभूषणम्।।

मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा और शुक्रवार ये मृदु तथा मैत्र संज्ञक हैं, इनमें समस्त शुभकार्य, गीत, नृत्य, वस्त्रधारण, क्रीडा, मित्रकार्य शुभ हैं।

तीक्ष्ण नक्षत्र और उनके कृत्य -

मूलेन्द्रार्द्राहिभं सौरिस्तीक्ष्णं दारूणसंज्ञकम्।

तत्राऽभिचारघातोग्रभेदा: पशुदमादिकम्।।

मूल, ज्येष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा और शनिवार ये तीक्ष्ण और दारूण संज्ञक हैं, इनमें अभिचार (मारण, मोहन, भूत – बैताल की सिद्धि), घात, पापकृत्य, मित्रों में भेद डालना तथा पशु का दमन करना इत्यादि क्रूरकर्म सिद्ध होते हैं।

अध, उर्ध्व और तिर्यङ्मुख नक्षत्र –

मूलाहिमिश्रोग्रमधोमुखं भवेदूर्ध्वास्यमार्द्रेज्यहरित्रयं ध्रुवम्।

तिर्यङ्मुखं मैत्रकरानिलादिज्येष्ठाश्विभानीदृशकृत्यमेषु सत्।।

मूल, आश्लेषा, विशाखा, कृत्तिका, तीनों पूर्वा, भरणी और मघा ये अधोमुख नक्षत्र हैं। आर्द्रा, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, शततारा, तीनों उत्तरा और रोहिणी ये उर्ध्वमुख तथा अनुराधा, हस्त, स्वाती, पुनर्वसु, ज्येष्ठा एवं अश्विनी ये तिर्यङ्मुख नक्षत्र हैं। जैसा जो नक्षत्र होता है उसमें वैसा कार्य शुभ होता है।

नक्षत्रों में अन्य विशेष - चित्रा, हस्त, और श्रवण नक्षत्रों में तेल नहीं लगाना चाहिये। विशाखा और प्रतिपदा में क्षौर कर्म वर्जित है। मघा, कृत्तिका और तीनों उत्तरा में स्त्री-संसर्ग नहीं करना चाहिये। मूल, मघा, रेवती, तथा ज्येष्ठा नक्षत्र गर्भाधान के लिए वर्जित हैं। भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, तीनों पूर्वा तथा विशाखा नक्षत्र गर्भाधान हेतु मध्यम कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त अशुभ कहे गये हैं।

अभ्यास प्रश्न –

1. नक्षत्रों की संख्या कितनी है?

   क.२५ ख.२६ ग.२७ घ.२८

2. विजयादशमी के दिन कौन सा नक्षत्र ग्रहण किया जाता है?

   क. कृत्तिका ख. श्रवण ग. रोहिणी घ. मृगशिरा

3. कृष्ण का जन्म किस नक्षत्र में हुआ था।

   क. कृत्तिका ख. श्रवण ग. रोहिणी घ. मृगशिरा

4. निम्न में उग्र नक्षत्र नहीं है?

क. भरणी ख. कृत्तिका ग. रोहिणी घ. मृगशिरा

5. तिथि का आधा भाग क्या होता है?

क. करण ख. योग ग. नक्षत्र घ. कोई नहीं

योग एवं करण -

भूकेन्द्रीय दृष्टि से सूर्य – चन्द्रमा की गति का योग जब एक नक्षत्र भोगकला (800 कला) तुल्य होता है, तब एक योग की उत्पत्ति होती है। सामान्य रूप में योग का अर्थ होता है – जोड़। सूर्य व चन्द्रमा के स्पष्ट राशियादि के जोड़ को ही '**योग**' कहते है। इनकी संख्या 27 है –

विष्कुम्भः प्रीतिरायुष्मान् सौभाग्यः शोभनस्तथा।
अतिगण्डः सुकर्मा च धृतिः शूलस्तथैव च।।
गण्डो वृद्धिर्ध्रुवश्चैव व्याघातो हर्षणस्तथा।
वज्रसिद्धी व्यतीपातो वरीयान् परिघः शिवः।।
सिद्धसाध्यौ शुभः शुक्लो ब्रह्मैन्दो वैधृतिस्तथा।
सप्तविंशतियोगाः स्युः स्वनामसदृशं फलम्।।

विष्कुम्भ, प्रीति, आयुष्मान, सौभाग्य, शोभन, अतिगण्ड, सुकर्मा, धृति, शूल, गण्ड, वृद्धि, ध्रुव, व्याघात, हर्षण, वज्र, सिद्धि, व्यतीपात, वरीयान, परिघ, शिव, सिद्ध, साध्य, शुभ, शुक्ल, ब्रह्म, ऐन्द्र, वैधृति। ये 27 योग होते है। ये अपने – अपने नामानुसार शुभाशुभ फल देते हैं। अर्थात् इनमें – विष्कुम्भ, वज्र, गण्ड, अतिगण्ड, व्याघात, शूल, वैधृति, व्यतीपात, परिघ ये 9 योग अशुभ और शेष योग शुभ हैं।

मुहूर्त्त जगत में योग को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया है – नैसर्गिक व तात्कालिक।

नैसर्गिक योगों का सदैव एक ही क्रम रहता है और एक के बाद एक आते रहते हैं। विष्कंभादि 27 योग नैसर्गिक श्रेणी गत हैं। परन्तु तात्कालिक योग - तिथि – वार- नक्षत्रादि के विशेष संगम से बनते है। आनन्द प्रभृति एवं क्रकच, उत्पात, सिद्धि, तथा मृत्यु आदि योग तात्कालिक है।

विष्कम्भादि योग – किसी भी दिन विष्कम्भादि वर्तमान योग ज्ञात करने के लिये पुष्य नक्षत्र से सूर्यर्क्ष तक तथा श्रवण नक्षत्र से दिन नक्षत्र तक गणना करके दोनों प्राप्त संख्याओं के योग में 27 का भाग देने पर अवशिष्टांकों के अनुसार विष्कम्भादि यथा क्रम योग जानना चाहिये। विष्कम्भादि 27 योगों को इस चक्र द्वारा भी समझा जा सकता है।

योग चक्र

यो. सं.	1	2	3	4	5	6	7	8	9
योग	विष्कंभ	प्रीति	आयु.	सौभा.	शोभन	अति.	सुकर्म .	धृति	शूल
स्वामी	यम	विष्णु	चन्द्र	ब्रह्मा	गुरू	चन्द्र	इन्द्र	जल	सर्प
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ
यो. सं.	10	11	12	13	14	15	16	17	18
योग	गण्ड	वृद्धि	ध्रुव	व्याघात	हर्षण	वज्र	सिद्धि	व्यती.	वरी.
स्वामी	अग्नि	सूर्य	भूमि	वायु	भग	वरूण	गणेश	रूद्र	कुबेर
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ	अशुभ	शुभ
यो. सं.	19	20	21	22	23	24	25	26	27
योग	परिघ	शिव	सिद्ध	साध्य	शुभ	शुक्ल	ब्रह्म	ऐन्द्र	वैधृति
स्वामी	विश्वकर्मा	मित्र	कार्तिकेय	सावित्री	लक्ष्मी	पार्वती	अश्विनी	पितर	दिति
फल	अशुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	शुभ	अशुभ	अशुभ

निन्द्य योग

व्यतीपात योग – यह एक महान उपद्रवकारी योग है। विष्कम्भादि योगों में तो यह 17 वॉं योग है ही, जो कि क्रम से आता रहता है। परन्तु यह तात्कालिक योग भी है, जो अमावस्या को रविवार या श्रवण, धनिष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा अथवा मृगशिरा नक्षत्र के सान्निध्य से उत्पन्न होता है। इस अमाजनित व्यतीपात में गंगा स्नान का बडा ही महत्व है। समस्त मांगलिक कार्यों एवं यात्रादि में इसका परित्याग ही हितकर है।

वैधृति – यह भी व्यतिपात के ही समकक्ष है। अत: इसे भी शुभजनक कृत्यों में पूर्णतया विवर्ज्य समझना चाहिये। शेष जघन्य योगों में परिघ का पूर्वार्द्ध, विष्कम्भ और वज्र की आदि 3 घटी व्याघात की प्रारम्भिक 9 घटी, शूल की पहली 5 घटी तथा गंड – अतिगण्ड के शुरूआत की 6-6 घटियॉ विशेषत: त्याज्य है।

अन्तर्योग – विष्कम्भादि प्रत्येक योग में क्रमश: विष्कम्भादि 27 अन्तर्योग ठीक उसी प्रकार आते हैं जैसे किसी ग्रह की महादशा में सूर्यादि समस्त ग्रहों की अन्तर्दशाऍं आया करती है । प्रत्येक अन्तर्योग का भोग्यमान प्राय: 1 घटी 48 पल अर्थातद्य 43 मिनट 12 सेकेण्ड होता है । अन्तर्योगों का यह प्रयोजन है कि जो शुभाशुभ फल विष्कम्भादि विभिन्न प्रधान योगों के हैं वे ही फल किसी भी शुभाशुभ योग में आनेवाले अन्तर्योगों के भी जानना चाहिये। इनका विचार यथा सम्भव आवश्यक कर्मों में ही किया जाता है।

योगोत्पत्ति –

वाक्पतेरर्कनक्षत्रं श्रवणाच्चान्द्रमेव च।

गणयेत्तद्युतिं कुर्याद्योग: स्यादृक्षशेषत:।।

पुष्य नक्षत्र से वर्तमान सूर्याधिष्ठित नक्षत्र पर्यन्त की तथा श्रवण से चन्द्राधिष्ठित नक्षत्र पर्यन्त की संख्याओं का योग करके 27 से भाग देने पर जो शेष बचे, विष्कुम्भादि से उतने योग गणना कर समझना चाहिये।

उदाहरण – संवत 2015 वैशाख कृष्ण पक्ष अमावस्या शनिवार में योग ज्ञात करना है। उस दिन सूर्य अश्विनी और चन्द्रमा अश्विनी में हैं। अत: पुष्य से अश्विनी तक 21 संख्या और श्रवण से अश्विनी तक 7 संख्या हुई, दोनों का योग 21 + 7 = 28 ÷ 27 शेष 1 अर्थात् विष्कुम्भ योग हुआ।

आनन्दादि योग –

वार और नक्षत्र के समाहार से तात्कालिक आनन्दादि 28 योगों का प्रादुर्भाव होता है। इन योगों को ज्ञात करने के हेतु वार विशेष को निर्दिष्ट नक्षत्र से विद्यमान नक्षत्र तक साभिजित् गणना की जाती है रविवार को अश्विनी से, सोम को भरणी से, मंगल को आश्लेषा से, बुध को हस्त से, गुरू को अनुराधा से, शुक्र को उत्तराषाढ़ा से तथा शनिवार को शतभिषा से तद्दिन के चन्द्रर्क्ष तक गणना पर आप्त संख्या को ही उस दिन वर्तमान आनन्दादि योग का क्रमांक जानना चाहिये।

करण - तिथि का आधा भाग करण कहलाता है। कृष्णपक्ष में तिथि संख्या को सात से विभाजित करने पर प्राप्त अवशिष्ट संख्यक करण तिथि के पूर्वार्द्ध में तथा शुक्लपक्ष में दुगुनी तिथि संख्या में से 2 घटा कर सात का भाग देने पर शेषांक क्रमसंख्या वाला करण उस तिथि के पूर्वार्द्ध में अवस्थित होता है। उससे अग्रिम क्रमप्राप्त 'करण' तिथि के उत्तरार्द्ध में होता है।

प्रत्येक तिथि में दो – दो करण होते हैं, अर्थात् तिथि के आधे को करण कहते है। करणों की कुल संख्या 11 है। जिसमें बवादि 7 करण तथा किंस्तुघ्न आदि 4 करण होते है। बवादि करण चलायमान होते है, तथा किंस्तुघ्नादि 4 करण स्थिर होते है। विष्टि करण को ही भद्रा कहते है, जो सभी शुभ कार्यों में त्याज्य कहा गया है।

करण नाम –

बवं च बालवं चैवं कौलवं तैतिलं गरम्।
वणिजं विष्टिमित्याहु: करणानि महर्षय:।।
अन्ते कृष्णचतुर्दश्या: शकुनिर्दर्शभागयो:।
भवेच्चतुष्पदं नागं किंस्तुघ्नं प्रतिपद्दले।।

करणों की शुभाशुभता – बवादि प्रथम करण सप्तक चर एवं शेष शकुन्यादि चतुष्टय स्थिर संज्ञक है। बवादि छ: करणों में मांगलिक कर्म शुभ, भद्रा सर्वथा त्याज्य है तथा अन्तिम चार करणों में पितृ कर्म

प्रशस्त है।

भद्रा निर्णय –

शुक्ले पूर्वाधेऽष्टमी पंचदश्योर्भद्रैकाश्यां चतुर्थ्यां परार्धे।

कृष्णेऽन्त्यार्धे स्यात्तृतीया दशम्योः पूर्वे भागे सप्तमी शम्भुतिथ्योः।।

शुक्लपक्ष में अष्टमी और पंचदशी के पूर्वार्ध में, एकादशी और चतुर्थी के परार्द्ध में एवं कृष्णपक्ष में तृतीया और दशमी के परार्द्ध में, सप्तमी और चतुर्दशी के पूर्वार्द्ध में भद्रा होती है।

भद्रा के मुख – पुच्छ संज्ञा –

पंचद्वयद्रिकृताष्टरामरसभूयामादिघटयः शरा

विष्टेरास्यमसद्गजेन्दुरसरामाद्रयश्विबाणाब्धिषु।

यामेष्वन्त्यघटीत्रयं शुभकरं पुच्छं तथा वासरे

विष्टिस्तिथ्यपरार्धजा शुभकरी रात्रौ तु पूर्वार्द्धजा।।

शुक्लपक्ष की चतुर्थी तिथि में 5 प्रहर, अष्टमी में 2 प्रहर, एकादशी में 7 प्रहर, पूर्णिमा में 4 प्रहर की और कृष्णपक्ष की तृतीया में 8 प्रहर, सप्तमी में 3 प्रहर, दशमी में 6 प्रहर, चतुर्दशी में 1 प्रहर की आरम्भ की पॉच घटी भद्रा का मुख है, जो अशुभ है। तथा शुक्लपक्ष की चतुर्थी में 8 प्रहर, अष्टमी में 1 प्रहर, एकादशी में 6 प्रहर, पूर्णिमा में 3 प्रहर की और कृष्णपक्ष की तृतीया में 7 प्रहर, सप्तमी में 2 प्रहर, दशमी में 5 प्रहर, चतुर्दशी में 4 प्रहर की तीन घटी पुच्छ है, जो शुभ है।

परार्द्ध की भद्रा दिन में आ जाये और पूर्वार्द्ध की रात्रि में चली जाये तो भद्रा दोष नहीं लगता। यह भद्रा सुख को देने वाली होती है। यथा –

दिवाभद्रा यदा रात्रौ रात्रिभद्रा यदा दिने।

तदा विष्टिकृतो दोषो न भवेत्सर्व सौख्यदा।।

भद्रा में कृत्य –

विवादे शत्रुसंहारे भयार्ते राजदर्शने।

रोगार्ते वैद्यगमने भद्रा श्रेष्ठतमा स्मृता।।

भद्राज्ञान चक्र

3	10	कृष्णपक्ष	परार्द्ध	भद्रानिवास	स्थान
7	14	कृष्णपक्ष	पूर्वार्द्ध	मे. वृ. मि. वृ.	स्वर्ग
4	11	शुक्लपक्ष	परार्द्ध	क.ध. तु. म.	पाताल
8	15	शुक्लपक्ष	पूर्वार्द्ध	कु.मी. क. सि	पृथ्वी

शुक्लपक्ष तिथि **कृष्णपक्ष तिथि**

तिथि	4	8	11	15	3	7	10	14
भद्रा	पराद्ध	पूर्वाद्ध	पराद्ध	पूर्वाद्ध	पराद्ध	पूर्वाद्ध	पराद्ध	पूर्वाद्ध
प्रहर	5	2	7	4	8	3	6	1
मुख घ.	5	5	5	5	5	5	5	5
प्रहर	8	1	6	3	7	2	5	4
पु. घ .	3	3	3	3	3	3	3	3

भद्रा अंग विभाग –

प्राय: एक तिथि का अर्धभाग 30 घटी परिमित होता है। अत: तदनुसार भद्रा के विभिन्न अंगों में यथा प्रदिष्ट घटियों का न्यास और तज्जनित फल –

घटी	5	1	11	4	6	3
भद्रांग	मुख	गर्दन	वक्ष:स्थल	नाभि	कमर	पुच्छ
फल	कार्यनाश	मृत्यु	द्रव्यनाश	कलह	बुद्धिनाश	कार्यसिद्धि

अत: तात्पर्य हैं कि प्रत्येक भद्रा की अन्तिम तीन घटियों में शुभ कार्य किये जा सकते है।

5.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि न क्षरतीति नक्षत्रम्। अर्थात् जो स्थिर है, उसका नाम नक्षत्र हैं। अश्विनी से रेवती पर्यन्त २७ नक्षत्र ज्योतिषशास्त्र में कहे गये हैं। यहाँ हम उक्त नक्षत्रों में कौन-कौन से व्रत होते हैं तथा उनका निर्णय शास्त्र की दृष्टिकोण से कैसे किया जाता है। इसका वर्णन करने जा रहे हैं। प्रमुखता के दृष्टिकोण से यदि देखा जाय तो प्राय: समस्त पर्वो में तिथि के साथ नक्षत्रों का योग तो होता ही हैं। कई व्रतों एवं पर्वों में तिथि-नक्षत्र दोनों की महत्ता होती हैं। कुछ में नक्षत्र प्रधान हैं। देखा जाय तो पूरे वर्ष कोई न कोई व्रत अथवा त्योहार होता ही हैं। किन्तु उनमें भी कई प्रमुख तो कई सामान्य होते हैं। अत: व्रतों एवं पर्वों में जन्माष्टमी, नवरात्र/ विजयादशमी, महाशिवरात्रि, रक्षाबन्धन, दीपावली आदि प्रमुख रूप से जाने जाते हैं। जन्माष्टमी, नवरात्र/ विजयादशमी, महाशिवरात्रि आदि में नक्षत्रों का निर्णय महत्वपूर्ण हैं। जन्माष्टमी पर्व में नक्षत्र निर्णय – सामान्यतया हम सब जानते हैं कि भगवान कृष्ण का जन्म भाद्रपद मास के कृष्णपक्ष में अष्टमी तिथि को रोहिणी नक्षत्र में हुआ था। यहाँ रोहिणी नक्षत्र से सम्बन्धित निर्णय इस प्रकार हैं।

निशिथव्यापिनी रोहिणी नक्षत्र और अष्टमी तिथि का संयोग होना आवश्यक है जन्माष्टमी के लिए। रोहिणी से युत हुई अष्टमी में भी पूर्व दिन में ही अर्धरात्रिविषे अष्टमी और रोहिणी को योग हो और परदिन में अर्धरात्रविषे रोहिणी का योग हो और दोनों दिनों में अर्धरात्रविषे रोहिणी का योग हो ऐसे ये तीन पक्ष हैं। प्रथम दिन में अर्धरात्रविषे रोहिणी का और अष्टमी का योग –जैसे, सप्तमी ४० घड़ी होवे और उस दिन में कृत्तिका नक्षत्र ३५ घडी हो और अष्टमी ४६ घडी हो और अष्टमी के दिन में रोहिणी ३६ घडी हो तो यहाँ पूर्वविद्धा ही अष्टमी लेना उचित होगा। परन्तु दिन में अर्धरात्रिविषे रोहिणी और अष्टमी का योग – जैसे सप्तमी ४२ घडी हो और सप्तमी के दिन कृत्तिका ५० घडी हो और अष्टमी ४७ घडी हो और अष्टमी के दिन रोहिणी ४६ घडी हो यहाँ परविद्धा अष्टमी लेनी चाहिये, दोनों दिनों में अर्धरात्रिविषे रोहिणी का योग – जैसे, सप्तमी ४२ घडी हो, तब यहाँ पर परविद्धा अष्टमी लेनी चाहिये और रोहिणी से युत हुई अष्टमी में ही दोनों दिन अर्धरात्रि में रोहिणी के योग का नहीं होना बहुत प्रकार से होता हैं।विजयादशमी में नक्षत्र निर्णय – विजयादशमी पर दिन में ही अपराह्नकालव्यापिनी हो तो परविद्धा लेनी चाहिए। दोनों दिनों में अपराह्नकाल में व्याप्ति हो अथवा दोनों दिनों में श्रवण नक्षत्र का योग हो अथवा नहीं हो तब पूर्वविद्धा ही लेनी चाहिए। ऐसे ही दोनों दिनों में अपराह्नकाल में व्याप्ति नहीं हो और श्रवणनक्षत्र का योग हो अथवा नहीं तो भी पूर्वविद्धा ही दशमी लेनी चाहिये। दोनों दिनों में अपराह्नव्यापित हो अथवा नहीं हो और एक कोई से दिन में श्रवण नक्षत्र का योग हो तो जिस दिन श्रवण नक्षत्र का योग हो वही तिथि लेनी चाहिये। निर्णयसिन्धु में तो यह भी कहा है कि पर दिन में अपराह्नकाल में पहले ही श्रवण नक्षत्र हो तब भी पर दिन की ग्रहण करना चाहिये। जो अपराह्नकाल के पहले ही श्रवण नक्षत्र की समाप्ति हो तो पहली वाली दशमी ग्रहण करना चाहिये। करण परक निर्णय – भद्रा से वर्जित और छ: घटीकाओं से अधिक उदयकाल में व्याप्त होने वाली ऐसी पौर्णमासी में अपराह्नकालविषे अथवा प्रदोषकालविषे रक्षाबन्धन मनानी चाहिये। उदयकाल में ६ घटीकाओं से कम पूर्णिमा हो तो पहले करना चाहिये, परन्तु भद्रा से रहित प्रदोषकाल में रक्षाबन्धन मनाने का शास्त्रीय विधान है।

5.5 पारिभाषिक शब्दावली

नक्षत्र – न क्षरतीति नक्षत्रम्। जो चलता नहीं स्थिर हैं, उसे नक्षत्र कहते हैं। इनकी संख्या २७ हैं।

रोहिणी – रोहिणी नक्षत्र की संज्ञा हैं, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था।

कृष्णपक्ष – प्रतिपदा से अमावस्या पर्यन्त तक की तिथि कृष्णपक्ष कहलाती है। इसे कालापक्ष के नाम से भी जानते है।

शुक्लपक्ष – प्रतिपदा से पूर्णिमा पर्यन्त की तिथि शुक्लपक्ष कहलाती है। इसे सित (श्वेत) पक्ष के नाम से भी जानते है।

योग – योग दो प्रकार का होता है – एक आनन्दादि दूसरा विष्कुम्भादि। संकल्प एवं पूजन में चलायमान योग विष्कुम्भादि का प्रयोग होता है।

करण– तिथि का आधा भाग करण कहलाता है।

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न की उत्तरमाला

1.ग 2. ख 3. ग 4. क 5. क

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. व्रतराज - मूल लेखक- विश्वनाथ शर्मा, टिका – माधवाचार्य

2. निर्णयसिन्धु – कमलाकर

3. धर्मसिन्धु –

4. मुहूर्तचिन्तामणि– पीयूषधारा टिका।

5. आपस्तम्ब धर्मसूत्र–

5.8 सहायक पाठ्यसामग्री

1. व्रतराज

2. धर्मसिन्धु

3. निर्णयसिन्धु

4. आपस्तम्ब धर्मसूत्र

5. मुहूर्तचिन्तामणि – पीयूषधारा टिका

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नक्षत्र किसे कहते हैं?

2. नक्षत्र परक व्रत का निर्णय कैसे करते हैं।

3. योग एवं करण क्या है।

4. योग एवं करण परक निर्णय का विवेचन कीजिये।

5. व्रतों में नक्षत्र, योग एवं करण का महत्व बतलाइये।

इकाई – 6 श्राद्ध परिचय

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एमएजेवाई -103 के चतुर्थ खण्ड की छठीं इकाई से सम्बन्धित है। इस इकाई का शीर्षक है – श्राद्ध परिचय। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने नक्षत्र, योग एवं करण परक व्रत-पर्व निर्णय से सम्बन्धित अध्ययन कर लिया है। इस इकाई में आप श्राद्ध का अध्ययन करने जा रहे हैं। भारतीय वैदिक सनातन परम्परा में श्राद्ध का अत्यन्त महत्व है। इसके ज्ञानाभाव में आप वैदिक कर्मकाण्ड के अनवरत् धारा को पूर्णतया नहीं समझ सकते है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- श्राद्ध निर्णय में दक्ष हो सकेगें।
- श्राद्ध के महत्व को समझ लेंगे।
- श्राद्ध में निहित तत्व को समझने में समर्थ हो सकेंगे।
- भारतीय वैदिक परम्परा में श्राद्ध की महत्ता को आत्मसात कर लेंगे।

6.3 श्राद्ध परिचय

प्रत्येक शरीर में आत्मा तीन रूप में होता है – १. विज्ञानात्मा २. महानात्मा ३.भूतात्मा। विज्ञानात्मा उसको कहते हैं जो गर्भाधान से पूर्व स्त्री-पुरुष में सम्भोग की इच्छा उत्पन्न करता है। वह रोदसी मण्डल से आता है। उक्त मण्डल पृथ्वी से २७ हजार मील की दूरी पर है। महानात्मा चन्द्रलोक से पुरूष के शरीर में २८ अंशात्मक रेतस् बनकर आता है। उसी २८ अंश रेतस् से पुरूष पुत्र की उत्पत्ति करता है। भूतात्मा माता द्वारा खाये गये अन्न के रस से बने वायु द्वारा गर्भ-पिण्ड में प्रवेश करता है। उसे वायु में अहंकार का ज्ञान होता है। उसी को प्रज्ञानात्मा तथा भूतात्मा कहते है। यह भूतात्मा पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य किसी लोक में नहीं जा सकता। मृत प्राणी का महानात्मा स्वजातीय चन्द्रलोक में चला जाता है। चन्द्रलोक में उस महानात्मा में २८ अंश रेतस् माँगा जाता है, क्योंकि चन्द्रलोक से २८ अंश लेकर ही वह उत्पन्न हुआ था। इसी २८ अंश रेतस् को पितृऋण कहते हैं। २८ अंश रेतस् के रूप में श्रद्धा नामक मार्ग से भेजे जाने वाले पिण्ड तथा जल आदि के दान को 'श्राद्ध' कहते है। इस श्रद्धा नामक मार्ग का सम्बन्ध मध्याह्नकाल में पृथ्वी से होता है। इसलिए मध्याह्नकाल में श्राद्ध करने का विधान है। पृथ्वी पर कोई भी वस्तु सूर्यमण्डल तथा चन्द्रमण्डल के सम्पर्क से ही बनती है। संसार में सोम सम्बन्धी वस्तु विशेषत: चावल और यव हैं। यव में मेधा की

अधिकता है। धान और यव में रेतस् सोम का अंश विशेष रूप में रहता है। आश्विन कृष्णपक्ष में यदि चावल और यव का पिण्डदान किया जाय तो चन्द्रमण्डल को २८ अंश रेतस् पहुँच जाता है। पितर इसी चन्द्रमा के उर्ध्व देश में रहते है। जैसा कि कहा गया है –

''विधूर्ध्व भागे पितरो वसन्त: स्वाध: सुधादीधित मामनन्ति।।''

(सिद्धान्तशिरोमणि, गोलाध्याय:)

आश्विन कृष्ण प्रतिपदा से लेकर अमावस्या तक उपर की रश्मि तथा रश्मि के साथ पितृप्राण पृथ्वी पर व्याप्त रहता है। श्राद्ध की मूलभूत परिभाषा यह है कि प्रेत और पितर के निमित्त, उनकी आत्मा की तृप्ति के लिए श्रद्धापूर्वक जो अर्पित किया जाय वह श्राद्ध है। मृत्यु के बाद दशगात्र और षोड़शी-सपिण्डन तक मृत व्यक्ति की प्रेत संज्ञा रहती है। सपिण्डन के बाद वह पितरों में सम्मिलित हो जाता है। पितृपक्ष भर में जो तर्पण किया जाता है उससे वह पितृप्राण स्वयं आप्यायित होता है। पुत्र या उसके नाम से उसका परिवार जो यव तथा चावल का पिण्ड देता है, उसमें से रेतस् का अंश लेकर वह चन्द्रलोक में अम्भप्राण का ऋण चुका देता है। ठीक आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से वह चक्र उपर की ओर होने लगता है। १५ दिन अपना- अपना भाग लेकर शुकल प्रतिपदा से उसी रश्मि के साथ रवाना हो जाता है। इसीलिए इसको पितृपक्ष कहते हैं। अन्य दिनों में जो श्राद्ध तर्पण किया जाता है, उसका सम्बन्ध सूर्य की सुषूम्ना नाड़ी से रहता है जिसके द्वारा श्रद्धारश्मि मध्याह्नकाल में पृथ्वी पर आती रहती है और यहाँ से तत्तत् पितर का भाग ले जाती है, परन्तु पितृपक्ष में जितने पितृप्राण चन्द्रमा के उर्ध्व देश में रहते हैं, वे स्वत: चन्द्रपिंड की परिवर्तित स्थिति के कारण पृथ्वी पर व्याप्त रहते हैं। इसी कारण पितृपक्ष में तर्पण और श्राद्ध का इतना अधिक माहात्म्य है।

शास्त्र का निर्देश है कि माता –पिता आदि के निमित्त उनके नाम और गोत्र का उच्चारण कर मन्त्रों द्वारा जो अन्न आदि अर्पित किया जाता है, वह उनको प्राप्त हो जाता है। यदि अपने कर्मों के अनुसार उनको देव-योनि प्राप्त होती है तो वह अमृतरूप में उनको प्राप्त होता है। उन्हें गन्धर्वलोक प्राप्त होने पर भोग्यरूप में, पशुयोनि में तृणरूप में, सर्पयोनि में वायुरूप में, यक्षयोनि में, पेयरूप में, दानवयोनि में मांस के रूप में, प्रेतयोनि में रूधिररूप में और मनुष्ययोनि में अन्न आदि के रूप में उपलब्ध होता है। जब पितर यह सुनते हैं कि श्राद्धकाल उपस्थित हो गया है तो वह एक दूसरे का स्मरण करते हुए मनोमय रूप से श्राद्धस्थल पर उपस्थित हो जाते हैं और ब्राह्मणों के साथ वायुरूप में भोजन करते हैं। यह भी कहा गया है कि जब सूर्य कन्याराशि में आते हैं तो पितर अपने पुत्र-पौत्रों के यहाँ हैं। विशेषत: आश्विन – अमावस्या के दिन वह दरवाजे पर आकर बैठ जाते है। यदि उस दिन उनका श्राद्ध नहीं किया जाता तो वह शाप देकर लौट जाते हैं। अत: उस दिन पत्र-पुष्प, फल और जल तर्पण से

यथाशक्ति उनको तृप्त करना चाहिये। श्राद्धविमुख नहीं होना चाहिए। कन्या गते सवितरि पितरो यान्ति वै सुतान्। अमावस्या दिने प्राप्ते गृहद्वारं समाश्रिता:। श्राद्धाभावे स्वभवनं शापं दत्वा व्रजन्ति ते।।

6.3.1 श्राद्ध की परिभाषा

महर्षि मरीचि ने कहा है – प्रेत और पितर के उद्देश्य से जो भोज्य श्रद्धापूर्वक दिया जाता है, वह श्राद्ध कहलाता है - ''श्रद्धया दीयते यत्तु तत् श्राद्धं परिकीर्तितम्।।'' सामान्यतया मरे हुए पितरों के उद्देश्य से विहितकाल और देश में किया हुआ पिण्डदान और ब्राह्मण भोजन श्राद्ध कहलाता है। कभी-कभी पिण्ड दान न कर पाने की स्थिति में ब्राह्मण भोजन भी श्राद्धकर्म कहलाता है -

होमश्च पिण्डदानं च तथा ब्राह्मणभोजनम्।
श्राद्धशब्दाभिधेयं स्यादेकस्मिन् औपचारिकम्।।

ब्रह्मपुराण के अनुसार – देश, काल, पात्र का विचार कर श्रद्धा और विधान पूर्वक जो पितरों हेतु ब्राह्मण को दिया जाता है, उसे श्राद्ध कहते हैं।

वृहस्पति के अनुसार - संस्कृतं व्यंजनाद्यम् च पयो मधु घृतान्वितम्। श्रद्धया दीयते यस्माद् श्राद्धम् तेन निगद्यते।। इस परिभाषा में श्राद्ध वस्तु दूध, मधु, घी का भी निवेश किया गया है।

हेमाद्रि ग्रन्थ के अनुसार होम, पिण्डदान और ब्राह्मण भोजन को श्राद्ध कहते हैं, पर कहीं-कहीं होम और पिण्डदान के बिना भी श्राद्ध किया जाता है।

श्राद्ध की प्रशंसा –

ब्रह्मपुराण - जो अपनी संपत्ति के अनुकूल व्यय करता हुआ श्राद्ध करता है वह ब्रह्माण्ड को प्रसन्न कर लेता है। श्राद्ध का फल कभी व्यर्थ नहीं जाता – न किंचिद् व्यर्थतां ब्रजेत्।। यमस्मृति के अनुसार जो लोग देवता, पितर, अग्नि और ब्राह्मण की पूजा करते हैं वे सभी प्राणियों के आत्मा विष्णु की ही आराधना करते है- विष्णुमेव यजन्ति ते।

6.3.2 श्राद्ध के प्रकार -

मुख्यत: श्राद्ध दो प्रकार के है। पहला एकोदिष्ट और दूसरा पार्वण, लेकिन बाद में चार श्राद्धों को मुख्यता दी गयी है। इनमें पार्वण, एकोदिष्ट, वृद्धि और सपिण्डीकरण आते हैं। आजकल यही चार श्राद्ध समाज में प्रचलित है। वृद्धिश्राद्धका मतलब नान्दीमुख श्राद्ध है। श्राद्धों की पूरी संख्या बारह है – नित्यं नैमित्तिकं काम्य वृद्धिश्राद्ध सपिंडनम्। पार्वणं चेति विज्ञेयं गोष्ठयां शुद्धयर्थष्टमम्। कर्मागं नवमं प्रोक्तं दैविकं दशमं स्मृतम्। यात्रास्वेकादशं प्रोक्तं पुष्टयर्थं द्वादशं स्मृतम्।।

इनमें नित्यश्राद्ध, तर्पण और पंचमहायज्ञ आदि के रूप में प्रतिदिन किया जाता है। नैमित्तिक श्राद्ध को

ही एकोदिष्ट श्राद्ध के नाम से भी जाना जाता है। यह किसी एक व्यक्ति के लिए किया जाता है। मृत्यु के पश्चात् यही श्राद्ध होता है। प्रतिवर्ष मृत्यु तिथि पर भी एकोदिष्ट ही किया जाता है। काम्य श्राद्ध अभिप्रेतार्थ सिद्धयर्थं अर्थात् किसी कामना की पूर्ति की इच्छा से किया जाता है। वृद्धिश्राद्ध पुत्र जन्म आदि के अवसर पर किया जाता है। इसी का नाम नान्दीश्राद्ध है। सपिण्डन श्राद्ध मृत्यु के पश्चात् दशगात्र और षोडशी के बाद किया जाता है। इसके द्वारा मृत व्यक्ति को पितरों के साथ मिलाया जाता है।

प्रेतश्राद्ध में जो पिण्डदान किया जाता है, उस पिण्ड को पितरों को दिये पिण्ड में मिला दिया जाता है। पार्वण- श्राद्ध प्रतिवर्ष आश्विन कृष्णपक्ष में मृत्यु-तिथि और अमावस्या के दिन किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी पर्वों पर भी यह श्राद्ध किया जाता था। गोष्ठी – श्राद्ध विद्वानों को सुखी समृद्ध बनाने के उद्देश्य से किया जाता था। इससे पितरों की तृप्ति होना स्वाभाविक है। शुद्धि श्राद्ध शारीरिक, मानसिक और अशौचादि अशुद्धि के निवारणार्थ किया जाता था। कर्मांग श्राद्ध सोमयाग, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन आदि के अवसर पर किया जाता था। दैविक श्राद्ध देवताओं की प्रसन्नता के लिए किया जाता था। यात्राश्राद्ध यात्रा-काल में किया जाता था। पुष्टिश्राद्ध धन-धान्य समृद्धि की इच्छा से किया जाता था।

हमारे धर्मशास्त्रों में श्राद्ध के सम्बन्ध में इतने विस्तार से किया गया है कि इसके सामने अन्य समस्त धार्मिक कृत्य गौण से लगने लगते हैं। श्राद्ध के छोटे से छोटे कृत्य के सम्बन्ध में इतनी सूक्ष्म मीमांसा और समीक्षा की है कि विचारशील व्यक्ति चमत्कृत हो उठते हैं। मनोविज्ञान के अध्येताओं के लिए श्राद्धीय कर्मकाण्ड विवेचन एवं अव्ययन की सामग्री है। शास्त्रकारों ने अपने पाण्डित्य और मनोविज्ञान का यत्परोनास्ति रूप प्रदर्शित किया है। नया मकान बनवाने पर, नया कूप तैयार करने पर, समृद्धि प्राप्त होने पर, देश में कोई नयी असाधारण घटना होने पर, शत्रुओं पर विजय प्राप्त होने पर, पुत्र जन्म, यज्ञोपवीत, विवाह, कन्या-दान आदि के अवसरों पर जब परिवार के सभी लोग मिलकर उत्सव मना रहे हों, सबका मन उल्लसित हो, उस समय अपने स्वर्गीय बन्धुओं की स्मृति आना नितांत स्वाभाविक है। यह इच्छा भी उस समय अवश्य जागरित होती है कि यदि इस अवसर पर माता रहतीं, पिता रहते, बड़े भाई रहते, दूसरे आत्मीय रहते तो उनको कितना आनन्द प्राप्त होता। जो हमारे सुख में अपनी अन्तरात्मा से सुखी होते थे, दु:ख में दु:खी होते थे, उनकी स्मृति मिटाये मिट नहीं सकती। अत: यह इच्छा स्वाभाविक है कि वह अज्ञात लोक के वासी भी हमारे उल्लास में, आनन्दोत्सव में सम्मिलित हों, शरीर से न सही, आत्मा से हमारे साथ रहें, अत: उनके प्रति श्रद्धानत होना और श्रद्धा विवेदित करना स्वाभाविक हो जाता है। उनका शास्त्रीय मन्त्रों द्वारा मानसिक

आवाहन पूजन ही श्राद्ध है। इस मनोवैज्ञानिक सत्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि मन की भावना बड़ी प्रबल होती है। श्रद्धाभिभूत मन के सामने स्वर्गीय आत्मा सजीव और साकार हो उठती है। श्राद्ध में माता-पिता आदि के रूप का ध्यान करना आवश्यक कर्तव्य निर्धारित किया गया है। अनेक श्रद्धालु लोगों का यह अनुभव है कि श्राद्ध के समय माता-पिता या किसी अन्य स्नेही की झलक दिखायी दी। भगवान राम ने जब अपने पिता का श्राद्ध किया तो पिण्ड दान के बाद भगवती सीता को दशरथ आदि पितरों का दर्शन कराया था। यह निरी कपोल कल्पना नहीं है। आज का मनोविज्ञान भी श्राद्ध के इस सत्य के निकट पहुँचता जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न -1

1. प्रत्येक शरीर में आत्मा कितने रूप में होता है?

   क. दो ख. तीन ग. चार घ. पाँच

2. किस आत्मा को वायु में अहंकार का ज्ञान होता है?

   क. भूतात्मा ख. विज्ञानात्मा ग. महानात्मा घ. प्रेतात्मा

3. श्राद्ध मुख्यत: कितने प्रकार के होते है?

   क. दो ख.तीन ग. 4 घ. 5

4. किस पक्ष को पितृपक्ष के नाम से जाना जाता है?

   क. श्रावण कृष्ण पक्ष ख. आश्विन कृष्ण पक्ष ग. भाद्रपद कृष्ण पक्ष घ. वैशाख कृष्ण

5. पितरों का निवास कहाँ होता है?

   क. चन्द्रलोक ख. भूलोक ग. स्वर्ग लोक घ. गोलोक

श्राद्ध के लिये जिन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, उन पर भी शास्त्रों में बहुत विस्तार से विचार किया गया है। कौन वस्तु कैसी हो, कहाँ से ली जाय, कब ली जाय। भोजन- सामग्री कैसी हो, किन पात्रों में बनायी जाय, कैसे बनायी जाय। फल, साग, सब्जी आदि में भी कुछ अश्राद्धीय ठहरा दी गयी हैं। प्रत्येक वस्तु की शुद्धता और स्तर निर्धारित कर दिया है। पुष्प और चन्दन जो निर्धारित हैं, उन्हीं का उपयोग हो सकता है।

इसके अतिरिक्त श्राद्ध में कैसे ब्राह्मणों को आमन्त्रित किया जाय,किस प्रकार किया जाय, कब किया जाय और निमनन्त्रित ब्राह्मण निमन्त्रण के पश्चात् किस प्रकार आचरण करें, भोजन किस प्रकार करें, आदि सभी बातें विस्तारपूर्वक बतलायी गयी है। ब्राह्मणों को, उत्तम, मध्यम और अधम तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। निषिद्ध ब्राह्मणों की सूची लम्बी है। शास्त्र का कठोर आदेश है कि अन्य किसी धार्मिक कार्य में ब्राह्मणों की परीक्षा न की जाय, पर श्राद्ध में जिन ब्राह्मणों को आमन्त्रित करना

हो, उनकी परीक्षा प्रयत्नपूर्वक की जाय और यह परीक्षा आमन्त्रित करने के पूर्व कर ली जाय, बाद में नहीं। जैसा कि शास्त्र वचन है –

न ब्राह्मणं परीक्षेत देवै कर्मणि धर्मवित्। पित्र्ये कर्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्रयत्नत:।।

श्राद्ध किसी दूसरे के घर में, दूसरे की भूमि में कभी न किया जाय। जिस भूमि पर किसी का स्वामित्व न हो, सार्वजनिक हो, ऐसी भूमि पर श्राद्ध किया जा सकता है। शास्त्रीय निर्देश है कि दूसरे के घर में जो श्राद्ध किया जाता है, उसमें श्राद्ध करनेवाले के पितरों को कुछ नहीं मिलता। गृह स्वामी के पितर बलात् सब छीन लेते है-

परकीय गृहे यस्तु स्वात्पितृस्तर्पयेद्यदि। तद्भूमि स्वामिनस्तस्य हरन्ति पितरोबलात्।।

यह भी कहा गया है कि दूसरे के प्रदेश में यदि श्राद्ध किया जाय तो उस प्रदेश के स्वामी के पितर श्राद्ध-कर्म का विनाश कर देते हैं –

परकीय प्रदेशेषु पितृणां निवषयेत्तुय:। तद्भूमि स्वामि पितृभि: श्राद्धकर्म विहन्यते।।

इसीलिए तीर्थ में किये गये श्राद्ध से भी आठ गुना पुण्यप्रद श्राद्ध अपने घर में करने से होता है- तीर्थादष्टगुणं पुण्यं स्वगृहे ददत: शुभे। यदि किसी विवशता के कारण दूसरे के गृह अथवा भूमि में श्राद्ध करना ही पड़े तो भूमि का मूल्य अथवा किराया पहले उसके स्वामी को दे दिया जाय।

मृतक की अन्त्येष्टि और श्राद्ध की जो व्यवस्था इस समय प्रचलित है, वह हमारे वेदों में वर्णित है। गृह्यसूत्रों में पितृयज्ञ अथवा पितृश्राद्ध का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। आश्वलायन गृह्यसूत्र की सप्तमी और अष्टमी कण्डिका में विस्तारपूर्वक श्राद्ध विधि वर्णित की गयी है, वह पठनीय और मननीय है। अन्तयेष्टि विधि का वर्णन भी इसमें उपलब्ध है। चिता प्रज्ज्वलित होने पर ऋग्वेद का यह मन्त्र पढ़ा जाता था – 'प्रेहि प्रेहि पथिभि: पूर्वेभि:' अर्थात् जिस मार्ग से पूर्वज गये हैं, उसी मार्ग से तुम भी जाओ। मूलत: वेदों में भी श्राद्ध और पिण्डदान का उल्लेख किया गया है। श्राद्ध में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं, उनमें से कुछ ये हैं – 'अत्र पितरो मादमध्वं यथाभागमा वृषायध्वम्।' इस पितृयज्ञ में पितृगण हृष्ट हों और अंशानुसार अपना-अपना भाग ग्रहण करें। नमो व: पितरो रसाय। नमो व: पितरो शोषाय।

पितरों को नमस्कार ! वसन्त ऋतु का उदय होने पर समस्त पदार्थ रसवान हों। तुम्हारी कृपा से देश में सुन्दर वसन्त ऋतु प्राप्त हो। पितरों को नमस्कार ! ग्रीष्म ऋतु आने पर सर्व पदार्थ शुष्क हों। देश में ग्रीष्म ऋतु भलीभाँति व्याप्त हो।

इसी प्रकार सभी ऋतुओं के पूर्णत: सुन्दर, सुखद होने की कामना और प्रार्थना की गयी है। यह भी कहा गया है कि पितरों, तुम लोगों ने हमको गृहस्थ (विवाहित) बना दिया है, अत: हम तुम्हारे लिए

दातव्य वस्तु अर्पित कर रहे हैं।

वेदों के बाद हमारे स्मृतिकारों और धर्माचार्यों ने श्राद्धीय विषयों को बहुत व्यापक बनाया और जीवन के प्रत्येक अंग के साथ सम्बद्ध कर दिया। मनुस्मृति से लेकर आधुनिक निर्णयसिन्धु , धर्मसिन्धु तक की परम्परा यह सिद्ध करती है कि इस विधि में समय- समय पर युगानुरूप संशोधन, परिवर्धन और परिवर्तन होता रहा है। नयी मान्यता, नयी परिभाषा, नयी विवेचना और तदनुरूप नई व्यवस्था बराबर होती रही है। दुर्भाग्य की बात यह है कि विदेशी आधिपत्य के बाद जब हिन्दू समाज पंगु हो गया, समाज का नियन्त्रण विदेशी पद्धति और विधि विधान से होने लगा तो युग की आवश्यकता के अनुरूप नयी परिभाषा, व्यवस्था का क्रम भी अवरूद्ध हो गया, फलस्वरूप उपयोगितावादी मानव मन की तुष्टि अपने पुरातन संस्कारों से नहीं हो पा रही है और वह संस्कार विहीन होता जा रहा है। जीवित माता-पिता, बन्धु-बान्धव भी आज मात्र उपयोगितावादी की कसौटी पर कसे जा रहे हैं, तब मृत माता-पिता के प्रति आस्था, श्रद्धा और भक्ति की बात ही क्या ! इतना ही नहीं, हमारी आस्था स्वयं अपने पर से डिगती जा रही है। देश में व्याप्त समस्त अशान्ति, विक्षोभ, असंतोष, अनैतिकता आदि का मूल कारण यही है। जब हम स्वयं अघोर (शिव) नहीं है तो 'अघोरा: पितर: सन्तु' की कामना कैसे कर सकते है।

6.4 श्राद्ध मीमांसा -

हिन्दू धर्मशास्त्र का सर्वाधिक जटिल और विस्तृत पक्ष श्राद्ध है। श्राद्ध का ज्ञान रखने वाले विद्वान देश में धीरे-धीरे निरन्तर घटते चले जा रहे हैं। यह विषय सागर की तरह गहरा और तरंगों से भरा पड़ा है। महाभारत के अध्ययन से पता चलता है कि चोर, तस्कर, लुटेरे भी श्राद्ध कराया करते थे। इनमें यवन, चीन, गांधार, शक, खश, किरात, तुषार, कंक, पह्व, मुद्रक, शबर, बर्बर आदि सभी सम्मिलित थे। यह एशिया का एक बड़ा भाग था। उधर कौण्डिन्य ऋषि के वंशधरों ने इंडोनेशिया आदि बड़े भूभाग को कर्मकाण्ड प्रदान कर रखा था।

श्राद्ध न करने से विश्व के सभी भागों में मनुष्य विचित्र रोगों, कष्टों से ग्रस्त रहता है। प्रेतबाधा, अदृश्य उपद्रव से ग्रस्त लोगों पर दवा काम नहीं करती तब चिकित्सक उन्हें मानसिक केस कहकर छोड़ देते हैं। वे बेचारे भटकते फिरते हैं। इस देश में उपरी बाधा का जमावड़ा देखना हो तो मेंहदी बाला जी, पुष्कर तालाब, हरसू ब्रह्म, पिशाच मोचन, गया जी आदि स्थान पर जाना चाहिए।

श्राद्ध न करने से वंश समाप्त होने का भय रहता है। रोगी होकर लोग अल्पायु होने लगते है और भूतपूजक बन बैठते है। जिस वंश में पितृगण मुक्त नहीं रहते उस के वंशधर मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते। मोक्ष तो बड़ी बात है उनका पुनर्जन्म तक नहीं हो पाता। अंतत: भागवत महापुराण का सप्ताह

यज्ञ कराना पड़ता है। श्राद्ध न करने से क्या अहित होता है इसका विवेचन निम्नवत् है –

न तत्र वीरा: जायन्ते निरोगी न शतायुष:।
न तत्र श्रेय: कांक्षन्ते यत्र श्राद्ध: विवर्जित:।।

मृत्यु और उसके बाद की यात्रा का विधान विश्व के सभी धर्म, मजहबों, सम्प्रदायों में फैला हुआ है। आज इस पर भारतीय दृष्टि से विश्व में शोध भी आरम्भ हो चुका है। अत: हम सभी को श्राद्ध के विषय में एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

श्राद्ध पक्ष आश्विन कृष्ण को कहते है। यह व्यवस्थित पक्ष है और इसे महालया भी कहते हैं। कन्या राशि का सूर्य और आश्विनकृष्ण पक्ष का जब सम्मिलन होता है तब एक त्रिकोण में सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी की स्थिति बनती है और पितृगण सीधे धरती पर उतर आते हैं। यह एक खगोलीय स्थिति है जो पितृपक्ष के लिए अनिवार्य होती है। लोकमान्यता है कि पितृपक्ष में जन्म लिया शिशु कोई कुल पुरूष होता ही होता है। इस पक्ष में घर में आए सर्प, बिल्ली, पशु को नहीं मारा जाता क्योंकि वह अपना कोई प्रियजन हो सकता है। जो नहीं दिख रहा है वह भाग दिखने वाले से करोड़ों करोड़ गुना अधिक है। अत: वेद और शास्त्र को प्रमाण मान कर श्राद्ध करना चाहिए। संतुष्ट पितृगण राज्य, वंश और आयु प्रदान करते हैं। इनके आशीर्वाद से गोत्र का संवर्द्धन होता है।

श्राद्ध में अमावस्या का निर्णय –

पाँच प्रकार से विभक्त किये दिन का चतुर्थ भाग नामक अपराह्नकालव्यापिनी अमावस दर्शश्राद्ध में ग्रहण करना चाहिये। पहले दिन में ही हो अथवा पिछले दिन में हो, परन्तु अपराह्नकाल में सम्पूर्ण अथवा एकदेश करके व्याप्त हो तो वह ग्रहण करनी चाहिये। दोनों दिनों में भी अपराह्नकालविषे विषमपने से अथवा एकदेश में व्याप्त होने से अधिकव्यापिनी अमावस ग्रहण करनी चाहिये। दोनों दिनों में समपने से एकदेश व्याप्ति होने में तिथि के क्षय में पूर्वतिथि की लेनी चाहिये वृद्धि में और तिथि के समापन में बराबर परविद्धा अमावस ग्रहण करना चाहिये।

6.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपने जान लिया है कि प्रत्येक शरीर में आत्मा तीन रूप में होता है – १. विज्ञानात्मा २. महानात्मा ३.भूतात्मा। विज्ञानात्मा उसको कहते हैं जो गर्भाधान से पूर्व स्त्री-पुरूष में सम्भोग की इच्छा उत्पन्न करता है। वह रोदसी मण्डल से आता है। उक्त मण्डल पृथ्वी से २७ हजार मील की दूरी पर है। महानात्मा चन्द्रलोक से पुरूष के शरीर में २८ अंशात्मक रेतस् बनकर आता है। उसी २८ अंश रेतस् से पुरूष पुत्र की उत्पत्ति करता है। भूतात्मा माता द्वारा खाये गये अन्न के रस से बने वायु द्वारा गर्भ-पिण्ड में प्रवेश करता है। उसे वायु में अहंकार का ज्ञान

होता है। उसी को प्रज्ञानात्मा तथा भूतात्मा कहते है। यह भूतात्मा पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य किसी लोक में नहीं जा सकता। मृत प्राणी का महानात्मा स्वजातीय चन्द्रलोक में चला जाता है। चन्द्रलोक में उस महानात्मा में २८ अंश रेतस् माँगा जाता है, क्योंकि चन्द्रलोक से २८ अंश लेकर ही वह उत्पन्न हुआ था। इसी २८ अंश रेतस् को पितृऋण कहते हैं। २८ अंश रेतस् के रूप में श्रद्धा नामक मार्ग से भेजे जाने वाले पिण्ड तथा जल आदि के दान को 'श्राद्ध' कहते है। इस श्रद्धा नामक मार्ग का सम्बन्ध मध्याह्नकाल में पृथ्वी से होता है। इसलिए मध्याह्नकाल में श्राद्ध करने का विधान है। पृथ्वी पर कोई भी वस्तु सूर्यमण्डल तथा चन्द्रमण्डल के सम्पर्क से ही बनती है। संसार में सोम सम्बन्धी वस्तु विशेषत: चावल और यव हैं। यव में मेधा की अधिकता है। धान और यव में रेतस् सोम का अंश विशेष रूप में रहता है। आश्विन कृष्णपक्ष में यदि चावल और यव का पिण्डदान किया जाय तो चन्द्रमण्डल को २८ अंश रेतस् पहुँच जाता है। पितर इसी चन्द्रमा के उर्ध्व देश में रहते है।

6.6 पारिभाषिक शब्दावली

श्राद्ध – श्रद्धया दीयते इति श्राद्धम्। श्रद्धापूर्वक पितरों को दी गयी तिलांजलि अथवा तर्पण या पिण्डदान को श्राद्ध कहते हैं।

अमावस्या – कृष्णपक्ष की पन्द्रहवीं तिथि का नाम अमावस्या है। इस तिथि को धरती पर रात्रि में अंधकार होता है। अमावस्या पितरों के लिए उत्तम तिथि कही गयी है। ज्ञाताज्ञात पितरों के लिए पिण्डदान इस तिथि को ही सर्वाधिक प्रशस्त माना गया है।

पितृपक्ष – आश्विन कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से अमावस्या पर्यन्त तक की तिथि को 'पितृपक्ष' कहा जाता है।

विज्ञानात्मा - उसको कहते हैं जो गर्भाधान से पूर्व स्त्री-पुरूष में सम्भोग की इच्छा उत्पन्न करता है।

पितृलोक – विधूर्ध्व भागे पितरो वसन्त:।। इस नियम के अनुसार पितृलोक चन्द्रलोक में कहा गया है।

6.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न -1 की उत्तरमाला

1. ख 2. क 3. क 4. ख 5. क

6.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष रहस्य - जगजीवन दास गुप्ता
2. सिद्धान्तशिरोमणि – पं. सत्यदेव शर्मा

3. श्राद्ध पद्धति – गीता प्रेस

4. ब्रह्मपुराण

5. हेमाद्रि ग्रन्थ

6.9 सहायक पाठ्यसामग्री

1. ज्योतिष रहस्य

2. श्राद्ध पद्धति

3. आह्निक सूत्रावली

4. हेमाद्रि ग्रन्थ

5. ब्रह्मपुराण

6. स्कन्द पुराण

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. श्राद्ध से आप क्या समझते है? लिखिये।

2. श्राद्ध मुख्यत: कितने प्रकार के होते है? वर्णन कीजिये।

3. श्राद्ध पर निबन्ध लिखिये।

4. श्राद्ध के महत्व का निरूपण कीजिये।

5. श्राद्ध का वैज्ञानिक विवेचन कीजिये।